डॉ. हरिनारायण दीक्षित कृत "भीष्मचरितम्" का समीक्षात्मक अध्ययन

Dr. Harinarayan Dixit Krit "Bhishmacharitam" ka Samikshatmak Addhyayan

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी
अक्षय राज मीणा

शोध निर्देशिका
डॉ. वत्सला
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा
संस्कृत विभाग
राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
2019

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबंध **"डॉ. हरिनारायण दीक्षित कृत भीष्मचरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन"** शोधार्थी श्री अक्षय राज मीणा ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध–प्रबंध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक :

हस्ताक्षर शोध निर्देशिका

डॉ. वत्सला

ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा,

संस्कृत विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

झालावाड (राज.)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that Ph.D. Thesis Titled **Dr. Harinarayan Dixit Krit "Bhishmacharitam" ka Samikshatmak Addhyayan** (title of the thesis) Sanskrit by Akshya Raj Meena (Name of Scholar) has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.

e. The thesis has been checked using - Plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)

Place :

Date :

(Name & Signature and Seal of Research Supervisor)

Place :

Date :

शोध सार

डॉ. हरिनारायण दीक्षित आधुनिक युग में उत्तराखण्ड प्रान्त के लब्ध प्रतिष्ठ कवि है। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उनके द्वारा प्रणीत 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य पर मेरे शोध का विषय कवि ने प्रणीत किया है। 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य महाभारत को उपजीव्य बनाकर कवि ने प्रणीत किया है। कवि ने अपनी नित्यनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से महाभारतीय कथा में परिवर्तन और परिवर्धन भी किया है। मेरे शोध का विषय है– **'डॉ. हरिनारायण दीक्षित कृत् 'भीष्मचरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन'** इसको पाँच अध्यायों में विभक्त किया। जो इस प्रकार हैं–

प्रथम अध्याय – कवि का पूर्णाङ्ग परिचय

(i) जन्म, स्थान तथा काल

(ii) शिक्षा, शैक्षणिक उपलब्धियाँ तथा राजकीय सेवाएँ

(iii) कवि की रचनाधर्मिता

(iv) पुरस्कार, सम्मान एवं उपलब्धियाँ

द्वितीय अध्याय – भीष्मचरितं महाकाव्य की कथावस्तु का मूलस्रोत महाभारत

(i) महाभारत के पर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा

(ii) सर्गानुसार भीष्मचरित का संक्षिप्त कथानक

तृतीय अध्याय –

(i) मूलकथा से प्रस्तुत महाकाव्य में परिवर्तन एवं कवि कल्पना

(ii) महाभारतीय भीष्मकथा पर आधृत ग्रन्थों का विवरण

चतुर्थ अध्याय – भीष्मचरितं महाकाव्य का महाकाव्यत्व

(i) महाकाव्य का लक्षण–प्राचीन व अर्वाचीन

(ii) वस्तु विभाजन–इतिवृत तथा इतिवृत्त के अन्य तत्त्व

(iii) नेता–पात्रों का चरित्र–चित्रण

(iv) रस, अलंकार, गुण

(v) छन्द योजना

पंचम अध्याय – महाकवि की रचनाधर्मी प्रतिभा

(i) भाषाशैली

(ii) कविकृत वर्णन कौशल की वर्तमान में प्रासंगिकता

(iii) पूर्वकवियों का प्रभाव और उत्तरकाल को कवि की देन

उपसंहार

शोध संक्षेपिका

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रकाशित शोध पत्र

प्रथम अध्याय में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कवि का पूर्णाङ्ग परिचय दिया गया है। तथा उनके सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त में परिचय दिया है।

द्वितीय अध्याय में महाभारत के पर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है तथा भीष्मचरितं महाकाव्य का सर्गानुसार कथानक संक्षिप्त में दिया है।

तृतीय अध्याय में मैंने मूलकथा से प्रस्तुत महाकाव्य में परिवर्तन एवं कविकल्पना का निरूपण करते हुए महाभारतीय भीष्मकथा पर आधृत ग्रन्थों का संक्षिप्त में विवरण प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय में महाकाव्य के प्राचीन व अर्वाचीन लक्षणों को प्रस्तुत करते हुए वस्तु विभाजन, नेता–पात्रों का चरित्र–चित्रण, रस, अलंकार, गुण तथा छन्द योजना का निरूपण किया है।

पञ्चम अध्याय में भीष्मचरितं महाकाव्य की भाषा–शैली के सौष्ठव को प्रतिपादित किया गया है। इसी अध्याय में कविकृत वर्णन कौशल में गुरु की महिमा, शिक्षक का सम्मान, गुरु के प्रति भक्तिभाव, शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति, नारी अस्मिता, पुत्र व पुत्री की समानता, दहेजप्रथा, प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह, भ्रष्टाचार, कृषि को प्रोत्साहन, राजकर व आयकर, राष्ट्रीय भावना, सामाजिक वर्ग की विषमता का अभाव, राजधर्म, दीक्षान्त समारोह, मोक्षधर्म, बालक्रीडा, प्रजाधर्म, विविध दीव्यास्त्र आदि का समसामयिक सन्दर्भ में उल्लेख किया गया है। अन्त में कवि के ऊपर पूर्व कवियों जैसे–कालिदास, भारवि, माघ, वात्स्यायन आदि के प्रभाव को दर्शाया गया है तथा उत्तरकाल को कवि की देन का निरुपण किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पुनः समीक्षा को निरूपित किया गया है।

♦♦♦♦

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "डॉ. हरिनारायण दीक्षित कृत भीष्मचरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Vatsala and submitted to the research center Govt. PG Collage, Jhalawar (Raj.), University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date **Akshya Raj Meena**

This is to certify that the above statement made by Akshya Raj Meena Registration ....is correct to the best of my knowledge.

Date :

Dr. Vatsala

Associate Professor

Supervisor

प्राक्कथन

बीसवीं व इक्कीसवीं शताब्दी से आधुनिक साहित्य पर शोध कार्य करने की परम्परा का प्रवर्तन महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हो चुका है। संस्कृत साहित्य तो प्राचीनकाल से ही समृद्ध रहा है किन्तु आधुनिक कालखण्ड में साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखे गये आधुनिक साहित्य से भी प्रभूत सम्पन्न हुआ है और वर्तमान में भी हो रहा है। आधुनिक काल में साहित्य की कई नई विधाओं का भी सृजन हुआ है जैसे–लघुकाव्य, लघुकथा, पत्रकाव्य, डायरी, यात्रा वृतान्त, हाइकू, रेडियो रूपक, एकांकी, गजल (गीत–गजल) आदि। इसके अतिरिक्त इस युग में महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य सन्देश काव्य (दूतकाव्य), मुक्तककाव्य, शतककाव्य, लहरी–काव्य, स्त्रोतकाव्य, गद्य काव्य (कथा, आख्यायिका), नाटक, नाटिका, चित्रकाव्य, प्रहेलिका काव्य प्रभृति विधाओं पर प्रचुर (पर्याप्त) लेखन कार्य हुआ है। इन सभी विधाओं पर शोध कार्य भी किसी न किसी विश्वविद्यालयों में हो रहा है।

आधुनिक साहित्य पर शोध कार्य करने का कारण जहाँ तक मेरी अल्पमति में समझ में आता है कि इसके दो कारण है–पहला कारण यह है कि आधुनिक कवियों या लेखकों के व्यक्तित्व व कृतित्व का अनुसन्धान करने में ज्यादा श्रम नहीं करना पड़ता है क्योंकि आधुनिक रचनाधर्मी अपनी रचनाओं में (ग्रन्थों में) स्वयं की समग्र जानकारी को निरूपित करते हैं। इसके विपरीत पौरस्त्य रचनाधर्मियों पर शोध कार्य करने में ज्यादा समय व श्रम (अध्यव्यवसाय) उनकी कृतियों, तिथियों व जीवनवृत्त का अन्वेषण करने में लग जाता है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि आज पूरा देश व समाज आधुनिकता की भागमभाग में लगा हुआ है चाहे आधुनिकता का स्वरूप कैसा भी हो। आधुनिकता का प्रभाव साहित्य व संस्कृति पर चतुर्दिक परिलक्षित होता है। यही आधुनिकता हमारी संस्कृति में भी चतुर्दिक परिलक्षित हो रही है। इसी आधुनिकता का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है और यही कारण है कि आधुनिकता से संश्लिष्ट साहित्य की भी रचना हो रही है और अनुसन्धान कार्य में भी आधुनिकता का उपक्रम प्रारम्भ हुआ है।

काव्य, जय, भारत, महाभारत, कार्ष्णवेद, शतसाहस्त्री संहिता प्रभृति अभिधानों से अभिहित विपुलायतन महाकाव्य महाभारत सहस्राब्दियों से अनेक ग्रन्थों का उपजीव्य रहा है। महाभारतीय कथा को लेकर सम्भवतः सर्वप्रथम भास ने नाटकों का प्रणयन किया। उनके द्वारा महाभारतीय कथा पर अवलम्बित (आश्रित) आठ नाटक मिलते हैं– पंचरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य, उरुभंग। राजशेखर ने बालभारत नामक नाटक की रचना की थी। यदि महाकाव्यों पर दृष्टि डालें तो

भारवि ने किरातार्जुनीय, माघ ने शिशुपालवध, अमरचन्द्र सूरि ने बालभारत, क्षेमेन्द्र ने भारतमंजरी वामनभट्टबाण ने नलाभ्युदय, माधवभट्ट (कविराज) कृत राघवपाण्डवीय, भट्टनारायण ने वेणीसंहार, त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू, नारायणभट्ट ने पांचाली स्वयंवर चम्पू, चक्रकवि ने द्रौपदी परिणय चम्पू आदि की रचना की थीं। महाभारतीय कथा को लेकर प्राचीनकाल में तो ग्रन्थ प्रणीत ही किए गए है इसके साथ अर्वाचीन काल में भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये है यथा—चारुदेव शास्त्री कृत महाभारतवचनामृत उपदेश साहस्त्री, प्रदीप शेखावत कृत महाभारत के साक्षी, पं. मधुसूदन ओझा कृत यज्ञमधुसूदन, पं. मदनशर्मा सुधाकर कृत दूधमाधवम्, नवलकिशोर कांकर कृत किरातार्जुनीयम्, डॉ. शशिनाथ झा कृत राधाप्रणय महाकाव्य, आचार्य उमेश शास्त्री कृत विक्रमोर्वशीयम्, विजयनारायण यादव कृत श्रीमद्भगवद्गीता, विन्ध्येश्वरीप्रसादशास्त्री कृत कर्णार्जुनीयम्, रामाशीषपाण्डेय कृत कर्णार्जुनीयम् (नाटक), डॉ. हरिनारायण दीक्षित कृत भीष्मचरितम्, काशीनाथ शर्मा रचित रुक्मिणीहणम्, पन्त आत्माराम शास्त्री कृत सावित्रीचरितम्, कृषणप्रसाद धिमिरे रचित नचिकेतसम्, गुलाबचन्द्र चूलेट 'पाटलेन्दु' कृत कर्णचरितामृतम्, कृष्ण प्रसाद धिमिरे प्रणीत श्रीकृष्णचरितामृतम्, रामाशीष पाण्डेय रचित कृष्णोदयम्, जयनारायण शास्त्री रचित कंसवधम् (खण्डकाव्य) आदि।

इसके अतिरिक्त महाभारतीय भीष्मकथा पर भी आधृत ग्रन्थ प्रणीत किए गए है जैसे—नलिनीकान्त मिश्र प्रणीत देवव्रतचरितम्, रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत शरशय्या, लक्ष्मणसूरि सृजित श्रीभीष्मविजयम्। जिनका समग्र विवरण तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया है। हमारे शोध का विषय **डॉ. 'हरिनारायण दीक्षित कृत् भीष्मचरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन'** भी महाभारतीय कथा पर आधृत है। कविवर्य ने 18 पर्वों में उपनिबद्ध महाभारतीय कथा को अपने कथानक का आधार बनाया है। महाभारत के आदिपर्व, वनपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व के उपपर्वों में वर्णित कथाओं एवं घटनाक्रम को अनतिविस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। भीष्मचरित से सम्बन्धित जो घटनाएँ व कथाएँ महाभारत में वर्णित है उनका ही प्रस्तुतीकरण महाकाव्य में किया है।

पूरे महाभारत में भीष्म एक ऐसे पात्र हैं जिनके विषय में हजारों प्रश्न मन को क्रौधते हैं। उनका चरित्र महान है और वे अनेक चरित्रगत विशिष्टताओं से युक्त है। वे आज्ञाकारी पुत्र, राज्य की स्पृहा से रहित, पिता की इच्छापूर्ति के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हैं और राज्य सिंहासन न ग्रहण करने की भीष्म प्रतिज्ञा करते हैं। पाण्डवों के प्रति उनकी पुत्रवत्सलता अगाध थीं। वे राज्य के प्रति प्रतिज्ञाबद्ध थे किन्तु द्यूतक्रीड़ा में द्रौपदी को दाँव पर लगाने के पश्चात् जब पाण्डव द्रौपदी को हार जाते है और भरी सभा में दुर्योधन द्रौपदी को बुलवाता है, उस समय द्रौपदी ने भीष्म से जो प्रश्न किए और उनका जो उत्तर पितामह भीष्म ने दिया वह वर्तमान में बिल्कुल समसामयिक है भले तत्कालीन परिस्थिति में दिया गया उनका प्रत्युत्तर बहुत से नारीवादी चिन्तकों को वर्तमान में उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि उस समय वहाँ नारी अस्मिता का प्रश्न था। भीष्म द्वारा दिया गया प्रत्युत्तर नारीमन को आहत पहुँचाने वाला था। यदि भीष्म ने कोई कठोर आदेश दिया होता तो द्रौपदी का अस्तित्व (नारी की मर्यादा) तार—तार नहीं होती। किन्तु वर्तमान में भीष्म का प्रत्युत्तर बाहुबलियों के लिए सर्वथा उचित है—

बलवांश्च यथा धर्मे लोके पश्यति पुरुषः।
स धर्मो धर्मबेलायां भवत्यभिहतः परः।।
न विवेक्तुं च ते प्रश्नमिमं शकनोमि निश्चयात्।
सूक्ष्मत्वात् गहनत्वाच्च कार्यस्यास्य च गौरवात्।।

(अर्थात् संसार में बलवान मनुष्य जिसको धर्म समझता है, धर्म विचार के समय लोग उसी को धर्म मान लेते हैं और बलहीन पुरुष जो धर्म बतलाता है वह बलवान पुरुष के बताये धर्म से दब जाता है) संसार में जो बाहुबली है वह विजयी होता है। बलहीन का साथ कोई नहीं देता है। कलयुग में भी यही स्थिति देखने को मिलती है।

यद्यपि इस प्रसंग का उल्लेख कवि ने महाकाव्य में नहीं किया है किन्तु भीष्म के व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए इसका उल्लेख करना आवश्यक था। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भीष्मचरितम् ही क्यों ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पूरे महाभारत के कथानक का मुख्य केन्द्रबिन्दु पितामह भीष्म है। महाभारत का सम्पूर्ण घटनाक्रम उनसे सम्बन्धित है। उन्होंने अपने पूरे जीवन को पिता व राज्य की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया था। वे राजनीतिकुशल, प्रवीण धनुर्धर, सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र के ज्ञाता, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने वाले न जाने कितने गुणोपेत थे। वर्तमान में देश की रक्षा, देश के प्रति अपने कर्त्तव्य, भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए भीष्मचरितम् को बारम्बार अधीत व अध्यापित करने की महत्ती आवश्यकता है— क्योंकि कवि ने अपने महाकाव्य के द्वारा समाज की बहुत सी विसंगतियों को उजागर किया जिनका समाज में क्षरण हो रहा है। इन विषमताओं को अपने महाकाव्य में पुनः प्रतिष्ठापित किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को परीक्षार्थ प्रस्तुत करने के शुभ लगन में जिन लोगों ने मुझे सहयोग दिया है उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना आपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ। इस उपक्रम में मैं सर्वप्रथम वैदुष्य एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति, कर्मठ, न्यायप्रिय, कर्त्तव्य परायण, अध्यवसायी अपनी शोध निर्देशिका डॉ. वत्सला विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा निवेदन करता हूँ।

शोध के प्रारूप तथा विषय विस्तार के निर्धारण में मेरी शोध पर्यवेक्षिका डॉ. वत्सला ने मेरी जो सहायता व ज्ञानवर्धन किया है, तदर्थ मैं उनके प्रति श्रद्धा से अवनमित हूँ। उन्होंने केवल शोध की रूपरेखा का लेखांकन नहीं कराया बल्कि पुस्तकों को प्रदान कर, विषय से सम्बन्धित पुस्तकों के अध्ययन के प्रति भी उत्प्रेरित किया है। आद्योपान्त शोध कार्य का संशोधन व परिमार्जन करते हुए

उन्होंने उदारता, कर्मठता तथा शिष्य वत्सलता का जो परिचय दिया उसके लिए उन्हें धन्यवाद देने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है। डॉ. वत्सला के अथक परिश्रम से मेरे शोध प्रबन्ध की सम्पूर्ति हुई है।

भीष्मचरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन विषय से सम्बन्धित प्रामाणिक जानकारी हेतु मैंने डॉ. पुरीलाल शर्मा, प्राचार्य, राजकीय शास्त्री महाविद्यालय, चेचट कोटा उनके निजी आवास श्रीनाथपुरम्, कोटा पर जाकर उनसे शोध विषय पर व्यापक चर्चा की। अवधेश मिश्रा जी, व्याख्याता, राजकीय विठ्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा से शोध विषय हेतु मार्गदर्शन प्राप्त किया है। इन समस्त विद्वानों का मैं आजीवन आभारी रहूँगा, जिन्होंने अपनी अतिव्यस्त दिनचर्या में से समय निकाल कर मुझे पर्याप्त सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान किया।

परम श्रदेय पूजनीय पितरौ श्रीमती प्रेमबाई एवं श्री मोड़ूलाल मीना का मैं ऋणी हूँ जिन्होंने पग–पग पर उत्साहित कर हरसम्भव सहयोग दिया। परम स्नेह अनुज सुरेश कुमार मीना–श्रीमती कविता मीना, सोनू कुमार मीना ने धैर्य का पाठ पढ़ाते हुए मुझे आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की। मैं अपने पितामह स्वर्गीय श्री प्रभूलाल जी के प्रति श्रद्धानवत हूँ, जिनके आशीर्वाद से मेरा जीवन गतिमान है।

मेरे जीवन पथ की सहचरी श्रीमती हेमलता बाई मीना से आद्यन्त सहयोग प्राप्त हुआ है, जो अविस्मरणीय है। इनके सहयोग व प्रेरणा से ही शोध प्रबन्ध का यह कठिन कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका।

मैं अपने सहयोगी एवं परिवार के सदस्यों में गुरुजी श्री पूरणमल मीना, श्री खेमराज मीना, श्री हरिओम मीना, श्री बनवारी लाल मीना (शोधार्थी), श्री महेश कुमार रामावत, श्री सुनिल कुमार वर्मा (शिक्षक साथी) के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनका सहयोग एवं प्रोत्साहन सर्वाधिक प्रशंसनीय है।

शोध कार्य में पुस्तकों की अनिवार्यता अपरिहार्य होती है अतः मुझे आवश्यक पुस्तकें उपलब्ध करवाने में राजकीय स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़, राजकीय विठ्ठनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा और राजकीय वरिष्ठ उपाध्याय संस्कृत विद्यालय, आजन्दा जिला बून्दी के पुस्तकालयाध्यक्षों व इस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली के प्रकाशक के प्रति कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने पुस्तकें प्रदान कर मेरे शोध कार्य की पूर्णाहुति में सहयोग दिया है।

इन सबसे भी बढ़कर मैं अपनी पुत्री देविका मीना के प्रति असीम स्नेह प्रदर्शित करता हूँ जिसने शोध कार्य के दौरान अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं के साथ मुझे कार्य समाप्ति के लिए सतत् प्रेरित किया।

मैं टङ्कण कार्य के लिए शबनम खान, परम कम्प्यूटर रेलवे स्टेशन, कोटा, जिनके अथक सहयोग से यह शोध कार्य अन्तिम रूप प्राप्त कर सका। मैं उनका आभारी हूँ जिन्होंने मेरी हस्तलिखित सामग्री को यथासंभव शुद्ध टंकित करके इस शोध प्रबन्ध को वर्तमान रूप प्रदान किया।

विश्व में कोई भी पूर्ण ज्ञानी नहीं है जो प्रत्येक कार्य को सम्पूर्ण करने में समर्थ हो। मैं समझता हूँ कि इस शोध प्रबन्ध में त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है अतः विद्वज्जनों से मेरा नम्र निवेदन है कि उन त्रुटियों को क्षमा की दृष्टि से देखते हुए मुझे उचित मार्गदर्शन प्रदान करेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सुधीपाठक मेरे इस शोध–प्रबन्ध का रूचिकर अध्ययन कर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

शोधार्थी

अक्षय राज मीना

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
	शोध सार	**i - ii**
	प्राक्कथन	**iii-vii**
प्रथम अध्याय	**कवि का पूर्णाङ्ग परिचय**	**1 — 14**
	(i) जन्म, स्थान तथा काल	
	(ii) शिक्षा, शैक्षणिक उपलब्धियाँ तथा राजकीय सेवाएँ	
	(iii) कवि की रचनाधर्मिता	
	(iv) पुरस्कार, सम्मान एवं उपलब्धियाँ	
द्वितीय अध्याय	**भीष्मचरितं महाकाव्य की कथावस्तु का मूलस्रोत महाभारत**	**15 — 69**
	(i) महाभारत के पर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा	
	(ii) सर्गानुसार भीष्मचरितं का संक्षिप्त कथानक	
तृतीय अध्याय	(i) मूलकथा से प्रस्तुत महाकाव्य में परिवर्तन एवं कविकल्पना	**70 — 90**
	(ii) महाभारतीय भीष्मकथा पर आधृत ग्रन्थों का विवरण	
चतुर्थ अध्याय	**भीष्मचरितं महाकाव्य का महाकाव्यत्व**	**91 — 194**
	(i) महाकाव्य का लक्षण	
	(ii) वस्तु विभाजन	
	(iii) नेता–पात्रों का चरित्र–चित्रण	
	(iv) रस–अलंकार–गुण	
	(v) छन्द योजना	
पंचम अध्याय	**महाकवि की रचनाधर्मी प्रतिभा**	**195–249**
	(i) भाषा–शैली	
	(ii) कविकृत वर्णन कौशल की वर्तमान में प्रासंगिकता	
	(iii) पूर्व कवियों का प्रभाव और उत्तरकाल को कवि की देन	
उपसंहार		**250 — 253**
शोध संक्षेपिका		**254 — 258**
संदर्भ ग्रन्थ सूची		**259 — 265**
प्रकाशित शोध पत्र		

प्रथम अध्याय

कवि का पूर्णाङ्ग परिचय

(i) जन्म, स्थान तथा काल

(ii) शिक्षा, शैक्षणिक उपलब्धियाँ तथा राजकीय सेवाएँ

(iii) कवि की रचनाधर्मिता

(iv) पुरस्कार, सम्मान एवं उपलब्धियाँ

(i) जन्म स्थान तथा काल

प्राचीनकालीन संस्कृत विद्वानों के विषय में यह जानना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता था कि वे कहाँ पैदा हुए थे तथा उनके जीवन की कथा क्या है? यही कारण था कि प्राच्य संस्कृत विद्वानों का एतत्सम्बन्धी परिचय मात्र अनुमान व किंवदन्तियों पर ही निर्भर होता था, किन्तु आधुनिक संस्कृत विद्वानों के विषय में इस प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता है क्योंकि वे अपने विषय में पूर्ण विवरण स्वयं लिपिबद्ध कर देते हैं। डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने भी अपने विषय में पूर्ण विवरण प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में दिया है, जिससे उनके जीवन–परिचय को जानने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

डॉ. हरिनारायण दीक्षित का जन्म उत्तरप्रदेश के जालौन नामक जिले में स्थित ग्राम ''पड़कुला'' पोस्ट सरावन में हुआ था जैसा कि उन्होंने भीष्मचरितम् महाकाव्य के स्वोपज्ञ जीवनवृत्त में लिखा हैः–

रम्ये हृद्ये विमलचरिते भारते धर्मदेशे,
जालौनाख्ये लघुजनपदे चोत्तर सुप्रदेशे।
ग्रामोऽस्त्यको भुवि पढकुलाख्यो न तुल्यो नवीनैः
प्रायः कृष्यां निहितमनसो मानवा यत्र सन्ति।।[1]

महाकवि द्वारा अपने महाकाव्य के संक्षिप्त कवि परिचय में अपने पितरौ का नामोल्लेख किया गया है–

विप्रो मान्यस्सदसि रघुवीरस्सहायान्तनामा
धर्मज्ञश्च प्रतुलविभवो मे पिता दीक्षितोऽस्ति।
पूज्या माता विमलहृदया नाम यस्याः सुदामा
तस्मिन् ग्रामे मम सुपितरौ वासमेतौ विधत्तः।।[2]

इसी ग्राम में निवास करने वाले ब्राह्मण दम्पत्ति पण्डित रघुवीर सहाय दीक्षित तथा श्रीमती सुदामा देवी के घर में तेरह जनवरी सन् उन्नीस सौ छत्तीस ई. को कृष्ण पक्ष की माघ चतुर्थी को एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम हरिनारायण दीक्षित रखा गया, जो कि कालान्तर में महाकवि डॉ. हरिनारायण दीक्षित के नाम से विख्यात हुए।

---

1. भीष्मचरितम्–कवि परिचय/1
2. तत्रैव– कवि परिचय/2

(ii) शिक्षा, शैक्षणिक उपलब्धियाँ एवं राजकीय सेवाएँ

डॉ. हरिनारायण दीक्षित बाल्यकाल से ही बहुत प्रतिभावान थे। ग्रामीण वातावरण में रहते हुए भी शिक्षा के प्रति ये बहुत ही जागरुक थे। भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत भाषा के प्रति अनुकूल वातावरण कवि को अपने पिता से ही मिला था। यही कारण है कि इन्होंने अपनी शिक्षा प्राच्य तथा आधुनिक दोनों ही पद्धतियों से सम्पन्न की।

दीक्षित जी ने सर्वप्रथम वाराणसेय विश्वविद्यालय, वाराणसी जो वर्तमान में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के रूप में विख्यात हो गया, इस विश्वविद्यालय से क्रमशः व्याकरणाचार्य, सांख्योगाचार्य तथा साहित्याचार्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। तदन्तर आगरा विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. की उपाधियाँ भी प्राप्त की। इतना ही नहीं साहित्य सम्मेलन प्रयाग से संस्कृत तथा हिन्दी में 'साहित्यरत्न' की भी उपाधि प्राप्त की। कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल में अध्यापन करते हुए डी.लिट्. की उपाधि भी प्राप्त की।

संक्षेप में कवि के शिक्षोपार्जन को हम इस रूप में समझ सकते हैं–

1. व्याकरणाचार्य (वाराणसेय विश्वविद्यालय, वाराणसी)
2. सांख्योगाचार्य (वाराणसेय विश्वविद्यालय, वाराणसी)
3. साहित्याचार्य (वाराणसेय विश्वविद्यालय, वाराणसी)
4. गीतारत्नोपाधि (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)
5. साहित्यरत्न–हिन्दी तथा संस्कृत विषय (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
6. बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. (आगरा विश्वविद्यालय)
7. डी. लिट् (कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल)

दीक्षित जी की संस्कृत के प्रति रूचि तथा योग्यता को देखते हुए सभी इनको अपने शिक्षण संस्थानों में अध्यापन कार्य हेतु आमन्त्रित करने लगे। दीक्षित जी ने जिन छः महाविद्यालय तथा एक विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया, उनका विवरण इस प्रकार है–

1. सीताराम जयराम संस्कृत महाविद्यालय, सुमेरपुर जिला उन्नाव, उत्तरप्रदेश
2. आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, उरई, जिला जालौन, उत्तरप्रदेश
3. बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तरप्रदेश
4. काशीनरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर जिला वाराणसी (उत्तर–प्रदेश)
5. राजकीय महाविद्यालय, टिहरी–गढ़वाल

6. डी.एस.बी. राजकीय महाविद्यालय, नैनीताल

7. कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ. दीक्षित 9 नवम्बर 1970 ई. में राजकीय महाविद्यालय टिहरी, गढवाल से स्थानान्तरित होकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नैनीताल में आये। सन् 1973 ई. में कुमाऊँ विश्वविद्यालय बनने पर इन्होंने यहाँ विभागीय वरिष्ठ प्रवक्ता, रीडर, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। डॉ. दीक्षित कुमाऊँ विश्वविद्यालय, के कला संकाय के अधिष्ठाता पद पर भी रहे। इनका सेवानिवृत्ति कालीन पद संस्था–प्रोफेसर एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष तथा अधिष्ठाता कला संकाय, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल था।

आप 1996 में 60 वर्ष की अधिवर्षिता पूर्ण करके कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष के पद से तथा कलासंकाय के अधिष्ठाता के पद से साथ ही सेवानिवृत्त हुए। आपके शोध निर्देशन में पचपन शोधार्थियों ने संस्कृत विषय में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

(iii) कवि की रचनाधर्मिता

महाकवि डॉ. दीक्षित जी ने महाकाव्य, दृश्यकाव्य, निबन्धावली, मुक्तककाव्य, कथाकाव्य आदि विधाएँ को अपनी लेखनी से लिपिबद्ध किया है। महाकवि ने संस्कृत साहित्य को उन्तीस रचनाएँ प्रदान की है। कवि की एक रचना श्रीगुरुमहाराजचरितम् (महाकाव्य) प्रकाशनाधीन है। महाकवि डॉ. दीक्षित जी की प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. **संस्कृतानुवादकलिका** – नयाप्रेस, रामनगर, उरई, जालौन, उत्तरप्रदेश सन् 1965

– यह कवि की प्रथम कृति है, जो कवि द्वारा छात्रों को अनुवाद की विधिवत् शिक्षा देने के लिए लिखी गई हैं।

2. **संस्कृतनिबन्धरश्मि**–जनताप्रेस, दुर्गागंज रोड, ज्ञानपुर, वाराणसी सन् 1968

– यह रचना कवि ने इण्टरमीडिएट तथा बी.ए. के छात्रों को निबन्ध की शिक्षा देने हेतु लिखी है।

3. **श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम्**– (गद्यकाव्य) देववाणीपरिषद, वाणी विहार, दिल्ली–59 सन् 1981

– यह कवि की प्रथम मौलिक गद्य कृति है। इसमें कवि ने दक्षिण के महान् साहित्यशास्त्री श्री अप्पयदीक्षित के जन्म, नामकरण, पितृविरह, गार्हस्थ्य में प्रवेश, उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, कर्मकाण्ड में प्रकाण्डता, राजसम्मान की प्राप्ति, शत्रुओं का उनके प्रति द्वेषपूर्ण व्यवहार, शरणागत शत्रु के प्रति वात्सल्यभाव, दीक्षितजी की सन्तति, शिष्यों के प्रति प्रेम एवं उनके सम्पूर्ण जीवन चरित का वर्णन अत्यन्त सरल तथा मनोरम शैली में किया है।

4. **तिलकमञ्जरी** : एक समीक्षात्मक अध्ययन (पीएच.डी. शोधग्रन्थ)– भारतीय विद्या प्रकाशन, 1 यू.बी. बग्लोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली–7 सन् 1982

– संस्कृत साहित्य के महान् कथाकाव्यकार धनपाल प्रणीत 'तिलकमञ्जरी' पर कवि ने प्रशंसनीय समीक्षा प्रस्तुत की है। यह कवि का पीएच.डी. उपाधि हेतु लिखा गया शोधग्रन्थ है।

5. **संस्कृत साहित्य में राष्ट्रियभावना** (डी.लिट् शोधग्रन्थ)–देववाणी परिषद्– 6 दिल्ली 59 सन् 1983

– कवि ने डी.लिट्. उपाधि हेतु लिखे गये इस ग्रन्थ में राष्ट्र के हित में राष्ट्रभक्त शूरवीर नर–नारियों द्वारा किये गये शौर्यपूर्ण आत्मबलिदानों की रोमाञ्चक कथाएँ हैं, इन कथाओं से

भारत के अतीत तथा वर्तमान की जो हृदयावर्जक झाँकी सजायी गयी है, तथा भविष्य की जो आशापूर्ण परिकल्पनाएँ की गई है, उन सबका मर्मस्पर्शी सारसर्वस्व विवरण मधुभक्षिकान्याय से प्रस्तुत किया है। इसके माध्यम से कवि ने अपनी राष्ट्रिय भावना तथा देशप्रेम को अभिव्यक्त किया है।

6. **मेनकाविश्वामित्रम् (दृश्यकाव्य)–** ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825 न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–7 सन् 1984

– आठ अंकों वाले इस दृश्यकाव्य में अप्सरा मेनका तथा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के अलौकिक प्रेम तथा उनकी पुत्री शकुन्तला के जन्म का वर्णन है।

7. **संस्कृत निबन्धावली –** ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–7 सन् 1985

– आचार्य तथा एम.ए. उपाधि प्राप्त करने वाले छात्रों के लाभार्थ कवि ने इस निबन्धसंग्रह में विविध निबन्धों की रचना की है।

8. **राष्ट्रियसूक्तिसंग्रह**–अक्षयवटप्रकाशन 26, बलरामपुर हाउस इलाहाबाद–2 सन् 1987

– कवि ने इस सूक्ति संग्रह में राष्ट्रीय भावों से परिपूर्ण एक हजार से अधिक सूक्तियों का अनुवाद सहित संग्रह किया है।

9. **श्री हनुमद्दूतम् (सन्देशकाव्य)–** ईस्टर्न बुक लिंकर्स–5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7 सन् 1987

– **"श्रीहनुमद्दूतम्"** नामक सन्देश काव्य में कवि ने एक सौ बारह पद्यों के माध्यम से लंकापुरी में राक्षसराज रावण की कैद में पड़ी हुई जनक नन्दिनी सीतामाता द्वारा अपने पति श्रीरामचन्द्रजी को भेजे गये सन्देश का वर्णन किया है। कवि ने अपने इस काव्य में विचारों की परिपक्वता, अनुभव की स्वाभाविक सम्प्रेषणीयता, दाम्पत्य की दृढ़ता, विपत्तिकालीन धीरता, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि विविध मानवीय पक्षों को कुशलतापूर्वक उजागर किया है।

10. **गोपालबन्धुः (कथाकाव्यम्)** – ईस्टर्न बुक लिंकर्स–5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–7 सन् 1988

– इस कथाकाव्य में कवि ने वृन्दावन धाम के समीप स्थित गाँव में प्रौढ़ावस्था वाली एक आभीर जाति की निर्धन तथा दुःखी स्त्री का वर्णन किया है। जो अपने पुत्र राकेश को

आचार्य नीलकण्ठ के पास विद्यालय भेजती है, विद्यालय का रास्ता जंगल में होकर जाता था। माँ ने राकेश से कहा जंगल में डर लगे तो गोपाल (कृष्ण) को याद कर लेना।

11. **शोधलेखावली (शोधपत्रों का संग्रह)** – ईस्टर्न बुक लिंकर्स–5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–7 सन् 1988

– कवि की इस कृति में उनके द्वारा लिखित उन शोधपत्रों का संकलन है, जो प्रतिष्ठत पत्र–पत्रिकाओं तथा सम्मेलनों में स्थान पा चुके हैं।

12. **गद्य काव्य समीक्षा** – ईस्टर्न बुक लिंकर्स–दिल्ली–7 सन् 1991

– रचनाकार डॉ. दीक्षित ने इस ग्रन्थ में गद्यकाव्य की विशेषताओं को विस्तार से प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ जिज्ञासु पाठकों तथा शोध छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

13. **भीष्मचरितम् (महाकाव्य)**–ईस्टर्न बुक लिंकर्स – दिल्ली सन् 1992

– कवि ने इस महाकाव्य को बीस सर्गों में निबद्ध किया है, जिसमें महाभारत के नायक भीष्म पितामह के सम्पूर्ण जीवन चरित का वर्णन किया गया है।

14. **देशोऽयंकुरुते प्रोन्नतिम् (मुक्तक काव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स–दिल्ली सन् 1993

– एक सौ नौ श्लोकों वाले इस मुक्तक काव्य में कवि ने वर्तमान समय में व्याप्त ज्वलन्त राष्ट्रीय समस्या को अत्यन्त कुशलता से उभारा है। राष्ट्रीय सद्भावना से परिपूर्ण इस काव्य के माध्यम से कवि ने पाठकों को यह संदेश देने का प्रयत्न किया है कि सभी को समान अधिकार प्राप्त है। फलतः 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए, जिससे कि भारत ज्ञान के हर क्षेत्र में वास्तविक उन्नति को प्राप्त कर सकें। इस काव्य में कवि ने व्यङ्गयात्मक शैली का प्रयोग किया है।

15. **उपदेशशती (शतक काव्य)** – ईस्टर्न बुक लिंकर्स – सन् 1995

– एक सौ सत्रह पद्यों वाले इस शतक काव्य में कवि ने अन्योक्ति के माध्यम से समाज में व्याप्त कुनीति, अन्याय, अत्याचार आदि पर व्यङ्ग्य कर उनसे सावधान रहने का उपदेश दिया है। कवि ने कौवा, सियार, श्वान, कोयल, हिरन, शेर, बाज, मेंढक, सूअर, भालू, आम्रवृक्ष, बबूल, करीर, नीम, बुद्धिमान आदि के सन्दर्भों द्वारा नीतिपरक श्लोकों का प्रणयन किया है।

16. **भारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसा (सहसम्पादन)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स – सन् 1995

– इस ग्रन्थ में कवि ने भारत के विभिन्न विद्वानों के काव्यशास्त्रीय शोधलेखों का सम्पादन किया है।

17. **पण्डितराज जगन्नाथकाव्यग्रन्थावली** (सम्पादित तथा अनूदित) ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 1996

– इस ग्रन्थ में कवि ने महान् साहित्यशास्त्री तथा साहित्यकार पं. जगन्नाथ की सम्पूर्ण उपलब्ध काव्यसम्पदा यथा–पीयूषलहरी, अमृतालहरी, करुणालहरी, लक्ष्मीलहरी, सुधालहरी, प्रास्तविकविला, अन्योक्तिविलास, श्रृंगारविलास, करुणाविला, आसफविलास, प्राणाभरण/जगदाभरण, रसगंगाधरमात्रस्थपद्यानि, प्रस्फुटितान्योक्तयः, प्रस्फुटितपद्यानि आदि का तदनुरूप अनुवादपूर्वक सम्पादन किया है।

18. **गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयीयम् (खण्डकाव्यम्)**–स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, सन् 2002।

– दो सौ अड़तालीस पद्यों में लिखे गये इस खण्डकाव्य में कवि ने हरिद्वार तीर्थ में साधु–सन्तों के दर्शन से तृप्त हुए चित्त वाले दम्पत्ति द्वारा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय देखने की इच्छा प्रकट की जाती है। फलतः वे दोनों पति–पत्नि विश्वविद्यालय की विशेषताओं को जानने की आकांक्षा से वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ उनका सम्पर्क उद्यान के पास एक वृक्ष के नीचे बैठे नवयुवक से होता है। वह नवयुवक उक्त दम्पत्ति को गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय की विशेषताओं से अवगत कराते हुए कहता है कि यहाँ पर विद्यार्थी, कर्मचारी एवं अभिभावक कर्त्तव्यनिष्ठ है। विश्वविद्यालय के अधीन महाविद्यालय, पुस्तकालय आदि समस्त प्रकार की सुविधाएँ हैं।

19. **भारतमाताब्रूते (महाकाव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2003

– यह महाकाव्य बाईस सर्गों में लिखा गया है। इसमें कवि भगवान् लक्ष्मीनारायण भारतभूमि के विषय में चिन्तन करते है और कश्मीर जाते है। कश्मीर की घाटियों से अनिष्ट के कारण तीर्थस्थली हरिद्वार आते है। अन्त में भारतमाता के पुनः अवतार के कारण देवी लक्ष्मी वैकुण्ठ को गमन करती हैं।

20. **राधाचरितम् (महाकाव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2005

– कवि ने इस महाकाव्य को बीस सर्गों में निबद्ध किया है जिसमें राधा का सम्पूर्ण जीवनचरित्र वर्णित किया गया है।

21. **बुन्देलखण्डी कवि पं. राजाराममिश्रकाव्यसंग्रह (सम्पादित)** – ईस्टर्न बुक लिंकर्स सन् 2006

– कवि ने इस ग्रन्थ में बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध कवि पं. राजाराममिश्र की उपलब्ध सम्पूर्ण काव्यसम्पदा का संकलन कर तदनुरूप सरलभाषा में अनुवादपूर्वक सम्पादन किया है।

22. **श्रीग्वल्लदेवचरितम् (महाकाव्य)**–ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2008

– सत्ताईस सर्गों का यह महाकाव्य जिसमें उत्तराखण्ड की संस्कृति सभ्यता के साथ सामाजिक जीवन का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। धूमाकोट नामक नगर के राजा हालराय का वर्णन है। राजा ने सात रानियों के बाद आठवीं से विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र को जल में बहा दिया गया। निःसन्तान दम्पत्ति को मिलने के बाद उस पुत्र का नाम ग्वल्ल रखा गया।

23. **पशुपक्षिविचिन्तनम् (खण्डकाव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2008

– इस खण्डकाव्य में कवि ने वर्तमान युग में हिंसक प्रवृत्ति वाले मनुष्यों द्वारा मनुष्येत्तर प्राणियों पर किये जा रहे अत्याचारों का वर्णन किया है। प्रस्तुत खण्डकाव्य पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। विद्याधर नामक वैद्य के माध्यम से पूर्वार्द्ध भाग में पशुओं पर होने वाले अत्याचारों तथा उत्तरार्द्ध में पक्षियों पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन कर अन्त में विद्याधर द्वारा पशु–पक्षियों के रक्षार्थ एक पत्र राष्ट्रपति को भेजे जाने के साथ खण्डकाव्य सम्पन्न होता है।

24. **मनुजाश्शृणुत गिरं मे (मुक्तककाव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स, सन् 2008

– इस मुक्तक काव्य में कवि ने एक सदुपदेशक के रूप में समाज को हितकारी उपदेश दिया हैं। अपने आस–पास के वातावरण में व्याप्त कुप्रथा, कुरीति, भ्रष्टाचार इत्यादि अत्याचारों से व्यथित होकर सज्जन मनुष्यों को सावधान करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में कवि द्वारा प्रस्तुत किये गये नीतिवचन सहृदयों के लिए निश्चय ही आत्मसात् करने योग्य है।

25. **अजमोहभङ्गम् (खण्डकाव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2009

– छः सर्गों वाले इस खण्डकाव्य में अपनी पत्नी रानी इन्दुमती की आकस्मिक मृत्यु से मोहग्रस्त होकर कर्त्तव्यपथ से विमुख हो जाने वाले रघुवंशी राजा अज का, अपने कुलपुरोहित ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के उपदेशामृत को आत्मसात् करने के फलस्वरूप मोहासक्ति से मुक्त होने तथा पुनः अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने का प्रेरणाप्रद वर्णन किया गया है।

26. **निर्वेदनिर्झरिणी (कथाकाव्य)**–ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2010

– इस कथाकाव्य में कवि ने कृति के नायक विद्याधर के माध्यम से चौदह कथाओं का वर्णन कर उन्हें परस्पर सम्बद्ध करके निर्वेद को महती निर्झरिणी का रूप दिया है।

27. **वाल्मीकिसम्भवम् (दृश्यकाव्य)**–ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2010

– छः अंकों वाले इस दृश्यकाव्य (नाटक) में कुसङ्गति के कारण दस्यु बन जाने वाले, लोक में 'रत्नाकर' नाम से विख्यात, अग्नि शर्मा नामक ब्राह्मण का सप्तर्षियों की सुसङ्गति के फलस्वरूप ब्रह्मर्षि तथा आदिकवि वाल्मीकि बनने का तपोमय तथा संघर्ष से परिपूरित प्रेरक कथानक प्रस्तुत किया गया है।

28. **दुर्जनाचरितम् (शत्तककाव्य)**–ईस्टर्न बुक लिंकर्स–सन् 2011

– इस शतक काव्य में कवि ने दो सौ इक्यावन श्लोकों के अन्तर्गत दुर्जनों की धूर्तता, वञ्चकता, आक्रामकता, दुर्जनता आदि आचरणों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करके सज्जनों को उनसे सावधान रहने का सदुपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त दुर्जनों को अपने आचरण में सुधार लाने का भी निर्देश दिया है।

29. **सज्जनाचरितम् (शतककाव्य)**– ईस्टर्न बुक लिंकर्स सन् 2012

– इस शतक काव्य के दो सौ इक्यावन श्लोकों में कवि ने सुभाषित सम्पन्न वैदर्भी शैली में सज्जनों के आचरण तथा उनके विविध मनोहारी गुणों का वर्णन करते हुए यह सन्देश देने का प्रयत्न किया है सभी लोगों को सज्जनों का सत्कार करना चाहिए तथा उनके आचरणों का अनुसरण करना चाहिए, ताकि यह मानव समाज तथा संसार सुखपूर्वक जीवन यापन कर सके।

अप्रकाशित रचना –

1. **श्री गुरुमहाराजचरितम् (महाकाव्य)**

<u>धर्म</u>

महाकवि दीक्षित बाल्यकाल से ही प्रतिभावान थे। इनके पिताजी भी विद्वान् पण्डित थे। फलतः दीक्षित जी का धार्मिक होना स्वाभाविक ही है। कवि का सभी धर्मों के प्रति समान आदरभाव दृष्टिगोचर होता है। कवि ने स्थान–स्थान पर भगवान शिव, विष्णु, शक्ति, आञ्चलिक देव, गुरुदेव आदि की प्रशंसा की है। अपने प्रत्येक काव्य में मङ्गलाचरण के रूप में कवि ने श्रीगणेश, विष्णु, कृष्ण, शिव, सरस्वती आदि देवताओं का स्तवन किया है, कवि की कर्मभूमि

उत्तराखण्ड होने के कारण कवि ने उत्तराखण्ड के देवी–देवताओं की स्तुति भी की है।[1] जहाँ एक ओर महाकाव्य 'श्रीग्वल्लदेवचरितम्' में भगवान् शिव तथा उनके अंश श्रीग्वल्लदेव की आराधना का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर 'राधाचरितम्' नामक महाकाव्य में श्रीकृष्ण के साथ–साथ उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी की स्तुति भी कवि ने की है। इसी प्रकार 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ब्रह्मा, विष्णु और देवाधिदेव शङ्कर की स्तुति की है–

उमापतिं स्तोतृज्ञनार्तिहारकं,
सदाशुतोषं विधिविष्णुवन्दितम्।
महाधिदेवं शिवरात्रिपूजितं
नमामि शम्भुं कविबुद्ध्यवाप्तये।।[2]

इसके अतिरिक्त गुरुभक्ति मातृ–पितृ भक्ति का दर्शन भी कवि के काव्यों में स्थान–स्थान पर दृष्टिगत होता है।

कवि का शास्त्रीय ज्ञान

डॉ. दीक्षित संस्कृत भाषा, व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् है। इससे उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्रभावित नहीं हुई। इनके काव्यों में ऐसे अनेक तथ्यों का समुल्लेख प्राप्त होता है, जिससे उन्हें अन्य शास्त्रों का विशिष्ट ज्ञान था यह प्रमाणित होता है। राजकुमार श्रीग्वल्लदेव के जनेऊ आदि संस्कारों का उल्लेख कवि ने बड़े आदर के साथ किया है।[3] जिससे इनका धर्मशास्त्र में पारंगत होना सिद्ध होता है। 'भीष्मचरितम्' में चौसठ कलाओं का संकेत मिलता है।[4] आयुर्वेद के प्रति भी डॉ. दीक्षित की गहरी रूचि है। वैद्य विद्याधर के माध्यम से 'पशुपक्षिविचिन्तनम्' नामक खण्डकाव्य में कवि ने वैद्यक ज्ञान का दर्शन कराया है। दर्शनशास्त्र सम्बन्धी संकेत भी कवि की रचनाओं में[5] प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति[6], काव्यशास्त्र तथा कामशास्त्र[7] इत्यादि विषयों का वर्णन कवि के काव्यों में प्रतिबिम्बित होता है।

---

1. श्रीग्वल्लदेवचरितम् 1/75–76
2. भीष्मचरितम् 1/2
3. श्रीग्वल्लदेवचरितम् 18/7
4. भीष्मचरितम्–दशवाँ सर्गः
5. तत्रैव, 1/2,3,9
6. श्रीग्वल्लदेवचरितम्–एकविंश सर्गः
7. भीष्मचरितम्–10/27–28

डॉ. दीक्षित के काव्यों में श्रेष्ठ मानवीय गुणों की चर्चा की गई है। इससे उनके व्यक्तित्व तथा गुणों की पहचान की जा सकती है। 'श्रीग्वल्लदेवचरितम्' नामक महाकाव्य का इक्कीसवाँ सर्ग मानवीय गुणों के उदाहरणों से परिपूर्ण है। कवि में स्वार्थ परायणता का अभाव, प्रारब्ध कर्मों के फल[1] तथा भाग्यवादिता भी देखी जाती है। दूसरों से ईर्ष्या करना, दूसरों के दोषों को ढूँढना इत्यादि भाव डॉ. दीक्षित में दिखाई नहीं देते हैं। वे इसकी सर्वत्र निन्दा करते हैं।

कवि द्वारा वर्णित काव्यों के आधार पर यदि हम उनके व्यक्तित्व का निर्धारण करे तो हमें उनके व्यक्तित्व में विविध आयाम की झलक दृष्टिगोचर होती है। यथा– मातृपितृभक्ति[2], गुरुभक्ति[3], श्रीराधाकृष्ण उपासक[4], राष्ट्र के प्रति अगाध श्रद्धा[5], कर्मयोग के व्याख्याता[6], प्रकृतिसंरक्षण के प्रति प्रति जागरुक[7], सौम्य व्यवहार से सम्पन्न[8], सूक्तिप्रिय[9], जीवों के प्रति दयाभाव[10], स्त्रियों के प्रति आदरभाव तथा नारी शिक्षा के प्रबल पक्षधर[11], समाज में व्याप्त कुरीतियों के आलोचक[12], वर्तमान समाज में सभ्यता तथा संस्कृति के ह्रास से चिन्तित[13] इत्यादि।

कवि का जीवन–दर्शन

संसार में प्रत्येक प्राणी का जीवन समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, धर्म तथा दर्शन इन तत्त्वों से अवश्य ही प्रभावित होता है। जीवन को प्रभावित करने वाले इन्हीं तत्त्वों के विषय में व्यक्ति की जो धारणा होती है वही 'जीवन दर्शन' कहलाती है।

कवि द्वारा रचित महाकाव्यों में विविध दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि सभी भारतीय आस्तिक–नास्तिक दर्शनों का नामोल्लेख डॉ. दीक्षित ने नहीं किया है तथापि सभी भारतीय दर्शनों के कुछ विचारों का समावेश कवि के काव्यों में दृग्गोचर होता है। कवि के मत में आस्तिक भाव रूप में ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ तथा सभी की रक्षा करने वाला है–

---

1. श्रीग्वल्लदेवचरितम्–3/11
2. तत्रैव–मंगलाचरण
3. तत्रैव–मंगलाचरण
4. राधाचरितम्–कृतज्ञतासर्ग
5. भीष्मचरितम्'1/12, 13, 15
6. राधाचरितम्–क्रिया सर्ग
7. तत्रैव–प्रकृतिपोषण सर्ग
8. सज्जनाचरितम्
9. राष्ट्रिसूक्तिसंग्रह
10. पशुपक्षिविचिन्तम्
11. भारतमाताब्रूते–16/45, 20/39–42
12. तत्रैव–एकोनविंश सर्ग
13. तत्रैव–द्वादशः सर्गः

व्रजन्ति मूका अपि वावदूकतां,
तरन्ति पाषाणशिलाश्च वारिधौ।
चराचरेशस्य च यस्य लीलया,
सहायतां मे कुरुतात्स ईश्वरः।।[1]

कवि की ईश्वर पर प्रगाढ़ आस्था है[2] कवि पुनर्जन्म तथा कर्मयोग के सिद्धान्त को मानते हैं।[3] कर्मानुसार ही फलप्राप्ति होती है। कवि पुनर्जन्म में कर्मफल का वर्णन करते हैं–

नूनं समस्तैरपि पूर्वजन्मनि,
कृतानि पुण्यानि बहूनि तैर्जनैः।
ह्यद्यात्र भार्या नृपतिश्चधर्मविद्,
न लभ्यते पुण्यफलं विना जनैः।।
पुण्यं विना नैव यथाप्यते यशः,
यथा कवित्वं न च पुण्यमन्तरा।
तथैव पुण्यस्य बलं विना जनैः,
न प्राप्यतेधर्मधुरन्धरो नृपः।।[4]

कवि का मानना है कि जो मनुष्य विद्या–अविद्या के स्वरूप को जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता हैं वह बन्धनमुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है। उनके काव्यों में इसी प्रकार की संस्कृति तथा सिद्धान्त दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृति तथा सभ्यता के विषय में कवि का कथन है कि मनुष्य को सदा अपनी संस्कृति तथा सभ्यता के अनुसार कार्य करना चाहिए।[5] 'भारतमाताब्रूते' महाकाव्य में तो कवि ने भारतमाता को नायिका बनाकर सभ्यता तथा संस्कृति को उनकी पुत्री रूप में चित्रित कर वर्तमान समाज में व्याप्त सभ्यता तथा संस्कृति की दुर्दशा का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।[6]

डॉ. दीक्षित के जीवन में अहिंसा तथा दया का मूल सर्वोपरि है। वे किसी भी स्थिति में जीवहिंसा को पापकर्म मानते हैं। इसी भाव के वशीभूत होकर उन्होंने 'पशुपक्षिविचिन्तनम्' नामक खण्डकाव्य की रचना कर डाली। कवि हिंसापूर्ण यज्ञों का भी विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में

1. भीष्मचरितम्–1/9
2. तत्रैव–1/2
3. तत्रैव –1/3, 14/23–25
4. तत्रैव–18/4–5
5. तत्रैव–4/6
6. भारतमाताब्रूते–12/10–47

पशुबलि के रुधिर से गीली बनी हुई यज्ञशालाएँ यज्ञकर्ता को निश्चय ही नरक पहुँचाने वाली है, तथा पुण्य के नाम पर पाप को बढ़ावा देने वाली है–

स पूजा नहि पूजा,
यस्यां प्राणी निहन्यते बत कश्चित्
तद् भवनं नहि भवनं,
विरच्यते यन्निपात्य निर्धनगेहम्।।[1]

कवि सत्य, अहिंसा, तपस्या तथा आत्मकर्म विश्लेषण को ही सच्चा यज्ञ मानते हैं। कर्मयोग का उदाहरण हमें कवि रचित 'राधाचरितम्' नामक महाकाव्य में देखने को मिलता है।[2] कवि के विचारों में सत्य, अहिंसा, दया, राष्ट्रीयता की भावना की प्रमुखता है, इसके साथ ही संसार की परख है, परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता की अनुभूति है, प्रेम की अमरता है, व्यवहार कुशलता है, निर्भीकता है तथा साथ ही जीवों के प्रति करुणा की भावना भी है।

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि डॉ. दीक्षित जी में उत्तम गुणों का विकास है जो मानवीय धरातल पर आदर्श के रूप में देखे जाते हैं। कवित्व प्रतिभा के साथ–साथ कवि को अन्य अनेक शास्त्रों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त है। तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथ्यों को उपस्थापित करने में डॉ. दीक्षित की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इनके काव्यों में अनेक सूक्तियों, शास्त्रीय सन्दर्भों, पौराणिक कथाओं आदि का प्रयोग देखने को मिलता है। कवि रचित महाकाव्यों में कवि की प्रतिभा तथा कल्पना पूर्णरूप से स्फुरित हुई है।

---

1. निर्वेदनिर्झरिणी–कथा सं. 7
2. राधाचरितम्–उद्बोधनसर्ग, क्रियासर्ग

(iv) पुरस्कार, सम्मान एवं उपलब्धियाँ

महाकवि दीक्षित को उनकी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए दिये गये विविध पुरस्कारों की सूची निम्नलिखित है–

पुरस्कार

1. **श्रीहनुमद्दूतम् (सन्देशकाव्य)** सन् 1987 ई., उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ द्वारा विशेष पुरस्कार।
2. **गोपालबन्धुः (गद्यकाव्य)** सन् 1988 ई., बाणभट्ट पुरस्कार, उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ।
3. **भीष्मचरितम् (महाकाव्य)** सन् 1991 ई., विशेष पुरस्कार, उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ।
4. **संस्कृत साहित्य के सर्जनार्थ** दिया गया पुरस्कार सन् 1991 ई., भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता।
5. **भीष्मचरितम् (महाकाव्य)** सन् 1992 ई., साहित्य अकादमी पुरस्कार, साहित्य अकादमी, दिल्ली।
6. **राष्ट्रपति पुरस्कार**, सन् 2003 ई., भारत सरकार।
7. **वाणी पुरस्कार**, सन् 2008 ई.।
8. **वाचस्पति पुरस्कार**, सन् 2009 ई., के.के. बिडला फाउण्डेशन।

सम्मान

उक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त उन्हें 'लोक संस्कृति सेवानिधि मण्डपम्' उरई (जिला–जालौन उत्तर प्रदेश) द्वारा सन् 2006 ई. में 'पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी' अलङ्करण तथा गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा सन् 2007 ई. में 'अन्तार्राष्ट्रिय विद्यारत्नाकर सारस्वत सम्मान' प्रदान किये गये हैं।

सम्प्रति महाकवि–196, बड़ा बाजार, मल्लीताल, नैनीताल (उत्तरांचल) में निवास कर रहे है। कवि से प्रत्यक्षतः साक्षात्कार या संवाद नहीं हो सका है।

♦♦♦♦

अध्याय द्वितीय

भीष्मचरितं महाकाव्य की कथावस्तु का मूलस्रोत महाभारत

(i) महाभारत के पर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा

(ii) सर्गानुसार भीष्मचरितं का संक्षिप्त कथानक

(i) महाभारत के पर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा

भीष्म महाभारतीय कथा के मेरुदण्ड है जिन पर पूरा महाभारत अवलम्बित है। लगभग सभी पर्वों में किसी न किसी रूप में भीष्म की कथा उपलब्ध होती है। संक्षेप में महाभारतीय भीष्म कथा का पर्वानुसार विवरण इस प्रकार है–

(i) **आदिपर्व** – सम्भवपर्व के अध्याय 97–105, 108

– विदुरागमन राज्यलम्भपर्व के अध्याय 202

(ii) **सभापर्व** – अर्घाभिहरणपर्व के अध्याय 36–39

– शिशुपालवधपर्व के अध्याय 40, 42–45

– दूतपर्व के अध्याय 67, 69, 71

– अनुद्यूतपर्व के अध्याय 74, 76

(iii) **वनपर्व** – घोषयात्रापर्व के अध्याय 253

(iv) **विराटपर्व** – गोहरणपर्व के अध्याय 28, 51, 52, 64

(v) **उद्योगपर्व** – संजययानपर्व के अध्याय 21

– यानसन्धिपर्व के अध्याय 49, 62

– भगवद्यानपर्व के अध्याय 88, 126, 138

– सैन्यनिर्याणपर्व के अध्याय 156

– रथातिरथसंख्यानपर्व के अध्याय 165–172,

– अम्बोपाख्यानपर्व के अध्याय 173–175, 178–185, 191–193

(vi) **भीष्मपर्व** – श्रीमद्भगवद्गीतापर्व के अध्याय 13–15, 18

– भीष्मवधपर्व के अध्याय 43, 47–49, 52, 58–59, 65–68, 97, 98, 106–108, 119–122

(vii) **द्रोणपर्व** – द्रोणाभिषेकपर्व के अध्याय, 1,3,4

(viii) **कर्णपर्व** – अध्याय 73

(ix) **शान्तिपर्व** – राजधर्मानुशासनपर्व के अध्याय 46,47,50–52,54–58

– मोक्षधर्मपर्व के अध्याय 185, 188

(x) **अनुशासनपर्व** – दानधर्मपर्व के अध्याय 1,14,59,163,164,166

– भीष्मस्वर्गारोहणपर्व के अध्याय 167, 168

इस प्रकार महाभारत में भीष्म की कथा **दस पर्वों** के **बाईस उपपर्वो** में मिलती है तथा किसी न किसी रूप में सभी पर्वों में उपलब्ध होती है।

(i) आदिपर्व

आदिपर्व के उपपर्व सम्भवपर्व के अध्याय सन्तानवें से एक सौ पांच में भीष्मकथा इस प्रकार है–

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! महाराज शान्तनु बड़ी योग्यता के साथ प्रजापालन का कार्य कर रहे थे। उनके राज्य में कोई प्रजा दुःखी नहीं थी। वे स्वयं जाकर प्रजा के दुःख का पता लगाकर हल करते थे। एक दिन घूते फिरते सिद्ध चारणसेवित गंगाजी के तट पर पहुँच गये। उन्होंने देखा कि लक्ष्मी के समान एक कान्ति वाली सुन्दरी विचर रही है। राजा शान्तनु ने उसके पास जाकर पूछा तो गंगाजी ने कहा–राजन्! मैं आपकी इच्छा पूर्ण करुँगी और आपकी आज्ञापालन करुँगी, किन्तु आपको भी प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। मैं आपके साथ प्रिय या अप्रिय चाहे जैसा व्यवहार करुँ, आप मुझे मना नहीं करेगें या न कठोर वचन कहेंगे। आप जब तक प्रतिज्ञा का पालन करेगें तब तक मैं आपके पास रहूँगी। जिस दिन आपने इस प्रतिज्ञा का उल्लंघन किया मैं आपको छोड़कर चली जाऊँगी।

राजा शान्तनु ने गंगा की प्रतिज्ञा स्वीकार कर अपने रथ में बैठाकर राजधानी ले आये। दोनों बड़े सुखपूर्वक रहने लगे। शान्तनु ने प्रतिज्ञावश उसके विषय में कुछ नहीं पूछा। सुख का समय तो बहुत ही शीघ्र बीत जाता है। अनेकों वर्ष बीत गये, परन्तु राजा को थोड़े ही दिन व्यतीत हुए। गङ्गाजी के क्रमशः सात बालक हुए और गंगा यह कहकर के कि मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए इन्हें जल में फेंक रही हूँ। राजा शान्तनु को गंगा का यह काम अप्रिय लगा, परन्तु चली जाने के भय से कुछ नहीं कहा। जब आठवाँ बालक हुआ, तब भी गंगा हँसती हुई जल में फेंकने जा रही थी, परन्तु राजा ने रोक लिया और कहा–तुम कौन हो? तुम हत्याचारिणी हो, पापिनी हो। तुम्हारा नाम क्या है तनिक बताओ? गंगा ने कहा–महाराज! इस पुत्र को खुशी से रख लो। मैं अब इसे नहीं मारुँगी और आप इस पुत्र के कारण श्रेष्ठ पिता कहे जायेगे। अब मैं आपके पास नहीं रहूँगी, अब मेरी समयावधि पूरी हो गई। मेरे पिता राजर्षि जह्नु है, मेरा नाम गंगा है। बड़े–बड़े महर्षि मेरी सेवा करते हैं। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए मैंने ऐसा किया। वसिष्ठ के शाप से मुझे मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा। वसुओं से मैंने एक पुत्र जीवित रखने की प्रतिज्ञा करा ली थी। अभी तो मैं इस पुत्र को साथ ले जा रही हूँ। वहाँ पर अध्ययन करेगा और बड़ा होकर आपके पास चला आयेगा। इतना कहकर गंगा देवी अन्तर्धान हो गयी। शान्तनु की प्रवृत्ति और

रुचि धर्म की ओर अब अधिक हो गयी। शान्तनु के हृदय में किसी के प्रति राग–द्वेष नहीं था उनकी धर्मज्ञता, सत्यवादिता सरलता चारों ओर प्रसिद्ध थी। अपार शक्ति होने पर भी वे पृथ्वी के समान क्षमाशील थे। कोई भी किसी को दुःख नहीं देता था। सब राजाओं ने मिलकर उन्हें राजराजेश्वर सम्राट की पदवी दी थी। उनके मन में एक ही चिन्ता थी अपने पुत्र को देखने की। पुत्र प्राप्ति के लिए व्याकुल रहते थे।

एक दिन शान्तनु घूते–फिरते गंगा तट पर पहुँच गये। तब उन्हें आश्चर्य से देखा कि गंगा का जल कम हो गया। वे सोचने लगे कि क्या बात है।

ततो निमित्तमन्विच्छन् ददर्श स महामनाः।
कुमारं रूपसम्पन्नं वृहन्तं चारूदर्शनम्।।
दीव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम्।
कृत्स्त्रां गङ्गा समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम्।।[1]

अर्थात् जल की तरफ बढ़ने लगे और हृष्ट पुष्ट तेजस्वी बालक को अपने बाणों से गंगा की धारा को रोककर दीव्य अस्त्रों का प्रयोग करते देखा।[2] बालक के इस कार्य को देखकर शान्तनु चकित रह गये और अपने बालक को पहचान नहीं पाये, परन्तु बालक ने पिता को पहचान लिया और अन्तर्ध्यान हो गया। राजा शान्तनु बालक को ढूंढने लगे।

राजा शान्तनु ने गंगाजी को पुकारकर कहा–देवी! अभी जो बालक अन्तर्ध्यान हो गया, वह किसका है? मैं देखना चाहता हूँ। राजा की प्रार्थना सुनकर–

दर्शयामास तं गङ्गा बिभ्रती रूपमुत्तमम्।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलंकृतम्।।[3]

अर्थात् गंङ्गा देवी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर देवव्रत (बालक) का दाहिना हाथ पकड़कर राजा के सामने आयी।

गंगा ने कहा–महाराज! मेरे आठवे गर्भ से उत्पन्न पुत्र यही है। यह सम्पूर्ण विद्याओं में पारङ्गत हो गया है। इसने महर्षि वशिष्ठ, गुरु शुक्रचार्य, गुरू बृहस्पति और महर्षि परशुरामजी से

---

1. आदिपर्व–सम्भवपर्व–अध्याय 100/25–26
2. तत्रैव, 100/25–26
3. तत्रैव, 100/31

दीव्य एवं अमोघ अस्त्र शस्त्र सीख लिए हैं। यह बड़ा संयमी, सदाचारी और तत्त्वज्ञानी है। अब मैं इसे आपको सौंपती हूँ, इसे ले जाइये।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! गंगा देवी ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गयी। पुत्र के मिलने से शान्तनु प्रसन्न होकर राजधानी ले आये। आनन्द की सीमा नहीं रही। पुत्र देवव्रत को युवराज बना दिया। सम्पूर्ण प्रजा देवव्रत से प्रसन्न हो गयी। राजा शान्तनु देवव्रत को राज्यभार सौंपकर स्वच्छन्द विचरने लगे। चार वर्ष बीत गये।

देवव्रत को युवराज बनाकर शान्तनु निश्चिन्त हो गये थे। उनके मन में फिर से विषय वासना जाग उठेगी। इसको कोई नहीं जानता था। भगवान् को तो इनका विवाह करवाकर महान् वंश की सृष्टि करनी थी और ऐसा ही हुआ।

एक दिन महाराज शान्तनु विचरण करते हुए यमुना के किनारे पहुँच गये। वहाँ पर दीव्य सुगन्ध फैल रही थी। शान्तनु ने प्रसन्न होकर सुगन्ध का पता लगाने आगे बढ़ने पर जल के किनारे सुन्दर कन्या को देखकर राजा ने पूछा—तुम कौन हो? कन्या ने उत्तर दिया कि— "मैं दाशराज की पुत्री हूँ तथा यहाँ से नाव पर आगन्तुकों को दूसरे किनारे पहुँचाती हूँ। राजा शान्तनु उसकी सुन्दरता को देखकर उस पर मोहित हो गये। उन्होंने कन्या के पिता से कहा—

पर्यपृच्छत् ततस्तस्याः पितरं सोऽऽत्मकारणात्
स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम्।।[1]

अर्थात् निषादराज के पास जाकर विवाह के लिए कन्या चाहने की इच्छा प्रकट की।" दाशराज ने कहा—महाराज! यह तो सभी जानते हैं कि लड़की अपने घर में नहीं रखी जाती है। यह लड़की आपकी हो सके तो इससे बढ़कर मेरे सौभाग्य की बात ओर क्या होगी। यदि आप मेरे प्रण को पूरा करे तो कन्या दान करने में कोई बाधा नहीं रहेगी। शान्तनु ने पूछा—निषाद! तुम्हारी बात सुनकर यदि करने योग्य होगा तो उसे अवश्य करुँगा। निषाद ने कहा—प्रभो! मेरा यह निश्चय है कि इसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। राजा शान्तनु दाशराज की प्रार्थना पूरी नहीं कर सके। यद्यपि उनका चित्त कन्या की ओर आकर्षित हो चुका था। लेकिन देवव्रत (पुत्र) के प्रेम और कर्त्तव्य के वशीभूत होकर शर्त उन्होंने स्वीकार नहीं की, वे राजधानी लौट आये।

---

1. आदिपर्व—सम्भवपर्व—अध्याय 100 / 51

राजधानी आने पर भी राजर्षि शान्तनु उस कन्या को भूल नहीं पाये। शोक के कारण उनकी दशा शोचनीय हो गयी। देवव्रत से उनका शोक छिपा न रहा। उन्होंने एकान्त में जाकर पूछा—पिताजी। सांसारिक दृष्टि से आपकी कही कुछ हानि नहीं हुई है? सब राजा आपकी आज्ञापालन, आपको बीमारी नहीं, मैं स्वस्थ्य और प्रसन्न हूँ, फिर आपकी चिन्ता का क्या कारण है। आपका शरीर पीला व शिथिल होता जा रहा है। आप मुझे बताइए, मैं उसे दूर करने का प्रयत्न करुँगा।

शान्तनु ने स्पष्ट उत्तर नहीं दिया, केवल इतना कहा—बेटा! मेरे केवल तुम ही एक पुत्र हो। भगवान् न करे—

कथंचित् तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्।

असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः।।[1]

तुम पर कोई विपत्ति आवे, परन्तु मनुष्य जीवन का कुछ ठिकाना न देखकर मैं बड़े सोच में रहता हूँ। तुम अकेले ही सौ पुत्रों से भी श्रेष्ठ हो, लेकिन एक पुत्र का होना संतानहीनता के तुल्य है।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! देवव्रत को समझते समय नहीं लगा, वे परम बुद्धिमान् थे। उन्होंने पिता के हितैषी वृद्ध मन्त्रियों से पिता की चिन्ता का कारण पूछा। वहाँ उन्हें सब बाते स्पष्ट मालूम हो गई। देवव्रत परिवार के वृद्ध क्षत्रियों और मन्त्रियों को लेकर दाशराज के घर गया। दाशराज ने आदर सत्कार कर अपने योग्य सेवा बताने की प्रार्थना की। देवव्रत ने अपने पिता के लिए उसकी कन्या की याचना की। दाशराज ने कहा—युवराज! आप स्वयं प्रस्ताव कर रहे हैं तो मैं भला अस्वीकार नहीं कर सकता हूँ। यह मेरी औरस कन्या नहीं है। यह धर्मात्मा पुरुष राजा उपरिचर की अयोनिजा कन्या है और महर्षि पाराशर ने इसे सुगन्धमय कर इसके सारे दोष निकाल दिये है। इसके पिता ने इसका विवाह शान्तनु से ही करने को कहा था। युवराज देवव्रत आपके पिता को कन्या देने में मुझे एक अवगुण दिखाई देता है, वह है बलवान् से शत्रुता। क्योंकि इस कन्या से उत्पन्न पुत्र राज्य के लिए आपसे झगड़ा करेगा उसका नाश हो जायेगा। देवता, दैत्य, गन्धर्व चाहे कोई भी आपके सामने टिक नहीं सकता है। इसी भय से मैं कन्या देने में टालमटोल कर रहा था।

---

1. आदिपर्व—सम्भवपर्व—अध्याय 100 / 65

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! दाशराज के ऐसा कहने पर पिता शान्तनु की इच्छा पूर्ण करने के लिए देवव्रत ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा—दाशराज! मैं पिता की प्रसन्नता के लिए तुम्हारी इच्छा पूर्ण करुँगा—

इदं में व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतां वर।
मैव जातो न वाजात ईदृशं वक्तुमुम्सहेत्।।
एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।।[1]

अर्थात् तुम्हारी कन्या से उत्पन्न पुत्र ही उत्तराधिकारी बनेगा। ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला पुरुष पृथ्वी पर न हुआ है, न होगा। देवव्रत की प्रतिज्ञा सुनकर सब क्षत्रियों के मुख से साधु—साधु की ध्वनि सुनाई देने लगी। सब एक साथ उनकी प्रशंसा करने लगे।

जनमेजय! दाशराज को अभी भी संतोष नहीं हुआ था। दाशराज ने कहा—राजकुमार! आप धर्मात्मा और योग्य है। यदि आपका पुत्र सत्यवती की सन्तान को राजा बनने से वंचित कर दे। वह आपकी प्रतिज्ञा का पालन न करे। मुझे सन्देह हो रहा है।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! दाशराज की बात सुनकर देवव्रत ने सत्यधर्म में स्थित होकर अपने पिता की प्रसन्नता के लिए यह भीषण प्रतिज्ञा की। देवव्रत ने कहा—दाशराज! मैं इन उपस्थित राजाओं, मन्त्रियों और वृद्ध पुरुषों के सामने तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, मैंने राज्य तो पहले ही छोड़ दिया है। अब पुत्र के सम्बन्ध में मेरा यह निश्चय है कि मैं आज से ब्रह्मचारी ही रहूँगा। पुत्र न होने के कारण मेरी सद्गति में किसी प्रकार की बाधा नहीं आयेगी।

वैशम्पायन ने कहा—भीष्म की यह अलौकिक वाणी सुनकर दाशराज घबरा गया और तुरन्त कहा—मैं यह कन्या आपके पिता के लिए सौंपता हूँ। उस समय अन्तरिक्ष में स्थित ऋषियों और देवताओं ने भीष्म पर पुष्पों की वर्षा तथा प्रशंसा की। इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही देवव्रत का नाम 'भीष्म' पड़ा। वे सत्यवती को रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर ले आये। भीष्म के इस दुष्कर कर्म को सुनकर भीष्म को शान्तनु ने इच्छामृत्यु का वरदान दे दिया। उन्होंने कहा—भीष्म! जब तक तुम्हारे मन में जीने की इच्छा रहेगी, तब तक तुम्हारे शरीर को मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती है। तुम्हारी अनुमति के बिना मृत्यु तुम्हारे समीप भी नहीं आवेगी। वास्तव में तुम निष्पाप हो।

---

1. आदिपर्व—सम्भवपर्व—अध्याय 100 / 86—87

राजा शान्तुन और सत्यवती के विवाह के पश्चात् क्रमशः दो पुत्र उत्पन्न हुए चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। शान्तनु की मृत्यु के बाद सत्यवती की आज्ञा से चित्राङ्गद को राजसिंहासन पर बैठाया। समान नाम धारण करने के कारण चित्राङ्गद और गन्धर्व चित्राङ्गद के मध्य युद्ध हुआ जिसमें शान्तनु चित्राङ्गद मारा गया। चित्राङ्गद की मृत्यु के बाद माता सत्यवती ने भीष्म से राजसिंहासन पर बैठने के लिए कहा लेकिन भीष्म ने दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण मना कर दिया और विचित्रवीर्य को राजसिंहासन पर बैठाया। विचित्रवीर्य बच्चे थे। भीष्म बड़ी सावधानीपूर्वक संभाल रखने लगे कि प्रजा को कष्ट न हो। सत्यवती की बड़ी इच्छा थी कि मेरे पुत्र का विवाह हो जाय, घर में बहु आ जाय।

सत्यवती ने विचित्रवीर्य के विवाह के लिए भीष्म से कहा। भीष्म को पता चला कि काशीनरेश की तीन सुन्दर कन्याओं का स्वयंवर होने वाला है। वे अकेले रथपर बैठकर स्वयंवर में जा पहुँचे। सब राजाओं के वंश एवं गुणों का क्रमशः वर्णन हो रहा था। भीष्म को स्वयंवर में देखकर राजा लोग भिन्न–भिन्न बातें करने लगे। क्योंकि इन राजाओं का मन कलुषित था, परन्तु कुछ धर्मात्मा राजा ऐसे भी थे, जिन्हें भीष्म की प्रतिज्ञा पर विश्वास था।

राजाओं की बातें सुनकर भीष्म हँसने लगे। उन्होंने सोचा, कन्याओं को तो साथ लेकर चलना ही है, ये सब राजा अपनी शक्ति के गर्व से हँस रहे है तो इन्हें मजा चखाया जाय। उन्होंने बलपूर्वक तीनों कन्याओं को रथ पर बैठा लिया और सब राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा। भीष्म और राजाओं के मध्य भीषण युद्ध हुआ जिसमें सब राजाओं को हार का सामना करना पड़ा। भीष्म तीनों कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर लौट आये। माता सत्यवती से सलाह लेकर विचित्रवीर्य के विवाह कार्य में जुट गये।

तीनों कन्याओं में से काशीराज की सबसे बड़ी कन्या अम्बा थी और क्रमशः अम्बिका, अम्बालिका नाम था। अम्बा ने भीष्म से कहा–महात्मन्! आप बड़े धर्मज्ञ है। मैंने स्वयंवर में मन ही मन सौभपति महाराज शाल्व को अपना पति मान लिया था। इसलिए आप ऐसा प्रबन्ध कीजिए जिसे मेरे धर्म की हानि न हो। अम्बा की बात सुनकर भीष्म ने–

विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठा मम्बां काशिपतेः सुताम्।।
अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे।
भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा।।[1]

---

1. आदिपर्व–सम्भवपर्व–अध्याय 102 / 64–65

ब्राह्मणों से सलाह लेकर अम्बा को शाल्व के पास भेज दिया। अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ करा दिया। वे दोनों रानियों के साथ गार्हस्थ–सुख का उपभोग करने लगे। विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा के रोग से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हो गये।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय। विचित्रवीर्य के मरने के बाद पुत्र की इच्छा करने वाली सत्यवती ने भीष्म से कहा तुम विवाह कर पुत्र उत्पन्न करो। सत्यवती ने भीष्म को समझाते हुए कहा–बेटा! तुम धर्मज्ञ हो, अपने वंश और धर्म की रक्षा तुम्हारे लिए आवश्यक है। ब्रह्मा से लेकर आज तक जिस वंश का दीपक जलता रहा क्या अब वह बुझ जायेगा? तुम शुक्राचार्य और बृहस्पति के समान विपत्ति के समय धर्म पर विचार कर सकते हो। अब ऐसा कार्य करो जिससे धर्म और वंश की परम्परा खत्म न हो। भीष्म ने कहा मैंने जो प्रतिज्ञा की, उसे मैं कभी भी नहीं छोड़ सकता।

भीष्म ने आगे कहा–मैं त्रिलोकी का राज्य छोड़ सकता हूँ, देवताओं का राज्य भी छोड़ सकता हूँ और इससे भी अधिक कुछ हो उसका भी परित्याग कर सकता हूँ, परन्तु मैं किसी प्रकार से सत्य को नहीं छोड़ सकता।

अपने धर्मज्ञ और सत्यवादी पुत्र के वचन सुनकर सत्यवती ने कहा–बेटा! मैं तुम्हारी सत्यनिष्ठा जानती हूँ, तुम चाहों तो अपने तपोबल (तप के प्रभाव) के द्वारा तीनों लोक और उनके अन्तर्गत पदार्थों को उत्पन्न कर सकते हो। मुझे पता है, कि तुमने मेरे लिए ही प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अब इस वंश का लोप न हो, ऐसा कोई उपाय सोचना चाहिए। भीष्म ने कहा–माता! तुम धर्म को देखो, कुल के मोह में पड़कर मुझे अधर्म के मार्ग में मत चलाइए। सत्य सब धर्मों से बढ़कर है, इतने उत्तम वंश में पैदा होकर मैं कभी भी सत्य को नहीं छोड़ सकता।

भीष्म ने कहा–माता! तुम किसी धर्मात्मा तपस्वी ब्राह्मण की शरण लो। उसके कृपा प्रसाद से वंश की रक्षा हो जायेगी।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! सत्यवती विचार में पड़ गई। अन्त में लज्जित भाव से सिर नीचा करके धीमें स्वर में बोली बेटा! तुमसे कोई बात छुपी नहीं है मैं दाशराज की कन्या तथा उपरिचरवसु की पुत्री हूँ। मछली के गर्भ से मेरा जन्म हुआ और मेरे पिता ने मुझे राशराज को दे दिया। वे बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने यमुना में एक नाव में रखकर मुझे छोड़ दिया। नाव में रहते रहते जवान हो गई। एक दिन महर्षि पाराशर उसी रास्ते आये, उनकी कृपा दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी और कहा–बेटा ऐसा नहीं समझना कि मेरे (महर्षि पाराशर) के मन में दूषित भाव आया। जब उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की तो मैं डर गई। उनके वर देने पर मैंने बात मान ली और उनके

वीर्य से मेरे गर्भ से व्यासदेव उत्पन्न हुए। मुझे वर दिया जिससे मेरा कन्याभाव दूषित नहीं हुआ। मेरा पुत्र व्यासदेव बड़ा तपस्वी और धर्मात्मा है, उसने कहा था कि–

स हि मामुक्तवांस्तत्र स्मरेः कृच्छ्रेषु मामिति।
तं स्मरिष्ये महाबाहो यदि भीष्म त्वमिच्छसि।।[1]

संकट के समय मेरा स्मरण करना। भीष्म! तुम्हारी अनुमति हो तो उसे बुलाऊँ, भीष्म ने अनुमति दे दी। सत्यवती ने व्यासदेव का स्मरण करते ही ब्रह्मसूत्रों की रचना छोड़कर आ गये। व्यासदेव ने प्रणाम कर अपने योग्य सेवा की आज्ञा माँगी। सत्यवती ने उनसे आग्रह किया कि वे लुप्त होते हुए भरतवंश की रक्षा करे। व्यासदेव ने कहा–यदि तुम्हारी बहुएँ मेरे विकृत शरीर से घृणा न करे तथा शरीर की गन्ध को सह ले, तो उन्हें गर्भ रह जायेगा।

सत्यवती ने जाकर अम्बिका को समझाया कि तुम वस्त्ररहित होकर व्यासदेव के सामने से निकल जाना। अम्बिका ने ऐसा ही किया, परन्तु आँखे बन्द कर ली। व्यासदेव ने सत्यवती से कहा–अम्बिका ने आँखें बन्द कर ली है जिसके कारण उसका पुत्र अन्धा होगा। परन्तु अन्धे पुत्र के सौ पुत्र होगें। सत्यवती ने प्रार्थना की, कि एक पुत्र ओर उत्पन्न करो। क्योंकि अन्धा तो राजा हो ही नहीं सकता। अम्बालिका के ऋतुधर्म होने पर व्यासदेव आये। अम्बालिका व्यासदेव के सामने आँखे खोलकर गयी, परन्तु–

यस्मात् पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह।
तस्मादेष सुतस्ते वै पाण्डुरेव भविष्यति।।[2]

अर्थात् डर के मारे अम्बालिका का शरीर पीला पड़ गया। इस कारण से उससे उत्पन्न पुत्र पाण्डुवर्ण का हुआ।

कुछ समय बीतने पर अम्बिका ने पुनः ऋतु स्नान किया। सत्यवती ने व्यासदेव का स्मरण कर बुलाया। अम्बिका ने डर के मारे दासी को उनके सामने भेज दिया। व्यासदेव ने प्रसन्न होकर वर दिया कि आज तुम दासभाव से मुक्त हो जाओगी। संसार में तुम्हारा बालक बड़ा बुद्धिमान होगा। अम्बिका के गर्भ से अन्धे धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और दासी से विदुर का जन्म हुआ। भीष्म इनका पालन–पोषण करने लगे।

आदिपर्व के उपपर्व सम्भवपर्व के अध्याय एक सौ आठ में भीष्मकथा इस प्रकार उपलब्ध होती है। वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय। धृष्टराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पति से देश का बड़ा

---

1. आदिपर्व–सम्भवपर्व–अध्याय 104 / 18
2. तत्रैव, 105 / 17

मंगल हुआ। पृथ्वी में असीम अन्न पैदा होने लगा। उसमें सरसता और शक्ति विशेष रूप से आ गयी, वर्षा ठीक समय से होने लगी। वृक्ष फल–फूल से लद गये पशुपक्षि प्रसन्नतापूर्वक विचरने लगे। भीष्म ने बचपन से ही उनकी शिक्षा दीक्षा का ध्यान रखा था। वे जवान होते–होते सब शास्त्रों में निपुण हो गये। पाण्डु धनुष युद्ध में, धृतराष्ट्र शरीर बल में और विदुर धर्मनीति में निपुण थे। व्ययस्क होने पर पाण्डु को भीष्म ने राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। क्योंकि धृतराष्ट्र अन्धे और विदुर दासीपुत्र थे।

भीष्म ने तीनों से सम्मति लेकर उनका विवाह धृतराष्ट्र का गान्धारी से, पाण्डु का मद्रराज की कन्या शल्य की बहिन माद्री से और श्रीकृष्ण की बुआ कुन्ती से करा दिया। यदुवंशियों की सर्वगुण सम्पन्न दासीकन्या से विदुर का विवाह हुआ। तीनों सुखपूर्वक कर्त्तव्य पालन से रहने लगे।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए। वे एक से बढ़कर एक वीर जैसे–दुर्योधन और दुःशासन आदि। पाण्डु के वीर्य से कोई सन्तान नहीं हुई।

कुन्ती को दुर्वासा ऋषि के बतलाये हुए मन्त्र के प्रभाव से देवताओं के आवाह्न पर सूर्य से कर्ण की उत्पत्ति हुई। अपने पति पाण्डु की अनुमति से क्रमशः धर्म, इन्द्र और वायु की कृपा से युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम उत्पन्न हुए। हस्तिनापुर आकर पाँचों पाण्डव और दुर्योधन आदि सौ कौरव एक साथ विद्याध्ययन और धनुर्विधा का अभ्यास करने लगे। कौरव पाण्डवों में धीरे–धीरे शत्रुता का भाव बढ़ने लगा। दुर्योधन का मन दूषित हो गया। पाण्डवों के उत्कर्ष से न केवल दुर्योधन बल्कि उसके सारे भाई और स्वयं धृतराष्ट्र भी चिन्तित हो उठे। वे सब के सब पाण्डवों के नाश करने की सोचने लगे। अन्त में यह सलाह हुई कि पाण्डवों को वारणागत नगर में रख दिया जाय। दुर्योधन के मन में यह कपट था कि वहाँ पाण्डवों को लाख के महल में जला दिया जाय। पाण्डवों को वारणागत नगर भेज दिया जिसके कारण भीष्म उदासीन रहने लगे थे। हस्तिनापुर से वारणागत नगर जाते समय पाण्डवों ने भीष्म के चरणों में प्रणाम किया, परन्तु भीष्म ने कुछ नहीं कहा और वे चले गये। लाक्षागृह से बच निकलकर पाण्डव गायब हो गये।

जब द्रौपदी के स्वयंवर में पाँचों पाण्डव प्रकट हुए और इसका समाचार हस्तिनापुर के लोगों को मिला, तब धृतराष्ट्र और दुर्योधन को बड़ी चिन्ता हुई। वे तो समझते थे कि वारणागत नगर के लाक्षागृह में पाण्डव जल गये और अब हमारा राज्य निष्कण्टक हो गया, परन्तु पाण्डव बच गए थे अब वे सोचने लगे कि पाण्डवों को किस प्रकार नष्ट किया जाय। भीष्म को बुलाया गया।

आदिपर्व के उपपर्व विदुरागमनराज्यलम्भपर्व के अध्याय दो सौ दो में भीष्म की कथा इस प्रकार है–

भीष्म ने कहा–दुर्योधन! मेरे लिए कौरव–पाण्डव एक सरीखे है मैं दोनों से ही प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हारी ही भाँति पाण्डवों की रक्षा चाहता हूँ। तुम उनसे लड़ाई मत करो–

मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्ध प्रदीयताम्।
एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च।।[1]

मेल करके आधा राज्य उन्हें दे दो। जैसे तुम अपने को इस राज्य का उत्तराधिकारी समझते हो, वैसे ही युधिष्ठिर भी। यदि यह राज्य उन्हें नहीं मिलेगा तो तुम्हें भी कैसे मिल सकता है। तुमने अधर्म से इसे हथिया लिया है, यह उन्हें अवश्य मिलना चाहिए। धृष्टता से नम्रता उत्तम है। अपकीर्ति से कीर्ति उत्तम है। कलङ्कित राजा का जीवन भार के समान है। अपने पूर्व पुरुषों के योग्य आचरण करना चाहिए। यह बड़े आनन्द की बात है कि पाण्डव सकुशल जीवित है। दुष्ट पुरोचन जो इन्हें लाक्षागृह में जलाना चाहता था, वह अपने आप ही मर गया। जब से मैंने सुना कि कुन्ती के साथ पांचों पाण्डव जल गये, तब से मैं बड़ा दुःखी रहता था, तुम लोगों का ही दोष था। उनके जीवित रहने के समाचार से तुम्हारी अपकीर्ति मिट गयी, अब तुम आनन्द उत्सव मनाओ। पाण्डव बड़े धार्मिक, एक ह्रदय और एक–दूसरे से अत्यन्त प्रेम रखने वाले हैं। उनका इस राज्य में समान भाग है, वह उन्हें मिलना चाहिए। उन्हें जीतने की सामर्थ्य भी तुम लोगों में नहीं है। वे अधर्मपूर्वक इस राज्य से निकाले गये है, उनका हिस्सा अवश्य की मिलना चाहिए। दुर्योधन! यदि तुम्हारे ह्रदय में धर्म के प्रति तनिक भी आस्था है, यदि तुम अपने बूढ़े पितामह को प्रसन्न रखना चाहते हो और यदि संसार में कौरवों की कीर्ति एवं कल्याण चाहते हो तो पाण्डवों को आधा राज्य दे दो।

(ii) सभापर्व

सभापर्व के उपपर्व अर्घाभिहरणपर्व के अध्याय छत्तीस से उन्तालीस में भीष्म की कथा इस प्रकार है–

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिर को भाइयों का बल पौरुष श्रीकृष्ण की सहायता से प्राप्त था। वे श्रीकृष्ण भक्त थे, उनकी प्रेरणा से उनके लिए किये जाने वाले कर्म राजसूय–यज्ञ की ओर प्रवृत्त हुए। भाइयों ने दिग्विजय किया, श्रीकृष्ण की सहायता से भीम ने

---

1. आदिपर्व–विदुरागमनराजलम्भपर्व–अध्याय 202/8

जरासन्ध को मारा। सैकड़ों राजा कैद से छूटे, उनकी सहानुभूति प्राप्त हुई, बड़े विस्तार से राजसूय–यज्ञ हुआ। यज्ञ के अन्तिम दिन जब अतिथि–अभ्यागतों के स्वागत–सत्कार का समय आया, तब यह सवाल उठा कि सबसे पहले किस महानुभाव की पूजा की जाये? उस यज्ञमण्डप में सबसे वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध महात्मा भीष्म ही थे। युधिष्ठिर ने उन्हीं से यह निर्णय कराना उचित समझकर पूछा–पितामह! अब यज्ञ में आये हुए राजाओं को अर्घ्य देने का समय आ गया है, इन उपस्थित महानुभावों में से सबसे पहले किसकी पूजा की जाय?

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! यहाँ जितने महापुरुष उपस्थित है, उनमें सबसे श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण ही है। उन्हीं के आनन्द से सब आनन्दित है। इसलिए सबसे पहले श्रीकृष्ण की पूजा होनी चाहिए। भीष्म की आज्ञानुसार सहदेव ने श्रीकृष्ण को शास्त्र की आज्ञानुसार अर्घ्य दिया और श्रीकृष्ण ने अर्पित अर्घ्य को प्रसन्नता के साथ ग्रहण किया।

उस समय मण्डप में चेदिदेश का राजा शिशुपाल भी उपस्थित था, उससे श्रीकृष्ण की पूजा सहन नहीं हुई। वह क्रोधित होकर खड़ा हो गया। वह भीष्म तथा युधिष्ठिर का तिरस्कार करके श्रीकृष्ण को अपशब्द कहने लगा। शिशुपाल ने कहा–युधिष्ठिर! यहाँ बड़े–बड़े धार्मिक, विद्वान् और सदाचारी राजा उपस्थित है, उनके सामने श्रीकृष्ण पूजा योग्य नहीं है। भीष्म को अज्ञानी बताकर सभा से जाने लगा।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! युधिष्ठिर शिशुपाल के पास जाकर मधुर शब्द से समझाने लगे। श्रीकृष्ण के गुण, तत्व, रहस्य, प्रभाव और महिमा को जितना भीष्म पितामह जानते हैं, उतना तुम नहीं जानते हो।

युधिष्ठिर को शिशुपाल का अनुनय–विनय करते देखकर भीष्म पितामह ने कहा बेटा–

नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम्।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते।।[1]

श्रीकृष्ण ही सबसे महान् और पुरातन है। जो उन्हीं को सर्वोत्तम और पूजनीय नहीं मानता, उसके साथ इतनी नम्रता से व्यवहार करना उचित नहीं है। बल्कि श्रीकृष्ण सम्पूर्ण संसार में पूजनीय है। इसी से हमने इनकी पूजा की है।

1. सभापर्व–अर्घाभिहरणपर्व – 38/6

नरपत्तियो! श्रीकृष्ण की पूजा से सबको प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि श्रीकृष्ण की पूजा ही सबकी पूजा है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही इनके अपने रूप है। ये सबके अन्तर्यामी और सर्वव्यापी होने पर सबसे परे है।

यज्ञ का कार्य आगे चला, दूसरे राजाओं की पूजा होने लगी। शिशुपाल वहाँ से अलग जाकर राजाओं से सलाह करने लगा कि अभी युद्ध छेड़कर इनके यज्ञ में विघ्न डाल दिया जाये। कुछ राजा शिशुपाल से मिल गये। कुछ समय पश्चात् कोलाहल होने लगा।

सभापर्व के उपपर्व शिशुपालवधपर्व के अध्याय चालीस में भीष्म की कथा इस प्रकार है– उस समय युधिष्ठिर ने भीष्म के समीप जाकर पूछा– पितामह! अनेक राजा लोग शिशुपाल के भड़काने पर क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये हैं। इस समय मुझे क्या करना चाहिए? आप चिन्तन करके ऐसा तरीका बताइए, जिससे–

यज्ञस्य च न विघ्नः स्यात् प्रजानां च हितं भवेत्।
यथा सर्वत्र तत् सर्वं ब्रूहि मेऽद्य पितामह।।[1]

यज्ञ में बाधा न हो और सम्पूर्ण प्रजा का हित हो। भीष्म पितामह ने कहा–युधिष्ठिर! चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है, तुम्हारा मार्ग निष्कण्ठक है। इस विषय में क्या करना होगा, मैंने पहले ही तय कर रखा है। तुम निश्चिन्त रहो, यदि शिशुपाल के कहने से ये लोग यज्ञ में विघ्न करना चाहेगे तो बहुत ही शीघ्र मारे जायेगें। श्रीकृष्ण का जो लोग अनिष्ट करना चाहते हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। भीष्म पितामह यह बात सबके सामने ही कह रहे थे। शिशुपाल सुनकर आपा खो बैठा और क्रोधित होकर श्रीकृष्ण, भीष्म और पाण्डवों को भला–बुरा कहने लगा।

सभापर्व के उपपर्व शिशुपालवधपर्व के अध्याय बियालिस से चवालीस में भीष्म की कथा इस प्रकार है– शिशुपाल की बात सुनकर भीमसेन क्रोधित हो गया। उनकी स्वाभाविक ही लाल–लाल आँखे चारों तरफ फैल गयी। उनकी भयंकर मूर्ति देखकर बहुत से लोग तो यों ही चुप हो गये। भीमसेन शिशुपाल पर आक्रमण करने वाला ही था। भीष्म पितामह ने लम्बे–लम्बे हाथ फैलाकर उन्हें रोक लिया। भीष्म ने मधुर और नीति संगत वचन कहकर भीमसेन को शान्त किया। भीमसेन पितामह पर अत्यन्त श्रद्धा और गौरवबुद्धि रखने के कारण उनकी आज्ञा का उल्लघंन नहीं कर सकें। उस समय शिशुपाल ने हँसकर कहा–भीष्म! तुम भीमसेन को रोकने का कष्ट क्यों कर रहे हो। तनिक छोड़ों तो सही, सब लोग देखे की भीमसेन मेरे निकट आते–आते किस प्रकार जलकर भस्म हो जाता है।

---

1. सभापर्व–शिशुपालवधपर्व–अध्याय 40/4

भीष्म ने कहा—भीमसेन! शिशुपाल के जन्म के समय ही यह बात निश्चित हो चुकी है कि इसकी मृत्यु किसके हाथों से होगी। जब इसका जन्म हुआ था, तब पृथ्वी पर गिरते ही यह गधे की भाँति चिल्लाने और रोने लगा। इसके चार हाथ और तीन आँखें थी। माता—पिता और परिवार के सब लोग चिन्तित हो गये कि क्या किया जाए? उसी समय आकाशवाणी हुई कि— "भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। इस बालक से तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा, परन्तु इसको मारने वाला पैदा हो चुका है। माता ने आकाशवाणी को लक्ष्य करके कहा—मैं इतना जानना चाहती हूँ कि इसकी मृत्यु किसके हाथों से होगी। आकाशवाणी ने उत्तर दिया कि—

अन्तर्भूतं ततौ भूतमुवाचेदं पुनर्वचः।
स्योत्सङ्गे गृहीतस्य भुजावभ्यधिकावुभौ।।
पतिष्यतः क्षितितले पञ्चशीर्षाविवोरगौ।
निमज्जिष्यति यं दृष्ट्वा सोऽस्य मृत्युर्भविष्यति।[1]

'जिसकी गोद में जाते ही इस बालक के दो हाथ और तीसरी आँख गायब हो जायेगी, वही इसे मारेगा।" यह बात चारों ओर फैल गयी। वह बालक हजारों की गोद में गया, परन्तु हाथ और आँखें गायब नहीं हुई।

एक दिन अपनी बुआ के इस बालक का समाचार सुनकर श्रीकृष्ण भी आये। श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को गोद में लेते ही दो हाथ और तीसरी आँख गायब हो गयी। इस पर दुःखी होकर शिशुपाल की माता ने अपने भतीजे श्रीकृष्ण से कहा—मैं तुमसे बालक की जीवन रक्षा के लिए वरदान माँगती हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा—देवि! डरो मत, मैं आपको क्या वर दूँ। शिशुपाल की माता ने कहा—श्रीकृष्ण! शिशुपाल तुम्हारा कभी अपराध करे, तो क्षमा कर देना। श्रीकृष्ण ने कहा—यदि तुम्हारा पुत्र मारने योग्य सौ अपराध भी करेगा तो मैं क्षमा कर दूँगा, कुछ नहीं कहूँगा। तुम शोक मत करो।[2]

शिशुपाल के बारे में बताते हुए भीष्म ने आगे कहा—भीमसेन! देखो, श्रीकृष्ण के वरदान से पागल होकर युद्ध के लिए ललकार रहा है। शिशुपाल ने इस भरी सभा में जो बातें कही, वैसी बात कोई सज्जन पुरुष नहीं कह सकता। चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। शिशुपाल भीष्म की बातें सुनकर आग बबूला हो गया और गाली—गलोच करने लगा। अन्त में भीष्म ने कहा—जिसमें हिम्मत हो वह श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए बुलावें, अभी निपटारा हो जायेगा।

---

1. सभापर्व—शिशुपालवधपर्व—अध्याय 43/9—10
2. तत्रैव, 43/24

शिशुपाल ने कहा—भीष्म! उन राजाओं की स्तुति करो जिन्हें जन्म लेते ही अपने वजन से पृथ्वी को विदीर्ण कर दिया था। ऐसा कोई राजा नहीं है जो द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा की बराबरी कर सके। दुर्योधन भी अस्त्र विद्या में निपुण है। तुम्हें इनकी स्तुति करनी चाहिए। इन सबको छोड़कर श्रीकृष्ण की प्रशंसा नही ंकरनी चाहिए। क्योंकि—

कथं भोजस्य पुरुषे वर्गपाले दुरात्मनि।
समावेशयसे सर्वं जगत् केवलकाम्यया।।[1]

दुरात्मा कृष्ण तो कंश का नौकर था और उसकी गायों का ग्वाला था। भीष्म तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। तुम राजाओं की इच्छा से जीवित हो।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! शिशुपाल का यह कटुवचन सुनकर भीष्म ने कहा—मैं तो राजाओं की इच्छा पर जीवित हूँ। इन समस्त संसार के राजाओं के तिनके के बराबर भी नहीं हूँ। ऐसा कहते ही राजा लोग क्रोधित हो गये। भीष्म की निन्दा करने लगे। ऐसा कहते ही राजा लोग क्रोधित हो गये। भीष्म पापी और घमण्डी है, यह क्षमा करने योग्य नहीं है। समस्त राजा क्रोधित होकर इस नीच बुद्धि वाले भीष्म की गर्दन दबाकर घास—फूस में आग लगाकर जला देना चाहिए। राजाओं की सम्पूर्ण बातें सुनकर भीष्म बोले—राजाओं मैं सबकी बातों का एक साथ उत्तर दे रहा हूँ। तुम लोगों में साहस या बल हो तो मेरी पशु के समान हत्या कर दो या जला डालो। मैंने तो तुम्हारे ललाट पर अपना पैर रख दिया है। तुम लोगों में से जिसकी बुद्धि मृत्यु को उतावली हो रही है, वह श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारे जो मारा जाकर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो जाए।

भीष्म की बात सुनकर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को ललकार कर कहा—आओ, हम लोग युद्ध करते हैं। आज पाण्डवों के साथ तुम्हें भी मारकर मैं अपनी चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण करुँगा। वह अनेक प्रकार के कटुवचन कहने लगा।

शिशुपाल के कटुवचन समाप्त होने के उपरान्त श्रीकृष्ण धैर्य के साथ अत्यन्त कोमल स्वर से बोले—नरपत्तियों! आप लोग शिशुपाल को जानते है। हमने अभी तक इसकी कोई बुराई नहीं की है। यह हमसे अकारण शत्रुता रखता है। मैं अब तक इसके सौ अपराध क्षमा कर चुका हूँ। अब यह नीच जिन्दा नहीं रहेगा।

श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र का स्मरण कर—

1. सभापर्व—शिशुपालवधपर्व—अध्याय 44 / 26

एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात्।
व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः।।[1]

शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया। राजाओं के देखते–देखते शिशुपाल के शरीर से बिजली के समान ज्योति निकलकर श्रीकृष्ण के पेरों के पास चक्कर लगाकर उन्हीं में समा गयी। यह देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ और भीष्म की प्रशंसा करने लगे।

सभापर्व के उपपर्व दूतपर्व के अध्याय सड़सठ, उन्नहतर और इकहत्तर में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है।

शिशुपाल के वध के पश्चात् पाण्डवों पर विजय प्राप्त करने के लिए शकुनि और दुर्योधन के मध्य द्यूतक्रीड़ा से संबंधित बातचीत होती है। द्यूतक्रीड़ा के लिए धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाने के लिए विदुर को आज्ञा दी। जूए में शकुनि के छल से प्रत्येक दाँव पर युधिष्ठिर हार गया। युधिष्ठिर धन, राज्य, भाइयों तथा द्रौपदी सहित अपने आपको भी हार गया। प्रातिकामी के बुलाने से न आने पर दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़कर घसीटता हुआ सभा में ले आता है। सभा में द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, महात्मा विदुर तथा राजा धृतराष्ट्र आदि महापुरुष राजा दुर्योधन के इस भयानक पापाचार की ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं। द्रौपदी का सभी सभासदों से प्रश्न करना–

इमं प्रश्नमिमे ब्रूत सर्व एव सभासदः।
जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्वभूमिपाः।।[2]

अर्थात् धर्म के अनुसार मैं जीती गयी हूँ या नहीं?

भीष्म ने कहा–

न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तु
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं
स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य।।[3]

---

1. सभापर्व–शिशुपालवधपर्व–अध्याय 45/25
2. सभापर्व–द्यूतपर्व– 67/41 के नीचे
3. तत्रैव–67/47

अर्थात् मैं तुम्हारे प्रश्न का ठीक–ठीक विवेचन नहीं कर सकता। जो स्वामी नहीं है वह पराये धन को दाँव पर नहीं लगा सकता, परन्तु स्त्री को सदा अपने स्वामी के अधीन देखा जाता है।

बलवांश्च यथा धर्म लोके पश्यति पूरुषः।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः।।[1]

संसार में बलवान मनुष्य जिसको धर्म मानता है, लोग उसी को धर्म मान लेते हैं और बलहीन पुरुष जो धर्म बतलाता है, वह बलवान् पुरुष के बताये धर्म से दब जाता है। अतः इस समय कर्ण और दुर्योधन का बताया धर्म ही सर्वोपरि हो रहा है।

न विवेक्तुं च ते प्रश्नमिमं शक्नोमि निश्चयात्।
सूक्ष्मत्वाद् गहनत्वाच्च कार्यस्यास्य च गौरवात्।।[2]

अर्थात् मैं तो धर्म का स्वरूप सूक्ष्म और गहन होने के कारण तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट नहीं दे सकता। दुर्योधन ने कहा कि तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर केवल युधिष्ठिर ही दे सकते हैं।

वैशम्पायनजी ने कहा–जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र की अग्निशाला के भीतर एक गीदड़ हुँआ–हुँआ करने लगा। इस अशुभ वाणी को सुनकर धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से कहा–

वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती।।[3]

अर्थात् तुम मेरी पुत्रवधुओं में सबसे श्रेष्ठ एव धर्मपरायणा सती हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वर के रूप में माँग लो। द्रौपदी ने वर स्वरूप सबको (पाण्डवों) दासभाव से मुक्त करा लिया। धृतराष्ट्र ने समस्त धन युधिष्ठिर को देकर इन्द्रप्रस्थ जाने का आदेश दिया।

सभापर्व के उपपर्व अनुद्यूतपर्व के अध्याय चौहत्तर और छियत्तर में भीष्म की कथा इस प्रकार मिलती है।

दुर्योधन द्वारा धृतराष्ट्र से अर्जुन की वीरता बतलाकर पुनः द्यूतक्रीड़ा के लिए पाण्डवों को बुलाना। सबके मना करने पर भी धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर का पुनः जूआ खेलना और

---

1. सभापर्व–द्यूतपर्व–69 / 15
2. तत्रैव–69 / 16
3. तत्रैव–71 / 27

हारना। द्यूतक्रीडा की शर्तानुसार युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को द्रौपदी सहित बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास वन में बिताने के लिए चल पड़े।

(iii) वनपर्व

वनपर्व के उपपर्व घोषयात्रापर्व के अध्याय दो सौ तिरेपन में भीष्म की कथा इस प्रकार है– भीष्म ने कहा–दुर्योधन! सूतपुत्र कर्ण गन्धर्वो के डर से समर–भूमि से भाग गया। तुमने पाण्डवों का पराक्रम प्रत्यक्ष देखा है और कर्ण की शक्ति भी सबके सामने है। वेदों में, वीरता में, राजधर्म में कर्ण पाण्डवों के सामने चौथाई योग्यता भी नहीं रखता है। इसलिए पाण्डवों से सन्धि करना ही उचित है। कर्ण ने भी तुम्हारा ही अनुसरण किया है।

कर्ण ने कहा–दुर्योधन! भीष्म पितामह हमेशा ही हमारी निन्दा और कुन्तीपुत्रों की प्रशंसा करते है। वे तुम्हारे प्रति ईर्ष्या द्वेष रखते हैं, इसलिए मुझसे भी द्वेष रखते हैं। भीष्म पितामह ने मेरे लिए कहा था कि वह सहनशील योग्य नहीं है। तुच्छ बुद्धिवाला भीष्म मेरे आक्रामक को प्रत्यक्ष देखे, वह मेरी शक्ति को प्रत्यक्ष देखकर अपने आपको तुच्छ समझेगें। दुर्योधन! तुम्हारी जीत निश्चित है। मैं आपको वचन देता हूँ, शस्त्र उठाकर शपथ लेता हूँ। यह सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हो गया और कहा–कर्ण! आज मेरा जीवन सफल हो गया है, क्योंकि तुम जैसे महान् बलशाली मेरा हित करने में तत्पर रहते हो।

(iv) विराटपर्व

विराटपर्व के उपपर्व गोहरणपर्व के अध्याय अट्ठाईस, ईक्यावन, बावन और चौसठ में भीष्म की कथा इस प्रकार है–

भीष्म ने कहा–भरतनन्दन! पाण्डव उत्तम नीति से युक्त है, उस नीति की खोज दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता। जहाँ अनुशासन से युक्त सत्यवादी युधिष्ठिर रहते हैं, वहाँ के राजा कल्याण से युक्त होगें और प्रजा भी दानी, नम्र, उदार और लज्जावान होनी चाहिए। मनुष्य भी नापाक, कर्मकार, सत्यवादी और प्रियवादी होने चाहिए।

गावश्च बहुलास्तत्र नृ कृशा न च दुर्बलाः।
पयांसि दधिसर्पीषि रसवन्ति हितानि च।।[1]

गायें भी शारीरिक रूप से हृष्ट–पुष्ट होगी। दूध, दही, रस, स्पर्श, महक भी मन को प्रसन्न करने वाले होगें।

---

1. विराटपर्व–गोहरणपर्व–अध्याय 28 / 22

कुरुनन्दन! मेरी बातों पर भरोसा हो तो चिन्तन मनन करके कार्य में लग जाओ जिसे अपना भला हो जाए।

भीष्म ने कहा—दुर्योधन! अश्वत्थामा और कृपाचार्य की सोच व दृष्टि अच्छी है। कर्ण क्षत्रिय धर्म की दृष्टि से युद्ध करना चाहता है। देश—काल का चिन्तन मनन करके युद्ध करना ठीक है। एक में वेदों का दूसरे में धर्म का ज्ञान देखा जाता है। प्राचीन इतिहास में द्रोणाचार्य से बढ़कर के परशुरामजी ही है। यह समय आपसी वैर का नहीं है। आपसी वैर को विद्वानों ने घोर पाप माना है।

भीष्म ने कहा—दुर्योधन! तिथि, समय और दिन के अनुसार सम्पूर्ण कालचक्र चल रहा है। पाण्डव महान् है, जिनके प्रधान युधिष्ठिर है। पाण्डव लालची नहीं है, जो अधर्म से राज्य को लेगें। धर्म के अनुसार काम करो या बिना युद्ध के सन्धि कर लो। दुर्योधन ने भीष्म से कहा—

नाहं राज्यं प्रदास्यामि पाण्डवानां पितामह।
युद्धोपचारिकं यत् तु तच्छीघ्रं प्रविधीयताम्।।[1]

पाण्डवों से सन्धि भी नहीं करुँगा और राज्य का अंश भी नहीं दूँगा।

भीष्म ने युद्ध की निश्चितता समझकर दुर्योधन से कहा—सम्पूर्ण सेना को तीन भागों में विभाजित करना चाहिए—प्रथम हस्तिनापुर के लिए, दूसरी गायों के लिए और तीसरी युद्धक्षेत्र के लिए। हम लोग धर्म के लिए युद्ध करेगें चाहे वह साक्षात् देवता ही क्यों न हो।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! भीष्म पितामह और अर्जुन दोनों के मध्य घमासान युद्ध का प्रारम्भ हो गया। एक—दूसरे पर मर्म छेदी बाणों का प्रहार करते हैं। दोनों का युद्ध ऐसा लग रहा था जैसे बालि और इन्द्र के मध्य हो रहा है। दोनों ने ही अपने बाणों से दशों दिशाओं को ही ढक दिया, जैसे आसमान में बादल छा रहे हो। इस युद्ध कौशल को देखकर गन्धर्व ने अर्जुन की प्रशंसा इन्द्र से करते हुए कहा—अर्जुन की शस्त्र संचालन की कला अद्भूत और विचित्र है। इन्द्र के द्वारा भीष्म और अर्जुन पर पुष्पों की वर्षा होने लगी। अर्जुन द्वारा भीष्म पितामह के वक्षः स्थल पर दश बाणों की गहरी आघात हुई। भीष्म को घायल अवस्था में सारथि द्वारा युद्धक्षेत्र से दूर ले जाया गया।

---

1. विराटपर्व—गोहरणपर्व—अध्याय 52 / 15

(v) उद्योगपर्व

उद्योगपर्व के उपपर्व संजययानपर्व अध्याय इक्कीस में भीष्म की कथा इस प्रकार है–वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! पुरोहित की वार्ता सुनकर भीष्म ने उनकी पूजा कर कहा–ब्रह्म! पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ सकुशल है। वे अपने सगे सम्बन्धियों से युद्ध नहीं करना चाहते हैं–

असंशयं कलेशितास्ते वने चेह च पाण्डवाः।
प्राप्ताश्च धर्मतः सर्व पितुर्धनमसंशयम्।।[1]

पाण्डवों ने वन में भी कष्ट उठाये और यहाँ पर भी पैतृक सम्पति के लिए कष्ट झेल रहे हैं, जिसके धर्मतः वे हकदार है। कोई भी वीर अर्जुन का सामना नहीं कर सकता, बल्कि अर्जुन तीनों लोकों का सामना अकेला कर सकता है। भीष्म की इस बात से कर्ण क्रोधित हो गया और दुर्योधन की ओर देखकर कहा–शकुनि ने दुर्योधन के लिए युधिष्ठिर को द्यूतक्रीड़ा में हराया और वे शर्तानुसार वन गये। युधिष्ठिर मुर्खो की भाँति मत्स्य और पञ्चालदेश की सेना के बलबूते राज्य लेना चाहता है। दुर्योधन भय से नहीं, धर्मानुसार शत्रु को सम्पूर्ण पृथ्वी दे सकते हैं। वे पैतृक राज्य लेना चाहते है तो पुनः वन को जाये।

भीष्म बोले–राधानन्दन! बढ़चढ़कर बातें करने से कोई लाभ नहीं है। तुम्हें अर्जुन का पराक्रम याद करना चाहिए! विराटनगर का युद्ध उन्होंने अकेले ही जीत लिया था। तुम्हें भी युद्ध में हारना पड़ेगा और अर्जुन से आहत होकर धूल खानी पड़ेगी।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! धृतराष्ट्र ने कर्ण को चुप कराकर भीष्मजी का सत्कार किया और कहा–भीष्म ने सही कहा है इसमें सम्पूर्ण संसार का हित है। मैं विचार करके संजय को पाण्डवों के पास भेजूँगा।

उद्योगपर्व के उपपर्व यानसन्धिपर्व के अध्याय उन्नचास और बासठ में भीष्म की कथा इस प्रकार है– वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! सम्पूर्ण राजाओं की सभा में भीष्म ने दुर्योधन से कहा–देवता और अप्सराएं ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हुए। उसी समय पुरातन देवता नर–नारायण ऋषि तेज से सबका विचार जानते हुए निकल गये। यह नर अर्जुन और नारायण श्रीकृष्ण थे। नर और नारायण एक ही है, परन्तु लोक कल्याण के लिए दो शरीर धारण किये है। यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी तो कौरवों का विनाश निश्चित है। एक तुम्हीं हो जो परशुरामजी द्वारा अभिशप्त खोटी जाति वाले सूतपुत्र कर्ण को रोक सकते हो, कर्ण क्रोधित हो गया और

---

1. उद्योगपर्व–संजययानपर्व–अध्याय 21/5

कहा—मैं समस्त पाण्डवों को रणक्षेत्र में परास्त करुँगा, कर्ण की बात सुनकर भीष्म ने धृतराष्ट्र को सम्बोधित कर कहा—

यदयं कत्थते नित्यं हन्ताहं पाण्डवानिति।
नायं कलापि सम्पूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम्।।[1]

कर्ण अपने बल का घमण्ड करता है। मेरे मत में यह पाण्डवों की सोहलवीं कला के समान भी नहीं है। जब विराटनगर में अर्जुन ने इसके भाई को मार दिया। तब कहा गया था कर्ण। कर्ण तो धर्म और अधर्म का विनाश करने में तुला है। द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र से कहा पाण्डवों से सन्धि कर लेना ही उचित है।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! कर्ण ने कौरव सभा में प्रसन्न होकर कहा राजन्! मैंने प्राचीनकाल में असत्य से ब्राह्मण बताकर परशुरामजी से ब्रह्मस्त्र की शिक्षा प्राप्त की। सत्य का पता लगने पर भी मुझे शाप नहीं दिया। ब्रह्मास्त्र मेरे पास है, आयु शेष है। मैं पाण्डवों पर विजय पा सकता हूँ।

कर्ण की बात सुनकर भीष्म ने कहा—काल ने तेरी बुद्धि को विपरीत कर दिया है। तेरा सर्पमुख बाण अर्जुन के बाण से छिन्न—भिन्न हो जायेगा। कर्ण ने भीष्म से कहा—

न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये
पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम्।
त्वयि प्रशान्ते तु मम प्रभावं
द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः।।[2]

मैं अपने हथियार रख देता हूँ अब आप मुझे किसी सभा या रणक्षेत्र में नहीं देखेगें। आपके युद्ध में शान्त होने पर राजा मेरा प्रभाव देखेगे। ऐसा कहकर कर्ण सभा छोड़कर चला गया। तब भीष्म ने कहा—कर्ण पहले तो युद्ध जीतने की प्रतिज्ञा करता है, अब युद्ध से मुँह मोड़कर चला गया है।

उद्योगपर्व के उपपर्व भगवद्यानपर्व के अध्याय अठ्यासी में भीष्म की कथा इस प्रकार है— दुर्योधन ने कहा—पिताजी! आप कृष्ण को भेंट या उपहार ना दे। इससे वे समझेगें की हम कायर है और क्षत्रियता का अपमान होगा।

---

1. उद्योगपर्व—यानसंधिपर्व—अध्याय 49 / 34
2. तत्रैव, 62 / 13

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! दुर्योधन की वार्ता सुनकर भीष्म ने धृतराष्ट्र से कहा–श्रीकृष्ण को पूजे या ना पूजे वह क्रोधित नहीं होगें। श्रीकृष्ण को मध्यस्थ बनाकर समझौता शीघ्र कर लो। दुर्योधन ने कहा–पितामह! मैं मृत्युपर्यन्त पाण्डवों के साथ मिलकर सम्पति का उपभोग नहीं कर सकता। मैं श्रीकृष्ण को भी बन्दी लूँगा और सम्पूर्ण राज्य व पाण्डवों पर शासन करुँगा। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा–ऐसी नीच हरकत करना सनातन धर्म नहीं है। यह सब बातें सुनकर भीष्म ने कहा–धृतराष्ट्र! तुम्हारा मन्दबुद्धि बालक काल के वशीभूत हो गया है। तुम्हारा कुमार्गी पुत्र सेना सहित मारा जायेगा। इतना कहकर भीष्म पितामह सभा भवन छोड़कर चले गये।

उद्योगपर्व के उपपर्व भगवद्यानपर्व के अध्याय एक सौ छब्बीस में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है– भीष्म के बाद द्रोणाचार्य, विधुर और धृतराष्ट्र ने बहुत कुछ समझाया, परन्तु द्रर्योधन ने किसी की बात न सुनी। उसकी चाल–ढाल देखकर भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को बहुत पीड़ा हुई। वे दोनों दुर्योधन से एक साथ कहने लगे–दुर्योधन! अब भी सँभल जाओ, अभी श्रीकृष्ण और अर्जुन ने युद्ध की घोषणा नहीं की है। अभी गाण्डीव (धनुष) पर डोरी नहीं चढ़ाई है। तुम सिर झुकाकर युधिष्ठिर को प्रणाम करो, वे तुम्हें गले लगा लेगें। तुम पाँचों पाण्डवों से मिलकर देखो सब नरेश अपने नेत्रों से आनन्द के आँसु बहाएगें–

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्नहीक्षिताम्।
पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव।।[1]

शान्ति की घोषणा की जाय और बिना खूनखराबे के सब लोग सुखपूर्वक रहने लगे।

उद्योगपर्व के उपपर्व भगवद्यानपर्व के अध्याय एक सौ अड़तीस में भीष्म की कथा इस प्रकार है– वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भीष्म और द्रोण पुनः दुर्योधन को समझाने लगे। दुर्योधन! कुन्ती ने श्रीकृष्ण के द्वारा पाण्डवों का जो संदेश भिजवाया है वह तुम्हें भी मालूम है। पाण्डव अपनी माता की आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे। वे पहले धर्म बन्धन में बंधे हुए थे। अब शान्त नहीं रहेगें तुम लोगों ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया था। हम दोनों वृद्ध जो कुछ कह रहे हैं। हमारी बात मानो और समझदारी का काम करो।

दुर्योधन ने किसी की बात नहीं मानी, युद्ध करना ही तय रहा। दोनों ही ओर से पूरी तैयारी हो गयी। अब केवल युद्ध का डंका बजने की देर थी।

---

1. उद्योगपर्व–भगवद्यानपर्व–अध्याय 126 ⁄ 18

उद्योगपर्व के उपपर्व सैन्यनिर्याणपर्व के अध्याय एक सौ छप्पन में भीष्म की कथा का वर्णन इस प्रकार है– वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! जब दोनों ओर की तैयारी पूरी हो चुकी, तब दुर्योधन ने भीष्म पितामह के पास जाकर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर कहा–पितामह! मेरी सेना हर तरह से लड़ने को तैयार है, परन्तु एक उपयुक्त सेनापति के बिना सेना शिथिल पड़ रही है। आप रणनीति के विशेषज्ञ, धर्मात्मा है और मेरे हितचिन्तक है। आप ही हमारे रक्षक और सफल सेनापति है। दुर्योधन की प्रार्थना सुनकर भीष्म पितामह ने कहा–मेरी दृष्टि में जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव है। मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार तुम्हारी ओर से युद्ध करुँगा और पाण्डवों को उनकी भलाई का उपदेश करुँगा, अर्जुन बड़े वीर है। वे मुझसे आमने–सामने युद्ध नहीं करेगें। यदि मेरी मृत्यु पहले नहीं हुई तो मैं पाण्डवों के पक्ष के दश हजार योद्धाओं को प्रतिदिन मारुँगा। लेकिन एक शर्त है कि–

कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते।
स्पर्धते हि सदात्यर्थ सूतपूत्रो मया रणे।।[1]

चाहे पहले कर्ण युद्ध कर ले या मैं कर लूँ। युद्ध में कर्ण मुझसे लाग–डाँट रखता है, हम दोनों एक साथ युद्ध नहीं करेगे। कर्ण ने कहा था कि मैं पितामह के जीवनकाल में युद्ध नहीं करुँगा। भीष्म पितामह ने सेनापति का पद स्वीकार कर लिया।

दुर्योधन ने विधिपूर्वक भीष्म पितामह को सेनापति के पद पर अभिषेक कर दिया। ब्राह्मणों को अनेक प्रकार की दक्षिणा दी गई। अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्र बजने से दिशाएँ गूँज उठी। भीष्म पितामह को आगे करके सबने कुरुक्षेत्र की यात्रा की। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर सेना का शिविर लग गया, वहाँ पर मानों एक दूसरा हस्तिनापुर बस गया, केवल अब युद्ध की ही प्रतिक्षा थी।

उद्योगपर्व के उपपर्व रथातिरथसंख्यानपर्व के अध्याय एक सौ पेंसठ से एक सौ बहत्तर में भीष्म की कथा इस प्रकार वर्णित है– धृतराष्ट्र के पूछे जाने पर संजय ने कहा–भीष्म पितामह ने दुर्योधन को उनके पक्ष के सब महारथी, अतिरथी, एकरथी आदि की शक्ति बतायी। इसी के सिलसिले में उन्होंने कर्ण को अर्धरथी कह दिया। कर्ण बड़ा अभिमानी, नीच और झूठा है। परशुरामजी से झूठ मूठ अपने को ब्राह्मण बताकर धोखा देने के कारण शाप भी पा चुका है, उसे मैं रथी या अतिरथी कुछ नहीं समझता, केवल अर्धरथी समझता हूँ। द्रोणाचार्य ने भीष्म पितामह की बातों का अनुमोदन किया। दोनों की बातें सुनकर कर्ण क्रोधित हो गया। कर्ण कुछ बोलने वाला

---

1. उद्योगपर्व–सैन्यनिर्माणपर्व–अध्याय 156 / 24

ही था, परन्तु दुर्योधन ने बात काटकर भीष्म पितामह से पाण्डवों की शक्ति पूछने लगे। भीष्म पितामह ने विस्तार से पाण्डवपक्ष की शक्ति का वर्णन किया और अन्त में कहा–

अर्जुनं वासुदेवं च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः।
सर्वास्तान् वारयिष्यामि यावद् द्रक्ष्यामि भारत।।[1]

इन सब वीरों से मैं अकेला ही युद्ध करुँगा और उन्हें रोकूँगा। उनके पक्ष में केवल द्रुपदकुमार शिखण्डी ही ऐसा है, जिससे मैं युद्ध नहीं कर सकता। शिखण्डी पूर्वजन्म में काशिराज की कन्या अम्बा था। मुझे मारने के लिए अम्बा ने तपस्या की और अब वह द्रुपद के यहाँ शिखण्डिनी के रूप में पैदा हुई है। एक यक्ष की कृपा से शिखण्डिनी इस समय शिखण्डी हो गया है, परन्तु पहले स्त्री होने के कारण शिखण्डी पर मैं शस्त्र प्रहार नहीं करुँगा। अन्य सब राजाओं को युद्ध में मारुँगा, परन्तु कुन्ती पुत्र पाण्डवों को कभी नहीं मारुँगा। दुर्योधन ने उनकी बात स्वीकार कर ली।

उद्योगपर्व के उपपर्व अम्बोपाख्यानपर्व के अध्याय एक सौ तेहत्तर से एक सौ पिचहत्तर में भीष्म की कथा इस प्रकार है– दुर्योधन ने कहा–पितामह! शिखण्डी आपको मारने आयेगा तो आप क्या करोगे? शिखण्डी को क्यों छोड़ रहे हो? भीष्म ने कहा–दुर्योधन! जब शान्तनु की मृत्यु हो गयी, तब मैंने प्रतिज्ञा पालन करते हुए चित्राङ्गद को सिंहासन पर बैठाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् विचित्रवीर्य को बैठाया। माता सत्यवती की आज्ञा से विचित्रवीर्य के विवाह के लिए काशिराज की तीन कन्याओं का अपहरण कर राजाओं से युद्ध करके लाया। काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री अम्बा ने शाल्वराज के पास जाने की इच्छा जाहिर की। मैंने माता गन्धवती काली से आज्ञा लेकर ऋषि, पुरोहितो से पूछकर अम्बा को शाल्वराज के पास जाने की आज्ञा दे दी। शाल्वराज ने भी उसे त्याग दिया। वह ऋषियों के आश्रम में जाकर तप करने लगी। होत्रवाहन ऋषि ने अम्बा की व्यथा सुनकर परशुरामजी को सुनाई। जिसमें सम्पूर्ण दोष मेरा (भीष्म) ही बताया गया।

उद्योगपर्व के उपपर्व अम्बोपाख्यानपर्व के अध्याय एक सौ अठहत्तर से एक सौ पिच्यासी में भीष्म की कथा इस प्रकार है–भीष्म ने कहा–दुर्योधन! अम्बा ने बड़े करुण स्वर में कहा–परशुराम जी! आप भीष्म को दण्ड दीजिए। परशुराम जी ने कहा–मैं शस्त्र त्याग चुका हूँ। भीष्म बड़े सज्जन और पूजनीय है, वे मेरी बात मान लेगें। यदि वे मेरी बात नहीं मानेगें तो मैं उन्हें मारने में कोई कोर–कसर नहीं छोडूँगा।

परशुरामजी के साथ अम्बा, होत्रवाहन और बहुत से ऋषि कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में आये। वहाँ सब सरस्वती नदी के किनारे ठहरकर भीष्म को सूचना दे दी। मैंने उसी क्षण आकर उनका

1. उद्योगपर्व–स्थातिरथसंख्यानपर्व–अध्याय 172/15

स्वागत किया। परशुराम जी ने मुझसे कहा—तुमने अम्बा को हरकर बड़ा अपराध किया है। शाल्वराज ने भी इसको त्याग दिया है। अब इस कन्या को समाज का कोई धर्मात्मा पुरुष कैसे ग्रहण कर सकता है? यह सब तुम्हारे कारण ही हुआ है। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम इसे ग्रहण करो और अपने धर्म की रक्षा करो। इसका यों ही अपमान नहीं करना चाहिए।

परशुराम जी की बातों से कुछ ऐसी आवाज निकलती थी कि भीष्म अम्बा के साथ विवाह करे, परन्तु मेरे (भीष्म) मन में तो ऐसी कल्पना हो ही नहीं सकती थी। मैंने (भीष्म) कहा—भगवन्! मैंने धर्म का उल्लघंन नहीं किया है, इसके (अम्बा) के कहने पर ही शाल्व के पास इसको भेज दिया था। भय, दया, लोभ तथा काम के वशीभूत होकर धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। परशुराम जी ने कहा—यदि तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगे तो मैं अभी तुम्हारे भृत्य, मंत्री और अनुचरों के साथ तुम्हें मार डालूँगा। भीष्म ने अनुनय विनय करके कहा—मैं भय से धर्म नहीं छोड़ सकता। धर्म के लिए आपसे युद्ध करना पड़े तो मैं कर सकता हूँ। भीष्म की बात सुनकर परशुराम जी आगबबूला हो गये और युद्ध निश्चित हो गया। उसी समय भीष्म की माता गंगादेवी प्रकट हो गयी और कहा—बेटा! तुम क्या करने जा रहे हो। मैं अभी परशुराम जी के पास जाती हूँ उनसे प्रार्थना करुँगी। गंगादेवी की बात परशुराम जी ने नहीं मानी। दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ जिसमें भीष्म ही विजय हुए। यह युद्ध लगातार **तेईस दिनों** तक चला था। भीष्म ने जाकर परशुरामजी के चरणों में प्रणाम किय। परशुरामजी ने प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए कहा वीरवर भीष्म—

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः।
गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिस्तोषितोऽहं भृशं त्वया।।[1]

पृथ्वी पर तुम्हारे समान बली और योद्धा दूसरा क्षत्रिय नहीं है। इस युद्ध में तुमने मुझे सन्तुष्ट किया है। इसके बाद परशुराम जी ने अम्बा से कहा—राजकुमारी! मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ युद्ध किया, परन्तु भीष्म को नहीं हरा सका। अम्बा ने कहा—आपका कहना ठीक है, देवता भी भीष्म को नहीं हरा सके। अब मैं जाकर तपस्या करती हूँ, जिससे भीष्म को मार सकूँ। सब अपने—अपने घर चले गये।

उद्योगपर्व के उपपर्व अम्बोपाख्यानपर्व के अध्याय एक सौ इकरानवे से एक सौ तिरानवें में भीष्म की कथा इस प्रकार वर्णित है— भीष्म ने कहा—दुर्योधन! शिखण्डी की माता ने अपने पति को यथार्थ रहस्य बताया और कहा—पुत्र शिखण्डी नहीं, शिखण्डी नाम की कन्या है। महादेव जी ने वरदान वाक्य रूप में कहा था कि पहले पुत्री होगी, फिर वही पुत्री—पुत्र हो जायेगा। द्रुपद पुत्री

1. उद्योगपर्व—अम्बोपाख्यानपर्व—अध्याय 185 / 36

माता–पिता को दुःखी देखकर आत्महत्या करना चाहती थी। द्रुपद पुत्री शिखण्डनी की हालत देखकर यक्ष ने कहा–तुम्हारी दयनीय दशा किस कारण से हुई है? शीघ्र बताओं मैं उसे पूर्ण करुँगा। शिखण्डिनी ने सम्पूर्ण वृतान्त यक्ष प्रवर स्थूणाकर्ण को बताया। शिखण्डिनी ने कहा–मेरे पुत्रहीन पिता पर दशार्णराज क्रोधित होकर आक्रमण करेगें और वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगें। यक्ष ने कहा–शिखण्डिनी! मैं तुम्हारा स्त्री रूप धारण करुँगा और कार्य पूर्ण होने पर मेरा पुरुष रूप लोटा देना। इस प्रकार एक–दूसरे ने अपने स्वरूप बदल लिए। तदनन्तर महात्मा यक्षराज ने यक्ष स्थूणाकर्ण को शाप दिया कि अब तु हमेशा स्त्री ही बना रहेगा और शिखण्डिनी पुरुष।

भीष्म ने कहा–दुर्योधन! इस कारण से मैं शिखण्डी के साथ युद्ध नहीं करुँगा यदि मैं शिखण्डी को मारता हूँ तो साधु पुरुष मेरी निन्दा करेगें। दुर्योधन सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर कुछ समय के लिए सोचने लगा और शिखण्डी का वध न करना ही उचित मान लिया।

संजय ने कहा–धृतराष्ट्र! आपके पुत्र दुर्योधन ने सम्पूर्ण सेना के मध्य पुनः भीष्म पितामह से पूछा–पितामह! पाण्डवों की विशाल सेना युद्ध के लिए तत्पर है। महाधनुर्धर भीमसेन, अर्जुन और धृष्टधुम्न आदि योद्धा सेना की सुरक्षा करते हैं। इस विशाल सेना को रोकना असंभव है। आप पाण्डवों की सेना को कितने समय में नष्ट कर सकते हो? भीष्म ने कहा– दुर्योधन! मैं प्रतिदिन पाण्डवों की सेना के दस–दस हजार योद्धाओं और एक हजार रथियों को प्रतिदिन मार सकता हूँ। यदि–

मुञ्चेयं यदि वास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः।

शतसाहस्त्रघातीनि हन्यां मासेन भारत।।[1]

मैं युद्ध में लाखों वीरों के संहार करने वाले अस्त्रों का प्रयोग करुँ तो सम्पूर्ण पाण्डवसेना एक माह में ही नष्ट हो जायेगी।

संजय बोले–धृतराष्ट्र! भीष्म की यह बात सुनकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से पूछा द्रोणाचार्य ने कहा–मैं तो वृद्ध हूँ, मेरी प्राणशक्ति और सोचने की शक्ति कम हो गई है, फिर भी भीष्म जितना समय लेगें उतना ही समय में लूँगा। इस प्रकार सबने अपनी–अपनी शक्ति का परिचय दिया।

1. उद्योगपर्व–अम्बोपाख्यानपर्व–अध्याय 193 / 14

(vi) भीष्मपर्व

भीष्मपर्व के उपपर्व श्रीमद्भगवद्गीतापर्व के अध्याय तेरह से पन्द्रह और अठारह में भीष्म की कथा इस प्रकार प्राप्त होती है–वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भविष्य के ज्ञाता संजय ने युद्धभूमि से लौटकर धृतराष्ट्र के समीप जाकर अत्यन्त दुःखी अवस्था से भीष्म के मारे जाने का समाचार सुनाया।

संजय बोले–धृतराष्ट्र! आपको प्रणाम, मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। राजा शान्तनु के पुत्र भीष्म शिखण्डी के हाथों मारा जाकर बाण शय्या पर सो रहे हैं। जिन्होंने बड़े–बड़े राजाओं को और शत्रुसेना के दस हजार योद्धाओं को नष्ट किया। वे भीष्म पितामह पांचाल राजकुमार शिखण्डी द्वारा मार दिये गये हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा–संजय! पराक्रमी और इच्छा मृत्यु भीष्म के पराक्रम को देखकर पाण्डव सेना भी काँप उठती थी। कृपाचार्य और द्रोणाचार्य उनके समीप होते हुए भी शिखण्डी भीष्म को कैसे मार सकता हैं? यह सोचकर धृतराष्ट्र शोक में डूब गये।

संजय ने कहा–महाराज! सारा दोष दुर्योधन का ही नहीं बताना चाहिए। जो मनुष्य समाज में रहकर अपराध करता है, उसको समाज के द्वारा ही मारना चाहिए। मैं आपको आँखों देखा हाल सुना रहा हूँ। अपने मन को शान्त कीजिए। भीष्म के पीछे के भाग की रक्षा आपके पुत्र दुःशासन, चित्रसेन इत्यादि बीस हजार योद्धा कर रहे थे। आपके पुत्र की ग्यारह अक्षौहिणी सेना ऐसी लग रही थी मानो यमुना में गंगा मिल रही है।

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय तियालीस में भीष्म की कथा इस प्रकार है–संजय ने कहा–धृतराष्ट्र! दोनों ओर से बड़े–बड़े वीर सिंहनाद करने लगे। इतने में लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर कवच उतारकर कौरवों की सेना की ओर जा रहे थे उनको जाते देख कर श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सहदेव आदि उनके पीछे चलने लगे। अर्जुन ने कहा–युधिष्ठिर! आप क्या कर रहे हो? उन्होंने किसी का भी उत्तर नहीं दिया, वे चलते गये। श्रीकृष्ण ने कहा–वे भीष्म, द्रोण और कृप आदि से युद्ध की आज्ञा लेने जा रहे हैं। गुरुजनों का सम्मान और आज्ञापालन करने से ही मनुष्य विजयी होता है।

युधिष्ठिर के बारे में कौरवों के सैनिक तरह–तरह की बातें करने लगे। कोई कहता युधिष्ठिर डर गये हैं। वे सीधे भीष्म पितामह के पास जाकर उनके चरणों को स्पर्श किया और कहा–पितामह! आज ऐसा प्रसंग आ गया है कि विवश होकर आपके साथ युद्ध करना पड़ेगा।

आप हमें आशीर्वाद दीजिए। भीष्म ने कहा–बेटा! तुम बड़े धर्मज्ञ हो। इस प्रकार मुझसे अनुमति लेकर तुमने धर्मानुसार कार्य किया है यदि–

यद्येवं नाभिगच्छेया युधि मां पृथिवीपते।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत।।[1]

ऐसा न करते तो मैं तुम्हें पराजय का शाप दे देता। अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। युद्ध में तुम्हारी विजय हो। मुझसे युद्ध में सहायता के अतिरिक्त तुम मुझसे जो चाहो वह माँग लो, मैं सब कुछ दे सकता हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा–पितामह! यह आपकी महत्ता है, आप किस उद्देश्य से क्या कहते हैं? आप दुर्योधन की ओर से युद्ध करे, परन्तु आपका शरीर उनकी ओर और हृदय हमारे पक्ष में रहे, यही आपसे मांगता हूँ। भीष्म ने कहा–मैं दुर्योधन की ओर से लडूँगा, तुम्हें क्या सलाह दूँ स्पष्ट बताओं। युधिष्ठिर ने कहा–पितामह। मैं आपको युद्ध में कैसे जीत सकता हूँ पितामह ने कहा–युद्ध में मुझे मारने वाला कोई नहीं है, अभी जाओ, समय आने पर मेरे पास आना, मैं तुम्हारी सहायता करुँगा। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि से आशीर्वाद लेकर अपनी सेना में लौट आये।

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय सैंतालीस से उन्नचास में भीष्म की कथा इस प्रकार है–संजय ने कहा–धृतराष्ट्र! दुर्योधन की आज्ञा से कृतवर्मा, कृपाचार्य और शल्य आदि भीष्म की रक्षा में लगे हुए थे। भीष्म ने पाण्डवों की सेना में प्रवेश किया यह देख अभिमन्यु क्रोधित होकर भीष्म की तरफ दौड़ा और उसने भीष्म, कृतवर्मा, शल्य को चोट पहुँचायी। भीष्म और अभिमन्यु के मध्य घमासान युद्ध चलता रहा। भीष्म ने धृष्टद्युम्न, सात्यकी और भीमसेन को घायल कर दिया।

संजय ने कहा–धृतराष्ट्र! भीष्म द्वारा भयंकर बाण वर्षा की जा रही थी। भीष्म ने सबको घायल कर दिया। सेनापति श्वेत हाथ में गदा लिए भीष्म की ओर आया और गदा घुमाकर भीष्म के रथ पर फेंक दिया जिससे रथ नष्ट हो गया। अचानक भीष्म को आकाशवाणी सुनाई दी–

एतस्मिन्नन्तरे भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम्।।
आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसम्भवाम्।

---

1. भीष्मपर्व–भीष्मवधपर्व–अध्याय 43/38

भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्नं कुरुष्व वै।।
एष हास्य जयेकालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना।[1]

अर्थात् भीष्म शीघ्र प्रयत्न करो। श्वेत पर विजय पाने का समय ब्रह्माजी ने यही निश्चित किया था। भीष्म जी ने शीघ्र ही धनुष चढ़ाकर श्वेत पर प्रहार किया। जिससे श्वेत मारा गया।

धृतराष्ट्र ने पूछा—संजय! शूरवीर श्वेत जो युधिष्ठिर महान् का सेवक था, कैसे मारा गया? पापी दुर्योधन ही युद्ध चाहता था अन्य कोई भी नहीं। दुर्योधन के कारण पाण्डवों के चित्त में जो क्रोध है, उसके चिन्तन से रात—दिन मुझे शान्ति नहीं मिल रही है।

संजय ने कहा—राजन्! इस युद्ध में घोर अन्याय आपका ही है। दुर्योधन के ऊपर नहीं डालना चाहिए। पांचाल, मत्स्य, केकयी वीरों को भीष्म मारने लगे। भीष्म के बाणों से सम्पूर्ण सेना जली हुई दिखाई देने लगी। भीष्म का भयानक पराक्रम देख पाण्डव सेना पीछे हट गयी।

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय बावन, अठ्ठावन और उन्सठ में भीष्म की कथा इस प्रकार है— धृतराष्ट्र ने पूछा—संजय! कौरव—पाण्डवों के सैनिकों की व्यूह रचना होने पर किस प्रकार युद्ध प्रारम्भ हुआ? संजय ने कहा—राजन्! कुरुक्षेत्र की सम्पूर्ण भूमि में सिर ही सिर दीखते थे। किसी के हाथ, किसी के पैर कट गये। भीष्म पाण्डव पक्ष के वीरों के नाम ले लेकर मारने लगे। भीष्म के बाणों की चोट से पाण्डव सेना अचेत—सी हो गयी। पाण्डवों के सैनिक भागने लगे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—देखो! बड़ा भयंकर समय आ गया है, इस समय यदि तुम भीष्म पर प्रहार नहीं करोगे तो तुम्हारा किया कराया कुछ नहीं होगा। प्रतिज्ञावश तुमने कहा था कि मेरे सामने कोई भी आये मैं युद्ध करुँगा। यह सुनकर अर्जुन ने भीष्म के धनुष की डोरी काट दी। भीष्म ने अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन और श्रीकृष्ण को व्यथित किया। भीष्म के बाणों से सम्पूर्ण सेना पीड़ित होकर भागने लगी। कुछ समय पश्चात् अर्जुन ने इतना भीषण युद्ध किया कि अर्जुन और भीष्म के अलावा कोई नहीं ठहर सका। दोनों के मध्य शक्तियों का प्रहार चलता रहा।

संजय ने कहा—राजन्! तीसरे दिन के युद्ध में दोपहर होते—होते पाण्डवों ने कौरवों को छका दिया। कौरव सैनिक भागने लगे, स्वयं दुर्योधन मूर्छित हो गया और सारथि ने दुर्योधन को युद्धभूमि से बाहर ले जाकर रक्षा की। दुर्योधन को होश आने पर भीष्म पितामह के पास आया और कहा—पितामह! आप, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के जीवित रहते मेरी सेना का इस प्रकार से भागना किसी भी प्रकार योग्य नहीं कहा जा सकता। मैं यह कदापि नहीं मान सकता कि—

1. भीष्मपर्व—भीष्मवधपर्व—अध्याय 43 / 96

न पाण्डवान् प्रतिबलांस्तव मन्ये कथंचन।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च।।[1]

पाण्डव आप लोगों से अधिक पराक्रमी है। आप लोग जानबूझकर पाण्डवों को नहीं रोकते हो। आप अपने पराक्रम के अनुरूप युद्ध कर शत्रुओं को नष्ट कीजिए। दुर्योधन की यह बात सुनकर भीष्म हँसने लगे और कहा–दुर्योधन! यदि तुमने मेरी बात मानी होती तो यह नौबत नहीं आती। सम्पूर्ण देवता भी पाण्डवों को हराना चाहे तो भी नहीं हरा सकते। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अगर तु मेरा पराक्रम देखना चाहता है, तो देख! मैं अकेला ही पाण्डव सेना को रोकता हूँ। कौरवसेना में शङ्ख बजने लगे।

धृतराष्ट्र ने पूछा–संजय! उस भयानक युद्ध में भीष्म ने मेरे दुःखी पुत्रों के द्वारा क्रोध दिलाने पर प्रतिज्ञा की और भीष्म ने पाण्डवों के प्रति, पाण्डवों ने भीष्म के प्रति क्या किया?

संजय ने कहा–धृतराष्ट्र! उस दिन का युद्ध अद्भूत हुआ था। भीष्म अपना पूरा पराक्रम दिखा रहा था और अर्जुन गुरुभाव के कारण कोमलता से युद्ध कर रहा था। भीष्म के बाणों से आहत होकर पाण्डवसेना को भागती देखकर सात्यकि आ पहुँचा और सेना को जोश दिलाया। श्रीकृष्ण ने सात्यकि को सम्बोधन करके कहा–जो भाग रहे हैं, उन्हें भाग जाने दो। जो खड़े है, वे भी भाग जाँए, आज मैं अकेला ही भीष्म को कौरवसेना सहित मार डालता हूँ। उसके पश्चात् युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बैठाऊँगा। इतना कहकर श्रीकृष्ण चक्र को लेकर भीष्म को मारने के लिए कौरवसेना की ओर दौड़े। सब लोग हाहाकार करने लगे कि अब भीष्म का अन्त समय आ गया है।

श्रीकृष्ण के हाथ में चक्र देखकर भी भीष्म को तनिक भी घबराहट नहीं हुई। भीष्म ने कहा–श्रीकृष्ण! तुम सम्पूर्ण जगत् के निवास स्थान हो, तुम चक्र हाथ में लेकर आये हो, आओ, मैं तुम्हारा इस वेश में स्वागत करता हूँ। तुम्हारे हाथों से मरने में लाभ–ही–लाभ है। इस लोक में यश और परलोक में कल्याण प्राप्त होगा। तुम्हारे हाथों मरने से मेरी कीर्ति और प्रतिष्ठा सहस्त्र–सहस्त्र गुना बढ़ जायेगी।

श्रीकृष्ण को आगे बढ़ता देख अर्जुन ने उन्हें रोकने की कोशिश की लेकिन–

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ
भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम्।

---

1. भीष्मपर्व–भीष्मवधपर्व–अध्याय 58 / 36

बलान्निजग्राह हरिं किरीटी
पदेऽथ राजन् दशमे कथञ्चित्।।[1]

उस समय श्रीकृष्ण बड़े वेग में होने के कारण अर्जुन घसीटते हुए चले गये। दशवे पगपर जाकर अर्जुन अपने पैर जमा सके। अर्जुन ने कहा–श्रीकृष्ण! आप हम लोगों के लिए अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़िए। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि अब कोमल युद्ध नहीं करुँगा, आपकी आज्ञा से गुरुजनों का भी संहार करुँगा। अर्जुन की प्रतिज्ञा और शपथ सुनकर श्रीकृष्ण शान्त हो गये। शपथ के बाद तो अर्जुन ने इतना भयंकर युद्ध किया कि चारों ओर कोहराम मच गया। अकेले भीष्म ही ठहर पाये।

संजय ने कहा–महाराज! आपकी सेना का सर्वनाश देखकर दुर्योधन ने भीमसेन को मारने के लिए सेना को आज्ञा दी। भीमसेन व भीष्म के मध्य घमासान युद्ध हुआ जिसमें सात्यकि ने भीमसेन का पक्ष लिया। आपकी सेना पाण्डवसेना को रोकने में असमर्थ सी हो गई।

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय पैंसठ से अड़सठ में भीष्म की कथा इस प्रकार है–धृतराष्ट्र बोले–संजय! मेरे पुत्रों की पराजय का हाल सुनकर मेरी चिन्ता बढ़ रही है। महान् धनुर्धर के होते हुए भी कौरवसेना को पराजय का सामना क्यों करना पड़ा?

संजय बोले–महाराज! धर्म के कारण ही पाण्डवों की विजय होती आ रही है आपके दुरात्मा पुत्र हमेशा पापों में लीन रहते हैं। पाण्डवों ने बहुत कष्ट सहन किये हैं, इसी कारण से पाण्डव विजय हो रहे हैं। कौरवसेना में मूर्दनी–सी छा गई। दुर्योधन को चिन्ता होने लगी और रात को रोते हुए भीष्म पितामह के पास जाकर कहने लगे–पितामह! मैं ऐसा समझता हूँ कि आप जैसा योद्धा त्रिलोकी में ओर कोई नहीं है। आप मुझे बताइए पाण्डवों किसके सहारे जीतते जा रहे है, उनकी जीत का क्या कारण है? भीष्म पितामह बोले–दुर्योधन! मैं अब भी तुम्हे यही सलाह देता हूँ कि तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो। सन्धि करने से केवल तुम्हारा ही नहीं सम्पूर्ण संसार का भला होगा। श्रीकृष्ण जिनकी रक्षा को तत्पर रहते है–

नास्ति लोकेषु तद् भूतं भविता नो भविष्यति।
यो जयेत् पाण्डवान् सर्वान् पालिताञ्छार्ङ्गः धन्वना।।[2]

---

1. भीष्मपर्व–भीष्मवधपर्व–अध्याय 59/101
2. तत्रैव– 65/40

उन पाण्डवों को मारने वाला प्राणी न पैदा हुआ है और न हो सकता है। यह बात मैं अपने मुँह से नहीं बल्कि आत्मज्ञानी मुनियों के मुँह से जो पुराणगाथा सुनी है, वही कह रहा हूँ।

एक समय की बात थी सब देवता और ऋषिमुनि गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्माजी के पास गये, उनके सामने एक अन्तरिक्ष विमान प्रकट हुआ। ब्रह्मा जी ने जान लिया कि ये परमपुरुष परमेश्वर है। सम्पूर्ण जगत् तुम्हारा ही व्यक्त रूप है। इस समय तुम धर्म की स्थापना और पृथ्वी का भार उतारने के लिए यदुवंश में अवतार ग्रहण करो। तुम्हारे नाम अद्भुत है।

भीष्म ने कहा—दुर्योधन! भगवान् ने स्निग्ध—गम्भीर स्वर से कहा—ब्रह्माजी—मैं तुम्हारे मन की बात जानकर ही प्रकट हुआ हूँ। मैं तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण करुँगा। इतना कहकर वह अदृश्य हो गये। ऋषियों के पूछने पर ब्रह्माजी ने कहा—यह परम पुरुषोत्तम है। तुम नर—नारायण के अवतार अर्जुन और श्रीकृष्ण से द्रोह करते हो, यह तुम्हारा महान दुर्भाग्य है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र प्रकृति के स्वामी है, वे जिस पक्ष में है, वही पक्ष विजय होगा। मैंने तुम्हारे प्रश्न का संक्षेप में उत्तर दे दिया, अब तुम क्या जानना चाहते हो?

दुर्योधन ने पूछा—पितामह! सब लोको के स्वामी एवं पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव के अविर्भाव और स्थिति जानने की मेरे हृदय में बड़ी अभिलाषा है। भीष्म पितामह ने कहा बेटा—

वासुदेवो महद् भूतं सर्वदैवतदैवतम्।
न परं पुण्डरीकाक्षाद् दृश्यते भरतर्षभ।।[1]

श्रीकृष्ण देवताओं के भी देवता है। उन्होंने सम्पूर्ण सृष्टि को धारण कर रखा है। देवर्षि नारद ने उन्हें लोकभावन और भावज्ञ, मार्कण्डेय ने यज्ञों का यज्ञ, तपो का तप एवं भृगु ने उनको विष्णु का पुरातन परमपरूप कहा है। बेटा! मैंने तुमसे स्पष्ट रूप से वासुदेव श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन किया है, इससे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो और तुम उनकी सेवा करो। तुम उनको जीतने की आशा छोड़कर सन्धि कर लो और सुख से अपना जीवन बिताओ। नहीं तो तुम्हारा विनाश हो जायेगा।

दुर्योधन ने भीष्म पितामह की सम्पूर्ण बातों को यथार्थ माना भी। उसने निश्चय किया की श्रीकृष्ण और पाण्डव हमसे बहुत श्रेष्ठ है, फिर भी वह भीष्म की सलाहानुसार चेष्टा नहीं कर सका। भीष्म पितामह को प्रणाम कर दुर्योधन अपने शिविर में चला गया। प्रातः काल पुनः युद्ध शुरु हुआ।

---

1. भीष्मपर्व—भीष्मवधपर्व—अध्याय 67 / 2

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय सत्यानवें और अठ्ठानवे में भीष्म की कथा इस प्रकार है—संजय ने कहा—महाराज! आपके पुत्रों को भीमसेन के चुंगल से छुड़ाने के लिए भीष्म पितामह ने घमासान युद्ध किया। विराट और भीष्म ने भी एक—दूसरे को घायल कर दिया। इसी प्रकार आठवें दिन का युद्ध भी समाप्त हुआ उस दिन भी पाण्डवों की जीत रही। कौरव बड़े चिन्तित हुए कौरवों ने सलाह की कि भीष्म पितामह युद्ध से हट जाँय और कर्ण के ऊपर भार डाल दिया जाय तो कर्ण शीघ्र ही पाण्डवों को जीत सकता है। कर्ण ने स्वयं ही कहा था कि—भीष्म शस्त्र त्याग दे तो मैं अकेला ही पाण्डवों को मार डालूँगा। दुर्योधन यह प्रस्ताव लेकर भीष्म पितामह के पास गया।

दुर्योधन ने भीष्म पितामह के पास जाकर कहा—शत्रुसूदन! हम आपके भरोसे से पाण्डवों को तो क्या, सम्पूर्ण देवताओं और दानवों को परास्त करने की आशा करते हैं, आप पाण्डवों को परास्त कीजिए। यदि आप हमसे द्वेष करते है तो युद्धप्रिय कर्ण को युद्ध करने की आज्ञा दे दीजिए, वह पाण्डवों और उनकी सेना को परास्त करने को तैयार बैठा है। आपकी क्या आज्ञा है? दुर्योधन की बात सुनकर भीष्म पितामह लम्बी साँस लेने लगे। दुर्योधन ने उनके मर्मस्थल पर गहरा घाव करने की चेष्टा की। फिर उन्होंने कोई रूखी बात नहीं कही। भीष्म ने कहा—दुर्योधन! मैं बड़ी ईमानदारी के साथ अपने प्राणों की परवाह न करते हुए युद्ध कर रहा हूँ, फिर तुम ऐसी बातें क्यों कह रहे हो? विराटनगर के युद्ध में हम सब अर्जुन का कुछ नहीं बिगाड़ सके, उलटे वे सब महारथियों के कपड़े ले गये थे। पाण्डवों को मारना मेरी शक्ति से बाहर जाने पर भी मैं अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ूँगा—

सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽपि कर्ता महारणम्।
यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत् स्थास्यति मेदिनी।।[1]

तुम जाकर आराम करो, मैं कल महाघोर युद्ध करुँगा। जब तक यह पृथ्वी रहेगी तब तक मेरे युद्ध की चर्चा रहेगी।

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय एक सौ छः से एक सौ आठ में भीष्म की कथा इस प्रकार है—

संजय ने कहा—महाराज! नवें दिन प्रातःकाल नित्य कृत्य से निवृत होकर सभी योद्धा रणभूमि में आये। उस दिन पहले के दिनों से भी भयंकर युद्ध हुआ। पाण्डवसेना में भीष्म दावानल की भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। भयंकर नर संहार हो रहा था।

---

1. भीष्मपर्व—भीष्मवधपर्व—अध्याय 98 / 23

श्रीकृष्ण यह सब देखकर चिन्तित थे। उन्होंने देखा, अर्जुन भीष्म पितामह के गौरव व कृतज्ञता से दब गया है। बार–बार कहने पर भी भीष्म पर कठोर प्रहार नहीं कर रहा है। श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को भीष्म के सामने ले गये। भीष्म और अर्जुन का युद्ध होने लगा। भीष्म ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को घायल कर दिया। श्रीकृष्ण रथ से कूदकर हाथ में कोड़ा लिए भीष्म को मारने दौड़ पड़े। यह देखकर कौरवसेना भय से विह्वल हो गयी और उनके मुँह से 'भीष्म मरे, भीष्म मरे' शब्द निकलने लगे।

यह देख अर्जुन भी कूद पड़े और श्रीकृष्ण को रोक लिया। अर्जुन स्नेहपूर्ण नम्रस्वर से श्री कृष्ण से कहने लगे–श्रीकृष्ण! आप पहले युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं उसे अन्यथा मत कीजिए। सब लोग आपको मिथ्यावादी कहेगें, इसकी जिम्मेदारी मुझ पर है। मैं शपथ लेकर कहता हूँ कि युद्ध में भीष्म को मारुँगा। दोनों रथ पर लौट आये और नवें दिन के युद्ध में पाण्डव सेना क्षत–विक्षत हो गयी। युद्ध बन्द होने की घोषणा कर दी।

संजय ने कहा–राजन्! युद्ध बन्द होने के बाद रात में श्रीकृष्ण और पाण्डव इकठ्ठे हुए। युधिष्ठिर ने कहा–

वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम्।
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा।।[1]

श्रीकृष्ण! भीष्म हमारी सेना को नष्ट कर रहे हैं। इस नरसंहार की अपेक्षा तो जंगल में रहकर जीवन बिता देना ही अच्छा है। श्रीकृष्ण ने कहा–अर्जुन यदि तुम भीष्म को मारना नहीं चाहते हो तो मैं स्वयं तुम्हारे सामने भीष्म को मारुँगा। जो आपका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है। भीष्म को मारना कौनसी बड़ी बात है। युधिष्ठिर ने कहा अब भीष्म पर विजय प्राप्त करने का उपाय भीष्म से ही पूछना चाहिए। मुझे तो यही ठीक लगता है, आगे तुम लोगों की जो सम्मति हो। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर की बात का समर्थन किया और सब लोग भीष्म पितामह के पास गये।

यथायोग्य शिष्टाचार के पश्चात् भीष्म पितामह ने कहा–वीरो! बताओं, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं क्या करुँ? युधिष्ठिर ने पितामह के बार–बार पूछने पर दीनभाव से कहा–पितामह! हमारी जीत कैसे हो? इस नर संहार से हम लोग कैसे बचे? आप के जीते जी यह सब संभव नहीं है। कृपा करके अपनी मृत्यु का उपाय हमें बता दीजिए। भीष्म ने कहा–मेरे जीते–जी तुम जीत नहीं सकते। तुम कठोर प्रहार करके पहले मुझे मारने का प्रयत्न करो।

---

1. भीष्मपर्व–भीष्मवधपर्व–अध्याय 107 / 19

युधिष्ठिर ने कहा–पितामह! आपको कोई नहीं जीत सकता। अब आप ही बताओ हम लोग आपको कैसे जीते? भीष्म पितामह ने कहा–मैं शस्त्रास्त्र का त्याग कर दूँ तभी देवता मुझे मार सकते हैं। धर्मपुत्र! मेरा यह नियम है कि शस्त्र का त्याग किए हुए, स्त्री, स्त्रियों के नाम रखने वाले, विकलांग, सन्तानहीन और नपुसंक से युद्ध न करुँ। मैंने पहले ही प्रतिज्ञा की है कि द्रुपद के पुत्र शिखण्डी पर मैं शस्त्र–प्रहार नहीं कर सकता, क्योंकि पहले वह स्त्री रह चुका है। इसलिए महारथी अर्जुन शिखण्डी की आड़ में से मुझे तीक्ष्ण बाण मारे। मुझे श्रीकृष्ण या अर्जुन ही मार सकते हैं, वो भी शस्त्र का परित्याग करने पर। तुम्हारी विजय प्राप्त करने का यही उपाय है।

संजय ने कहा–राजन्! भीष्म की अनुमति लेकर श्रीकृष्ण और पाण्डव अपने शिविर में चले गये और अर्जुन बहुत उदास हुआ। अर्जुन ने कहा–श्रीकृष्ण! बचपन में मैं जिनकी गोद में खेलता था, उनसे ही मैं युद्ध करुँगा। श्रीकृष्ण! यह कार्य मुझसे नहीं हो सकता चाहे जीत हो या हार मैं उन्हें नहीं मार सकता। भगवान् श्रीकृष्ण ने संक्षेप रूप से फिर गीता का उपदेश दुहराया और कहा कि ईर्ष्या–द्वेष छोड़कर, जय–पराजय की आशा छोड़कर, लाभ हानि की चिन्ता छोड़कर जो युद्ध में सामने आवें उसे मारना ही क्षत्रिय धर्म है। बहुत समझाने पर अर्जुन ने स्वीकार किया और शिखण्डी को आगे करके युद्ध करना तय हुआ।

धृतराष्ट्र ने पूछा–संजय! शिखण्डी ने भीष्म पर किस प्रकार प्रहार किया और भीष्म ने पाण्डवों पर किस प्रकार चढ़ाई की? संजय ने कहा–राजन्! दसवें दिन बड़ी घमासान लड़ाई हुई। भीष्म और अर्जुन का बड़ा भीषण युद्ध हुआ। शिखण्डी तो केवल बहाने के लिए आगे खड़ा था, उसके बाणों से भीष्म पितामह को करारी चोट भी नहीं आती थी। शिखण्डी के सामने होने के कारण भीष्म खुलकर प्रहार भी नहीं कर पा रहे थे।

भीष्मपर्व के उपपर्व भीष्मवधपर्व के अध्याय एक सौ उन्नीस से एक सौ बाईस में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है–भीष्म युद्धभूमि में खड़े–खड़े सोचने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण इनके रक्षक नहीं होते तो मैं पाँचों पाण्डवों को एक ही बाण से मार डालता, किन्तु पाण्डव नहीं मारे जा सकते और स्त्री जाति का शिखण्डी होने पर उसे भी नहीं मार सकता। इस समय भगवान् श्रीकृष्ण के सामने बाण शय्या पर सो जाना ही मेरे लिए परमहित की बात है। पाण्डवों की विजय निश्चित है, अब मैं जीवित रहकर उनकी विजय में अड़चन क्यूँ डालूँ?

भीष्म यह सब सोच रहे थे। उस समय आकाश में स्थित ऋषियों और वसुओं ने भीष्म को सम्बोधन करके कहा–भीष्म! तुम्हारा सोचना बहुत अच्छा है, तुम्हें मृर्त्यलोक में बहुत दिन हो गये,

अब हम लोगों के लोक में आओ। ऋषियों और वसुओं के मुँह से यह बात निकलते ही देवलोक में नगाड़े बजने लगे और देवता भीष्म पर पुष्पवर्षा करने लगे। वह आकाशवाणी भीष्म और संजय के अतिरिक्त किसी ने नहीं सुनी।

भीष्म ने देवताओं और ऋषियों का अभिप्राय जानकर अर्जुन के बाणों से पीड़ित होने पर भी शस्त्र प्रहार नहीं किया। शिखण्डी ने भीष्म के वक्षः स्थल पर नौ बाण मारे, परंतु उनसे भीष्म विचलित नहीं हुए। इसके बाद अर्जुन व शिखण्डी ने भीष्म पर बहुत बाण चलाये और सम्पूर्ण शरीर बाणों से छिद गया। भीष्म के शरीर में ऐसी जगह नहीं बची जहाँ पर अर्जुन के बाण न घुसे हो। दसवें दिन के युद्ध में सूर्यास्त से पहले ही महात्मा भीष्म रथ से नीचे गिर पड़े। भीष्म के शरीर में इतने बाण घुसे हुए थे कि उनका शरीर जमीन में न गिरकर बाणों की ही शय्या बन गयी। सिर नीचे लटक गया। उस समय आकाश से ध्वनि सुनायी दी कि भीष्म ने दक्षिणायन में शरीर त्याग कैसे किया? भीष्म ने सचेत होकर कहा—मैं अभी जीवित हूँ। सब लोग प्रसन्न हो गये।

हिमालय की पुत्री भीष्म की माता गंगा ने भीष्म की इच्छा जानकर महर्षियों को हंस के वेश में उनके पास। भीष्म के पास पहुँचकर उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की और अपने आप ही बात की कि भीष्म ने दक्षिणायन में प्राण कैसे त्यागा? भीष्म ने उनसे कहा कि—मैं दक्षिणायन भर जीवित रहूँगा, सूर्य के उत्तरायण होने पर अपने धाम जाऊँगा। पिता के कृपा प्रसाद से मुझे इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त है।

धृतराष्ट्र ने पूछा—संजय! भीष्म के मारे जाने का समाचार सुनकर मेरा मन शान्त नहीं हो रहा है, जिन्हें परशुरामजी भी नहीं मार सके, वह आज शिखण्डी के हाथों मारे गये मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।

संजय ने कहा—महाराज! भीष्म के गिरते ही युद्ध बन्द हो गया। उनके पास सभी वीर इक्ट्ठे हो गए। द्रोणाचार्य यह समाचार सुनकर मूर्च्छित हो गये। उनके होश में आने पर भीष्म ने सबसे स्नेह के साथ कहा—

स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः।
तुष्यामि दर्शनाच्चाहं युष्माकममरोपमाः।।[1]

वीरों! मैं तुम लोगों का स्वागत करता हूँ, तुम्हें देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ। मेरा सिर नीचे लटक रहा है, मुझे तकिये की आवश्यकता है। सभी राजा और कौरव बढिया कोमल तकिया लेकर

1. भीष्मपर्व—भीष्मवधपर्व—अध्याय 120 / 33

आये, परन्तु भीष्म ने अस्वीकार करके कहा–ये तकिया शरशय्या के योग्य नहीं है। अर्जुन की ओर देखकर कहा–अर्जुन! तुम इस शरशय्या के योग्य तकिया मुझे दो। अर्जुन ने गाण्डीव धनुष चढ़ाकर उनकी आज्ञानुसार तीन बाण भीष्म पितामह के सिर पर मारे इसे उनका सिर ऊपर उठ गया। उन्होंने अर्जुन से कहा–तुम बड़े बुद्धिमान् हो। यदि तुम ऐसी तकिया नहीं देते तो मैं तुम पर कुपित होकर शाप दे देता। धार्मिक क्षत्रियों के लिए ऐसी शय्या और ऐसा तकिया चाहिए।

पितामह ने राजाओं से कहा– मुझे अब योग्य तकिया मिल गया है। सूर्य के उत्तरायण होने पर इसी शय्या पर लेटा रहूँगा। तुम लोग इसके चारों ओर खाई खोद दो। मैं इसी शय्या पर भगवान का स्मरण करुँगा। मेरा एक अनुरोध है कि यदि किसी प्रकार युद्ध बन्द हो सके तो कर दो। उसी समय दुर्योधन की आज्ञानुसार शल्य चिकित्सक व दवाइयाँ लेकर भीष्म के पास आया। भीष्म ने उन्हें देखकर दुर्योधन से कहा–इन्हें जो कुछ देना है देकर विदा कर दो। मैंने उत्तम गति प्राप्त कर ली है। इन बाणों की चिता से ही मुझे जलाना। भीष्म की धर्मनिष्ठा और धर्मानुकूल मृत्यु देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। सब उन्हें प्रणाम व परिक्रमा लगाकर रक्षक नियुक्त कर अपने–अपने शिविर में चले गये।

संजय ने कहा–महाराज! दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग भीष्म के पास आये। उनके पास सबके बैठने पर भीष्म ने पीने के लिए जल माँगा। उसी समय राजालोग स्वादिष्ट भोजन और जल लाये। भीष्म ने यह देखकर कहा–

उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत्।
नाद्यातीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः।।
अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम्।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृतिं शशिसूर्ययोः।।[1]

मैं अब इस शय्या पर लेटा हुआ हूँ, परन्तु मर्त्यलोक में नहीं हूँ। अब इस लोक का भोजन व जल ग्रहण नहीं करना चाहिए। इतना कहकर भीष्म ने अर्जुन का स्मरण किया। अर्जुन ने पितामह के पास आकर प्रणाम किया और कहा–पूजनीय पितामह! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? भीष्म पितामह ने कहा–बेटा! तुम्हारे बाणों की जलन से मेरा शरीर जल रहा है, मुँह सुख रहा है। मुझे तुम्हारे सिवाय जल पिलाने वाला कोई नहीं दीखता।

भीष्म की आज्ञा पाकर अर्जुन ने अपने धनुष पर डोरी चढ़ाकर पितामह की दाहिनी बगल में पृथ्वी पर बाण मारा, पृथ्वी फट गयी और अमृततुल्य निर्मल शीतल जल की धार ऊपर निकली।

---

1. भीष्मपर्व–भीष्मवर्धपर्व–अध्याय 121 / 13–14

वह जल पीकर महात्मा भीष्म बहुत प्रसन्न और तृप्त हुए। राजा लोग विस्मित हो गये, कौरव सेना डर के मारे सिकुड़ गयी।

भीष्म ने कहा—बेटा अर्जुन! तुमने आज जो काम किया है, वह तुम्हारे लिए कुछ भी अद्भुत नहीं है। नारद ने मुझसे कहा था कि तुम पुरातन ऋषि नर हो। पृथ्वी पर तुम्हारे जैसा धनुर्धारी ओर कोई नहीं है। हम लोगों ने दुष्ट दुर्योधन को समझाया, परन्तु उसने किसी की बात नहीं मानी, वह भीमसेन के बल से बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जायेगा।

भीष्म की बात सुनकर दुर्योधन उदास हो गया। भीष्म ने कहा—दुर्योधन! यह क्रोध करने का समय नहीं है। अर्जुन ने जिस प्रकार मुझे जल पिलाया, तुमने अपनी आँखों से देखा है, कौन है पृथ्वी पर ऐसा काम करने वाला वीर? उनसे मेल करने में तुम्हारी और सम्पूर्ण संसार की भलाई है। अर्जुन ने जो कुछ किया है, वह तुम्हारी सावधानी के लिए पर्याप्त है। मेरी मृत्यु ही इस हत्याकाण्ड का अन्त हो। पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। तुम लोग इस समय जिस मार्ग में चल रहे हो, वह सर्वनाश का मार्ग है। भीष्म इतना कहकर चुप हो गये और सब लोग उनसे अनुमति लेकर अपने—अपने शिविर में चले गये।

संजय ने कहा—महाराज! जब सब लोग चले गये, तब भीष्म पितामह के पास कर्ण आया। कर्ण की आँखों में आँसु भर आये। उसने गद्गद स्वर से कहा—पितामह! मैं राधा पुत्र कर्ण हूँ मेरे निरपराध होने पर भी आप मुझसे लाग—डाँट रखते है। भीष्म ने कर्ण की बात सुनकर धीरे—धीरे आँखे खोली और कहा—कर्ण! आओ, तुमने इस समय मेरे पास आकर बड़ा उत्तम कार्य किया है। वीर! मुझसे देवर्षि नारद और महर्षि व्यासदेव ने कहा है कि तुम राधा पुत्र नहीं, कुन्तीपुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं है, साक्षात् भगवान् सूर्य है। मैं सत्य कहता हूँ, मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति तनिक भी द्वेष नहीं है। मैं कटुवचन इसलिए कहता था कि तुम्हारा तेज घट जाए। संसार में तुम्हारे समान पराक्रमी बहुत कम ही है। तुम शूरवीर हो, तुम्हारे कारण कौरवों का घमण्ड बढ़ता इसलिए मैं तुम्हें अपमानित किया करता था। इस समय यदि तुम मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो तुम पाण्डवों में मिल जाओ, जिससे युद्ध बन्द हो जायेगा और प्रजा में शान्ति का विस्तार होगा।

कर्ण ने कहा—

जानाम्येव महाबाहो सर्वमेतन्न संशयः।
यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः।।[1]

---

1. भीष्मपर्व—भीष्मवधपर्व—अध्याय 122/23

पितामह! आपकी एक–एक बात सत्य है। मैं कुन्ती का ही पुत्र हूँ, सूत का नहीं, परन्तु दुर्योधन की कृपा से पलकर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ, यह भी सत्य है। मैं दुर्योधन को अपना जीवन अर्पित कर चुका हूँ। पाण्डवों से मेल करने की कोई आशा मुझे दिखाई नहीं देती। मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डव अजेय है। फिर भी मैं उनसे युद्ध करना चाहता हूँ, इसलिए आप मुझे युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। यह मेरी आन्तरिक इच्छा है कि आपसे आज्ञा लेकर युद्ध करुँ। मैंने क्रोध या चंचलता के कारण भला–बुरा कहा हो तो मुझे क्षमा कर दीजिए।

भीष्म पितामह ने कहा–बेटा! यदि यह वैर–भाव नहीं मिट सकता हो तो तुम युद्ध करो। धर्मयुद्ध ही सर्वोत्तम है इसलिए सर्वदा धर्म की रक्षा करते हुए युद्ध करना।

(vii) द्रोणपर्व

द्रोणपर्व के उपपर्व द्रोणाभिषेकपर्व के अध्याय एक, तीन और चार में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है–वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भीष्म के धराशायी होने पर धृतराष्ट्र अत्यन्त शोक में डूब गये। कौरव–पाण्डव भी अलग–अलग चिन्ता करने लगे। भीष्म के पश्चात् कौरवसेना में श्रेष्ठ धनुर्धारी की कमी खलने लगी। भीष्म पितामह के बाद क्रमशः द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा को सेनापति बनाये गये लेकिन इनको भी युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई इनके बाद कर्ण का स्मरण किया गया।

भीष्म के प्रति कर्ण का कथन–महाधनुर्धर भीष्म को अर्जुन ने मारकर उनके रक्षाकवच को भी नष्ट कर दिया। भीष्म पितामह द्वीप के समान कौरव सेना के आश्रय थे। कर्ण ने भीष्म की अवस्था देखकर दोनों हाथों द्वारा अभिवादनपूर्वक प्रणाम करके कहा–पितामह! आप अपनी वाणी द्वारा मुझसे कल्याणमयी बाते कहिए।

भीष्म ने कहा–कर्ण! तुमने दुर्योधन की विजय के लिए भुजाबल और पराक्रम से समस्त कम्बोजो को जीत लिया था–

शिवेनाभिवदामि त्वां गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः।
अनुशाधि कुरुन् संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम्।।[1]

आज मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम शत्रुसेना के साथ युद्ध करो और दुर्योधन को विजय बनाओ। क्योंकि सदाचार का पालन करते हुए धर्मयुद्ध ही सर्वोत्तम कर्म है। इसी प्रकार भीष्मजी का वचन सुनकर कर्ण ने उनके चरणों में प्रणाम कर समरक्षेत्र में चला गया। कर्ण को

1. द्रोणपर्व–द्रोणाभिषेकपर्व–अध्याय 4 / 11

युद्धक्षेत्र में देखते ही कौरव और कौरवसेना में आत्मविश्वास आ गया। कर्ण ने कौरवसेना के सेनापति की कमी को पूरा किया। जिससे कौरवसेना में प्रसन्नता की तहर दौड़ पड़ी।

(viii) कर्णपर्व

कर्णपर्व के अध्याय तेहत्तर में भीष्म की कथा इस प्रकार है–

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म के पराक्रम का वर्णन करते हुए अर्जुन को कर्ण वध के लिए उत्तेजित करते हैं कि अक्षौहिणी सेना के स्वामी भयंकर पराक्रमी भीष्म जो कभी युद्ध से हटने वाले नहीं है, उनको तुम्हारे अलावा कोई नहीं जीत सकता था। भीष्म ने पाण्डव सेना का भयंकर रूप से सर्वनाश किया था कर्ण के आने से दुर्योधन को विश्वास हो गया है कि कर्ण अब मेरी रक्षा करेगा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वह कर्ण मुझे भी बन्दी बनाने की तैयारी कर रहा है। दुर्योधन मन–ही–मन सोच रहा है कि कर्ण पाण्डवों को मारकर विजयी हो जायेगा–

एतत् कृत्वा महत् कर्म हत्वा कर्ण महारथम्।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम।।[1]

इस महान् कार्य को पूरा करके अर्जुन तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा। इस प्रकार अर्जुन को श्रीकृष्ण युद्ध के लिए तैयार करते हैं।

(ix) शान्तिपर्व

शान्तिपर्व के उपपर्व राजधर्मानुशासनपर्व के अध्याय छियालीस और सैंतालीस में भीष्म की कथा उपलब्ध होती है–वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भीष्म शरशय्या पर पड़े सम्पूर्ण मनोवृत्तियों से भगवान् का चिन्तन करने लगे। भीष्म पितामह को संसार से कोई मतलब नहीं था।

भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए भीष्म का दर्शन करने के लिए कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जाने की आवश्यकता नहीं है, उनका दर्शन करने के लिए तो भगवान् श्रीकृष्ण के पास चलना चाहिए, क्योंकि भीष्म की अन्तरात्मा श्रीकृष्ण के पास है और भीष्म क्या कर रहे है, इस बात को केवल श्रीकृष्ण ही जानते हैं।

अठ्ठारह दिन का महाभारतीय युद्ध समाप्त हो चुका है, जिसमें श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवों को विजय मिली है। इसके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्य लेना अस्वीकार किया,

---

1. कर्णपर्व–अध्याय 73 / 125

परन्तु भाइयों ने, नारद ने और सबसे अधिक श्रीकृष्ण ने राज्य लेने के लिए बाध्य किया और युधिष्ठिर राजा हुए। युधिष्ठिर प्रतिदिन और प्रतिक्षण अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। वे सबका सम्मान करते हुए सम्पूर्ण प्रजा को संतुष्ट रखते थे। वे सबकी प्रसन्नता सम्पादन करके श्रीकृष्ण के पास गये। युधिष्ठिर ने उन्हें देखकर पूछा–श्रीकृष्ण! रात को नींद तो अच्छी आयी है, कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आपकी कृपा से हम सब सकुशल है। लेकिन श्रीकृष्ण ध्यानमग्न होने के कारण युधिष्ठिर की बात नहीं सुनी। कुछ समय पश्चात् युधिष्ठिर ने पुनः भगवान् से प्रार्थना की–प्रभो! आप किसका ध्यान कर रहे हैं? इस समय तीनों लोको में मंगल तो है न?

युधिष्ठिर की विनती सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा–युधिष्ठिर! इस समय मैं आपके वृद्ध दादा भीष्म पितामह का चिन्तन कर रहा हूँ–

शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः।
मां ध्याति पुरुषव्याघ्रस्ततो मे तदतं मनः।।[1]

वे बुझती हुई आग की तरह शरशय्या पर पड़े हुए मेरा ध्यान कर रहे है। मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मेरा ध्यान करे, उसका मैं ध्यान करुँ। इसलिए मेरा मन उन्हीं के चिन्तन में लगा हुआ है। उनके इस लोक से चले जाने पर यह पृथ्वी चन्द्रहीन रात्रि की भाँति शोभाहीन हो जायेगी। उनके न रहने पर भूमण्डल में ज्ञान का ह्रास हो जायेगा। इसलिए आप उनके पास जाकर वर्णों, आश्रमों, विद्याओं और पुरुषार्थों का और भी कुछ जो आपके मन में है, उसका रहस्य पूछ लीजिए।

भीष्म पितामह ने अपनी इन्द्रियों, मनोवृत्तियों और बुद्धि को समेटकर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति प्रारम्भ की। उस समय ऋषि महर्षि उन्हें घेरकर बैठे हुए थे।

भीष्म ने कहा–श्रीकृष्ण! आप परम ब्रह्म है। बड़े–बड़े देवता और ऋषि आपके तत्त्वों को नहीं जानते। यह सम्पूर्ण संसार आप में ही स्थित है। आपने पृथ्वी को धारण कर रखा है। आप ही शेषनाग की शय्या पर शयन करते है। आप ही सांख्ययोग और मोक्ष स्वरूप है। प्रभो! मैं आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

आज मैं आपको मृत्यु के समय देख रहा हूँ। मैं कृतार्थ हो गया। मैंने मोह का परित्याग किया, मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। मेरी आँखों के सामने से अंधेरा हट गया। मैंने अभेदभाव, अद्वैतभाव से आपको प्राप्त किया। मैं आपमें मिल गया, मैं आपसे एक हो गया।

1. शान्तिपर्व–राजधर्मानुशासनपर्व–अध्याय 46 / 11

तस्मिन्नुपरते शब्दे ततस्ते ब्रह्मवादिनः।
भीष्मं वाग्भिर्बाष्यकण्ठास्तमानर्चुर्महामतिम्।।[1]

इतना कहकर भीष्म चुप हो गये और महर्षियों के आँखों से आँसु बहने लगे और भीष्मजी की प्रशंसा करने लगे।

शान्तिपर्व के उपपर्व राजधर्मानुशानपर्व के अध्याय पचास से बावन में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है—वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! इस प्रकार भीष्म ने श्रीकृष्ण की स्तुति की। इसके बाद श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, कृपाचार्य, भीम, अर्जुन आदि सब भीष्म के पास आये। भीष्म के पास पहुँचकर उन लोगों ने देखा कि वे संध्याकालीन सूर्य के समान निस्तेज होकर शरशय्या पर पड़े हैं, बड़े—बड़े महात्मा उन्हें घेरकर बैठे हुए है। वे सब भीष्म के पास आकर उनको घेरकर बैठ गये।

इसके बाद महात्मा भीष्म को सम्बोधन करके श्रीकृष्ण ने कहा—आपका ज्ञान तो पहले की ही भाँति है न। पाण्डवों के घाव की पीड़ा के कारण आपकी बुद्धि अस्थिर तो नहीं हुई है? अपने पिता शान्तनु के इच्छामृत्यु के वरदान से आप मृत्यु के अधिकारी हुए है। आप सम्पूर्ण धर्मों का रहस्य, वेद—वेदाङ्ग, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबका तत्त्व जानते है। आपके समान गुणवान मनुष्य को इस संसार में न तो मैंने देखा है और न ही सुना है। आप तपोबल से संसार की सृष्टि कर सकते है। बन्धुजनों का विनाश होने के कारण युधिष्ठिर शोकाकुल हो रहे है, उनकी शंकाओं का हल करने वाला दूसरा कोई नहीं दीखता है। आप कृपा करके युधिष्ठिर के चित्त को शान्त कीजिए।

भीष्म ने तनिक सिर उठाकर श्रीकृष्ण को नमस्कार करके कहा—भगवान्! आप सम्पूर्ण कारणों के कारण और सबके परम निधान है। आप सबके आश्रयदाता और नित्य एकरस अविनाशी सच्चिदानन्द है। मैं परम शक्ति से, सच्चे हृदय से आपकी शरण में हूँ।

श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए गम्भीर स्वर से कहा—महात्मन्! आप मेरे दीव्य शरीर का दर्शन कीजिए। आपकी मुझ पर परम भक्ति है, इसी से मैं यह दीव्य शरीर आपको दिखा रहा हूँ—

भवांस्तु मम भक्तश्च नित्यं चार्जवमास्थितः।
दमे तपसि सत्ये च दाने च निरतः शुचिः।।[2]

---

1. शान्तिपर्व—राजधर्मानुशासनपर्व—अध्याय 47 / 103
2. तत्रैव—51 / 12

अर्थात् आप मेरे परमभक्त है, आपका स्वभाव सरल, तपस्वी, सत्यवादी, इन्द्रियजित और दानी है, इसलिए आप मेरे दीव्य शरीर के दर्शन पाने के हकदारी है। जो मनुष्य भक्तिहीन है, उसको मैं दर्शन नहीं देता हूँ। आप अभी छप्पन दिनों तक जीवित रहेगें। फिर आपको परमपद की प्राप्ति होगी। वसु देवता आकाश में स्थित होकर आपकी रक्षा कर रहे हैं। आपके शरीर त्याग के पश्चात् आपके जैसा कोई तत्वज्ञानी नहीं रहेगा। इसलिए हम आपके पास आये हैं कि आप अपने सम्पूर्ण ज्ञान का वर्णन कर जाये। इससे आपके धर्म–सिद्धान्त की रक्षा और धर्मराज युधिष्ठिर का शोक भी दूर हो जायेगा।

भीष्म ने नमस्कार करके कहा–भगवन! आपके वचनों से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं भला आपके सामने किस धर्म का वर्णन कर सकता हूँ? संसार में जितने भी धर्म–अधर्म कहे जाते है, उन सबका मूल कारण आप ही है। बाणों के आघात से मेरा शरीर व्यथित और हृदय पीड़ित हो रहा है और बुद्धि क्षीणता को प्राप्त हो गयी है। वाणी असमर्थ हो गयी है। आपके प्रभाव से ही मैं जीवित हूँ। आप सम्पूर्ण ज्ञानों के निधि है। आपके सामने में क्या उपदेश कर सकता हूँ। इसलिए मुझे क्षमा कीजिए। आप ही युधिष्ठिर को धर्म उपदेश दीजिए।

श्रीकृष्ण ने कहा–पितामह! आप सब तत्वों के ज्ञाता, शक्तिशाली और भरतवंश के भूषण है। बाणों के घाव के कारण आपके शरीर में जो पीड़ा है तो मैं आपको वरदान देता हूँ कि–

न ते ग्लानिर्न ते मूर्छा न दाहो न च ते रूजा।
प्रभविष्यन्ति गाङ्गेय क्षुत्पिपासे न चाप्युत।।[1]

अर्थात आपकी ग्लानि, मूर्छा, जलन, भूख–प्यास मिट जाय, आपके हृदय में सम्पूर्ण ज्ञान जाग्रत हो जाय। आप धर्म और अर्थ के सम्बन्ध में जितना विचार करेगें, आपकी बुद्धि उतनी ही बढ़ती जायेगी। आप सब वस्तुओं का रहस्य जान सकेगें।

भगवान श्रीकृष्ण की यह दीव्य वाणी सुनकर वेदव्यास आदि ऋषि–महर्षियों ने उनकी स्तुति की। आकाश मण्डल से श्रीकृष्ण, भीष्म आदि पर पुष्प वर्षा होने लगी। शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी। भीष्म की चेतना जाग्रत् हो गयी। उनकी बुद्धि में सम्पूर्ण ज्ञान स्फुरित होने लगा और चारों ओर मंगलमय शकुन होने लगे। शाम हो गयी थी। श्रीकृष्ण और पाण्डव भीष्म की अनुमति लेकर दूसरे दिन मिलने की कहकर सब अपने–अपने स्थान पर चले गये।

---

1. शान्तिपर्व–राजधर्मानुशासनपर्व–अध्याय 52 / 16

शान्तिपर्व के उपपर्व राजधर्मानुशासनपर्व के अध्याय चौवन से अठ्ठावन में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है—पूर्व निश्चय अनुसार दूसरे दिन सब लोग भीष्म पितामह की शरशय्या के पास उपस्थित हुए। बड़े—बड़े ऋषि—महर्षि पहले से ही आ गये थे। देवर्षि नारद और युधिष्ठिर की प्रेरणा से भगवान् श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह से वार्तालाप प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण ने कहा—पितामह! आज की रात आपको किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हुआ? आपका शरीर पीड़ा रहित और मन शान्त तो है न? पितामह ने कहा—श्रीकृष्ण! आपकी कृपा से—

दाहो मोहः श्रमश्चैव कलमो ग्लानिस्तथा रूजा।
तव प्रसादाद् वार्ष्णेय सद्यः प्रतिगतानि मे।।[1]

अर्थात् मोह, दाह, थकावट, उद्वेग और रोग सब दूर हो गये। तुम्हारी कृपा से तीनों काल का ज्ञान हो गया है। मैं तुम्हारे चिन्तन से पुनः जीवित हो गया हूँ। अब मैं धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ, परंतु एक बात बताओं तुमने स्वयं युधिष्ठिर को उपदेश क्यों नहीं दिया?

श्रीकृष्ण ने कहा—पितामह! जगत् में जो कुछ कल्याण और कीर्ति दीख रही है, उसका कारण मैं ही हूँ, इस बात का किसी को भी संदेह नहीं है। इस समय मैंने अपनी बुद्धि आपके शरीर में प्रविष्ट करा दी है। मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा ही उपदेश हो और वह संसार में वेद वाक्य की भाँति स्थिर रहे—

यश्चैतेन प्रमाणेन योक्ष्यत्यात्मानमात्मना।
स फलं सर्वपुण्यानां प्रेत्य चानुभविष्यति।।[2]

अर्थात् जो आपके उपदेशों का अनुसरण करेगा, वह लोक, परलोक में परमार्थ बनेगा। आप मेरी और सबकी इच्छा पूर्ण करें। आपका कल्याण होगा।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! श्रीकृष्ण की बात सुनकर भीष्म धर्मोपदेश करने को तैयार हो गये। भीष्म ने कहा—जिसका यश प्रतापी, क्षमाशील हो, जिन्होंने शास्त्रों के ज्ञान का रहस्य है, जो सतत् अतिथियों का आदर करता है, वही पाण्डव पुत्र युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करे। श्रीकृष्ण ने कहा—पितामह! युधिष्ठिर ने माननीय गुरुजनों एवं बन्धुजनों पर समरभूमि में बाणों द्वारा अनेक प्रहार किये हैं, इसलिए वह भय के शाप के डर से आपके पास नहीं आ रहे हैं।

---

1. शान्तिपर्व—राजधर्मानुशासनपर्व—अध्याय 54 / 17
2. तत्रैव, 54 / 30

भीष्म ने कहा—श्रीकृष्ण! जिस प्रकार दान, विद्याध्ययन, तप, ब्राह्मणों का धर्म है उसी प्रकार शत्रुओं का युद्ध में संहार करना भी क्षत्रिय धर्म है। जो पाप के मार्ग में चलना चाहे वह अपने बन्धुबान्धव ही क्यों न हो, उसको मारना भी क्षत्रिय धर्म है।

भीष्म पितामह की वार्ता सुनकर युधिष्ठिर नम्रभाव से भीष्म के समीप आकर उनके चरणों को पकड़ लिया। भीष्म जी ने स्नेहपूर्वक कहा—मैं स्वस्थ हूँ, निर्भय होकर प्रश्न करो।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा मैं श्रीकृष्ण धर्मब्राह्माणों को नमस्कार करके धर्मसम्बन्धी कुछ बाते बताता हूँ। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। राजा को चाहिए कि वह अपने उत्तम व्यवहार द्वारा देवताओं, देवी सम्पत्ति वालों और ब्राह्मणों को प्रसन्न रखे। इनकी प्रसन्नता से धर्म प्रसन्न होता है और धर्म की प्रसन्नता से सबको सुख—शान्ति मिलती है—

उत्थानेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर।

न ह्युत्थानमृते दैवं राज्ञामंर्थ प्रसादयेत्।।[1]

जीवन में पुरुषार्थ की बड़ी आवश्यकता है। बिना पौरुष के भाग्य फल नहीं देता। दैव और भाग्य निश्चय तो फल मिलने के पश्चात् होता है। पहले तो पौरुष का आश्रय लेना चाहिए। कार्य प्रारम्भ कर देने पर कोई बाधा आ जाय तो पूरी शक्ति के साथ बाधा का सामना करना चाहिए और कार्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

राजा के लिए एक बात बहुत ही आवश्यक है, उसे सर्वदा सत्य का आश्रय लेना चाहिए। बिना सत्य के आश्रय से उसका कोई विश्वास नहीं करता और परलोक में भी मारा जाता है। उसके अन्तरङ्ग मित्र भी शङ्कित रहते हैं और शत्रु भी उसकी असत्यता घोषित करके लाभ उठाते है। जो राजा वीर, धीर, सदाचारी, दानी, शान्त, दयालु, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और हँसमुख होता है, उसकी लक्ष्मी कभी भी नष्ट नहीं होती। राजा को बहुत सरल अथवा बहुत उग्र नहीं होना चाहिए। सरल का कही रोब—दाब नहीं रहता और उग्र से भयभीत रहते हैं, इससे असली बात का पता नहीं चलता? राजा का एकमात्र कर्तव्य है कि धर्म की रक्षा, धर्म की रक्षा में प्रजा की रक्षा है। प्रजा के सुख दुःख को अपना सुख—दुःख समझना चाहिए। राजा को चाहिए कि सर्वदा क्षमा न करे और सर्वदा दण्ड न दे, क्योंकि क्षमा करने से अपराधियों की संख्या बढ़ जाती है और सर्वदा दण्ड देने से प्रजा अप्रसन्न हो जाती है। अपने लोगों की परीक्षा समय—समय पर लेते रहना चाहिए। महान् से महान् विपत्ति के अवसरों पर भी राजा को घबराना नहीं चाहिए।

---

1. शान्तिपर्व—राजधर्मानुशासनपर्व—अध्याय 56 / 14

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! राजा को सदा परिश्रमी होना चाहिए। किसके साथ सन्धि करनी है या नहीं। इसका निर्णय स्वयं राजा को करना चाहिए। अपनी सेना के विरोधी चाहे कोई भी हो, उसका नाश कर देना चाहिए। इसी प्रकार राजाओं के अनेक धर्म है। इनकी स्थिति लोगों की रक्षा करने के लिए ही है।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भीष्मजी युधिष्ठिर को राज्य रक्षा के साधन बता रहे हैं कि राज्य रक्षा के लिए बुद्धिमान् एवं विश्वासपात्र मन्त्रियों को नियुक्त करना चाहिए। गुप्तचर रखना चाहिए, दूसरे देशों में सदस्य नियुक्त करना, प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध करना, अपने नगर का निरीक्षण करना, दुश्मनों से सचेत रहना, दुष्ट मनुष्यों को दूर करना और हमेशा ही उद्योगशील बने रहना ही राज्य की रक्षा के उपाय है।

देवताओं ने भी उद्योग को राजधर्म का आधार माना है। उद्योगहीन राजा शत्रुओं द्वारा परास्त होता है। प्रजा की रक्षा में राजा के प्राण जाना भी महान् धर्म है। राजा को राज्य की सुरक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए, जिसे प्रजा पर कोई संकट न आ पाये।

शान्तिपर्व के उपपर्व मोक्षधर्मपर्व के अध्याय एक सौ पिच्यासी और एक सौ अठ्ठासी में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है– भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! धर्म का स्वरूप बड़ा ही सूक्ष्म है। वह शारीरिक क्रियाओं से प्रारम्भ होकर अध्यात्म के सूक्ष्मतम भाग तक पहुँचता है। धर्म से अपना जीवन सुधरता है, जाति और समाज का कल्याण होता है। धर्म परमात्मा का स्वरूप है, धर्म से बढ़कर ओर कुछ नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् धर्म से पैदा, धर्म में स्थित और धर्म में ही समा जाता है।

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! शास्त्रों में अध्यात्म तत्त्व है, वह क्या है? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? बताइए।

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! सब प्राणियों का शरीर पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज–ये पाँच महाभूतों से उत्पन्न हुआ है। इन पञ्चमहाभूतों की सूक्ष्म तन्मात्रा से ही अन्तःकरण बना हुआ है, इन्हीं के द्वारा जीवात्मा को विषयों का ज्ञान होता है, इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण करती है, मन संकल्प और विकल्प करता है, बुद्धि ठीक–ठीक निर्णय लेती है। विशुद्ध बुद्धि से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का ज्ञान हो जाने पर शान्ति मिल जाती है।

सत्व, रज और तम–ये तीनों गुण बुद्धि को अपने वश में रखते है, बुद्धि मन और इन्दियों को वश में रखती है। बुद्धि न हो तो कोई काम नहीं हो सकता है। रजो गुण से युक्त बुद्धि

विषयों का ज्ञान, सत्वगुण से युक्त परमात्मा का ज्ञान और तमोगुण से युक्त बुद्धि मोह उत्पन्न करती है।

युधिष्ठिर ने पूछा–दादाजी! राजा लोग इस पृथ्वी पर कैसे व्यवहारपूर्वक विचरते हैं और आसक्ति के बन्धन से कैसे मुक्त हो जाते हैं?

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! राजा सगर ने इस विषय पर प्रश्न करने पर अरिष्टनेमि ने जवाब दिया कि जगत् में मोक्ष ही सबसे बड़ा सुख है। क्षीण मनुष्य को इसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, क्योंकि जो मनुष्य परिवार में प्रेमपूर्वक रहता है, वह मोक्ष पाने योग्य नहीं है। मोक्ष पाने के लिए वह व्यक्ति योग्य है जो समयानुसार पुत्रों को पैदा करके जब वह जवान हो जाये, तब उनका विवाह कर दे। जब यह मालूम हो जाये कि पुत्र दूसरे के सहयोग के बिना जीवन–यापन करने में समर्थ है, तब उनके अपनापन से मुक्त होकर सुखपूर्वक रहना चाहिए। पत्नी पुत्रवती होकर बूढ़ी हो जाय और वह प्रेमपूर्वक पुत्रों के साथ रह रही हो तो पत्नि का भी त्याग कर देना चाहिए। पुत्रों के संतान उत्पन्न हो या नहीं इस पर कोई विचार नहीं करना चाहिए। उनसे सम्पूर्ण प्रकार से मुक्त होकर एकान्त में रहना चाहिए। सच्चा पुरुषार्थ तो मोक्ष ही है। जो इनकी आसक्ति छोड़ देता है वही मोक्ष में प्रतिष्ठित होता है।

(x) अनुशासनपर्व

अनुशासनपर्व के उपपर्व दानधर्मपर्व के अध्याय एक, चौदह और उन्सठ में भीष्म की कथा इस प्रकार चित्रित होती है–वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से कहा–आपके द्वारा बताये गये अनेक प्रकार के उपदेशों को सुनकर भी मेरा मन शान्त नहीं हो रहा है, क्योंकि सम्पूर्ण दोष मेरा ही है, जो मैंने आपको इस अवस्था में पहुँचा दिया है। मुझे ऐसा उपदेश सुनाइए जिसे मैं पाप का भागी नहीं बन सकूँ।

भीष्म ने कहा–महाभाग! प्राचीनकाल में एक गोत्तमी नाम की वृद्धा थी। जिसके पुत्र को सर्प ने डसकर मार दिया। अर्जुनक नामक एक व्याध ने सर्प को पकड़कर गोत्तमी से कहा कि इस सर्प को किस प्रकार मॉंरू? गोत्तमी ने सर्प को मारने से इंकार कर दिया और कहा–इस सर्प का कोई दोष नहीं है, इसको तो काल की गति के अनुसार यमराज ने भेजा है। इतने में मृत्यु देवता यमराज आ पहुँचते हैं और कहते है कि मैंने ही इस बालक को डँसने के लिए सर्प को प्रेरित किया था। यह कथा सुनाने के बाद भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! तुमने या दुर्योधन ने कुछ नहीं किया है बल्कि सारा दोष काल का ही है यह सुनकर युधिष्ठिर का मन शान्त हो गया।

युधिष्ठिर ने पूछा—भीष्म पितामह! आपके मतानुसार सभी दानों में से सर्वश्रेष्ठ दान कौनसा है?

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर! मुसीबत के समय प्राणियों पर अनुग्रह करना, प्यासे को पानी पिलाना उत्तम दान है। जिसमें किसी भी प्रकार का अपनापन नहीं होना चाहिए। सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान ये सब पवित्रयुक्त दान है जो पापियों को भी तार देते है।[1] जरुरतमन्द को जरुरत पर सहायता देना, ब्राह्मणों को नमस्कार करना, प्रिय वचन बोलना आदि श्रेष्ठ दानों की श्रेणी में आते हैं।

प्राचीनकाल में क्षत्रिय ब्राह्मणों की धार्मिकपूर्वक सेवा करते थे। क्षत्रिय क्रोधित होकर भी ब्राह्मणों के सामने चले जाये तो उनका क्रोध भी शान्त हो जाता था।

अनुशासनपर्व के उपपर्व दानधर्मपर्व के अध्याय एक सौ अठावन—तरेसठ, चौंसठ और छयासठ में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है—वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से प्रश्न पूछा—कि आप उच्च कोटि का व्रत करने वाले ब्राह्मणों की पूजा करते हैं। आप कौनसे फल की प्राप्ति की इच्छा से उनको पूजते है? मुझे बताइए।

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर तुम्हें क्या बताऊँ, तुम तो सब जानते ही हो। लोक—कल्याण के लिए मुझसे प्रश्न करते हो तो करो और मैं उसका उत्तर भी हूँ। असली बात यह कि संसार में जितने प्रकार के धर्म है, वे सब श्रीकृष्ण से ही निकले है। श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण धर्मो के उत्पत्ति स्थान है। जीवन्मुक्ति और स्वरूप स्थिति श्रीकृष्ण की ही प्रतिक्षा करती है। श्रीकृष्ण ही निर्गुण ब्रह्म है, सगुण ब्रह्म है। श्रीकृष्ण ही ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान है जिन्होंने यज्ञ में तुम्हारे अतिथियों के चरण धोने का काम किया था। श्रीकृष्ण ही परमात्मा है। यही स्वार्थ, उपदेश, आदेश है। यही सब आदेशों और उपदेशों का सार है। इससे बढ़कर ओर कुछ नहीं है। तुम सब लोग श्रीकृष्ण की ही उपासना करे।

युधिष्ठिर ने कहा—भीष्म पितामह! बल, बुद्धि की उपेक्षा भाग्य ही श्रेष्ठ है। क्योंकि भाग्यहीन मनुष्य ताकतवर होते हुए भी धनवान् नहीं हो सकता और भाग्यवान दुर्बल होने पर भी बलवान् हो सकता है। इस प्रकार विद्या से मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाती तो कोई भी इसकी उपेक्षा नहीं करता। जिसकी मृत्यु का समय नहीं आया है, वह हजारों प्रहार से भी नहीं मरता, परन्तु काल आने पर तिनके से भी प्राण त्याग देता है।

---

1. अनुशासनपर्व—दानधर्मपर्व—अध्याय 59 / 5

भीष्म ने कहा—

ईहमानः समारम्भान् यदि नासादयेद् धनम्।
उग्रं तपः समारोहेन्न ह्यनुप्तं प्ररोहति।।[1]

बेटा! मनुष्य बहुत मेहनत करने पर भी धनोपार्जन नहीं कर पाता है तो उसको तपस्या करनी चाहिए, बीज बोये बिना फल की आशा नहीं करनी चाहिए। वृद्धजनों की सेवा से उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। इसलिए स्वयं दान दे। किसी की हिंसा न करे। कर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य को अच्छे कर्म से फल की आशा करनी चाहिए बुरे कर्म से नहीं।

जनमेजय ने पूछा—प्रियवर वैशम्पायन! राजा युधिष्ठिर ने भीष्म के द्वारा धर्मों के उपदेश सुनकर अपनी शंकाओं का हल कर लिया। धर्म व अर्थ विषयक सम्पूर्ण बातें सुनी। ओर कोई कार्य किया हो तो मुझे बताइए।

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय! धर्मों का उपदेश करके भीष्म जी शान्त हो गये। व्यासदेव के कहने पर भीष्म जी ने सबको जाने की आज्ञा दे दी। अब तुम लोग सूर्य उत्तरायण हो तब मेरे पास आ जाना। उस समय शरीर त्याग करके मैं अभीष्ट गति प्राप्त करुँगा। सब लोग चले गये। भीष्म जी आँखे बन्द करके पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन करने लगे।

अनुशासनपर्व के उपपर्व भीष्मस्वर्गारोहणपर्व के अध्याय एक सौ सड़सठ और अड़सठ में भीष्म की कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है—वैशम्पायन ने कहा—राजन्! सूर्य उत्तरायण हुआ, भीष्म पितामह के शरीर त्याग का समय आ गया। हस्तिनापुर से धृतराष्ट्र, पाण्डव, श्रीकृष्ण आदि सब लोग भीष्म पितामह के पास उपस्थित हुए। भीष्म पितामह के पास महर्षि वेदव्यास, देवर्षि नारद और असित् देवल पहले से ही बैठे थे। युधिष्ठिर ने सबको प्रणाम किया। उन्होंने भीष्म पितामह से अपने लिए आज्ञा माँगी। पितामह ने युधिष्ठिर का हाथ पकड़कर गंभीर स्वर से कहा—युधिष्ठिर! सूर्य उत्तरायण हो गया है। मन्त्रियों, मित्रों और गुरुजनों के साथ तुम्हें आया हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई—

अष्टपचाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा।।[2]

---

1. अनुशासनपर्व—दानधर्मपर्व—अध्याय 163/11
2. अनुशासनपर्व—भीष्मस्वर्गारोहणपर्व—अध्याय 167/27

इन तीखे बाणों पर पड़े आज अठ्ठावन दिन बीत गये किन्तु ये दिन मेरे लिए सौ वर्षों के समान बीते है। माघ महिने का शुक्ल पक्ष है, अब मुझे शरीर त्याग–करना चाहिए। इसके बाद भीष्म पितामह ने धृतराष्ट्र को बुलाकर कहा–महाराज! तुमने धर्म और अर्थ के तत्त्व को समझा है। शोक करने का कहीं भी कारण नहीं है। लोग अपने अज्ञान से ही सुखी–दुःखी होते है होने वाली बात तो होती है, यह न हो, यह ऐसा हो। ऐसा पूर्व संकल्प करके अज्ञानी लोग शोक और मोह में संतप्त होते हैं। पाण्डव तुम्हारे पुत्र हैं, वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगें। तुम्हारे सौ पुत्र दुरात्मा थे, तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते थे। भगवान् से विमुख थे, इसलिए उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए।

भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण से कहा–प्रभो! तुम सम्पूर्ण देवताओं के एक मात्र अधिपति पुरुषोत्तम हो, मैं सच्चे हृदय से तुम्हें नमस्कार करता हूँ। अब मुझे आज्ञा दो कि मैं शरीर–त्याग करुँ। श्रीकृष्ण ने आज्ञा दे दी। पितामह ने अपनी इन्द्रियों, मनोवृत्तियों और बुद्धि को समेटकर श्रीकृष्ण की स्तुति प्रारम्भ की। उसी समय ऋषि महर्षि उन्हें घेरकर बैठे हुए थे।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भीष्म चुप हो गये। देवता उनके शरीर पर पुष्पवर्षा करने लगे। लोगों ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि भीष्म के शरीर का प्राण ज्यों–ज्यों ऊपर उठता गया, त्यों–त्यों उनके शरीर के बाण निकलते गये और घाव भरते गये। ओरो की तो बात ही क्या स्वयं श्रीकृष्ण, वेदव्यास और युधिष्ठिर आश्चर्यचकित हो गये। भीष्म भगवान् से एक हो गये। आकाश में जय–जयकार के नारे लगने लगे।

पाण्डवों ने चिता तैयार की। भीष्म का दाहसंस्कार किया गया। सब लोगों ने गंगाजल से भीष्म पितामह को जलाञ्जलि दी। उस समय भगवती भागीरथी मूर्तिमान् होकर जल से बाहर निकल आयी। वे शोक से आकुल होकर रो–रोकर भीष्म का गुणगान् करने लगी। वे कहने लगी–मेरा पुत्र भीष्म सम्पूर्ण पृथ्वी में एक ही महापुरुष था। मेरा वही पराक्रमी पुत्र शिखण्डी के हाथों मारा गया, बड़े दुःख की बात है। उनके वियोग में मेरा हृदय फट नहीं जाता। मेरा हृदय पत्थर का बना है।

भगवान् श्रीकृष्ण और वेदव्यास उनके पास गये और कहा–

समाश्वसिहि भद्रे त्वं मा शुचः शुभदर्शने।।
गतः स परमं लोकं तव पुत्रो न संशयः।[1]

1. अनुशासनपर्व–भीष्मस्वर्गारोहणपर्व–अध्याय 168 / 30

देवि! तुम शोक मत करो, तुम्हारे पुत्र भीष्म ने उत्तम गति प्राप्त की है। वे आठ वसुओं में से एक वसु थे। वे लोक के महान् कल्याणकारी है, उन्हें शिखण्डी ने नहीं अर्जुन ने मारा है। उन्होंने अपनी इच्छा से ही शरीर–त्याग किया है। उनके समझाने से भागीरथी का शोक बहुत कुछ दूर हो गया और अपने लोक में चली गयी।

वैशम्पायन ने कहा–जनमेजय! भीष्म की मृत्यु के बाद पाण्डवों ने कुछ समय वही व्यतीत किया। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र सहित भीष्म–कर्ण आदि का शास्त्रविधि द्वारा श्राद करके ब्राह्मणों को दान देकर युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को आगे करके सब लोग हस्तिनापुर चले आये।

यह सृष्टि भगवान् का लीला–विलास है। इसमें उनकी ओर से समय–समय पर धर्म की रक्षा–दीक्षा और आदर्श के लिए अनेकों महापुरुष आया करते हैं। उनमें भीष्म प्रधान है। उनके चरित्र से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण हमारा हृदय शुद्ध करें कि हम उस महापुरुष का चरित्र–गान करके उनकी ही जैसी भगवान् की अविचल भक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा और उत्तम ज्ञान प्राप्त कर सकें। भीष्म का जीवन पूर्ण है। जहाँ पूर्णता है, वहाँ भगवान् है। जहाँ भगवान् है वही पूर्णता है। भीष्म का जीवन भगवन्मय है और भगवान् श्रीकृष्ण भीष्म के जीवन में ओतप्रोत है। भीष्म के जीवन का स्मरण ही भगवान् का स्मरण है।

चूँकिं महाकाव्य में हरिनारायण दीक्षितजी ने महाभारत में उपलब्ध भीष्म से सम्बन्धित समस्त कथाओं को लेते हुए महाकाव्य की रचना की है इसलिए इन अध्यायों के अन्तर्गत हमने महाभारत में उपलब्ध भीष्म से सम्बन्धित सम्पूर्ण कथा का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया है।

(ii) सर्गानुसार भीष्मचरितं का संक्षिप्त कथानक

'जननीवियोग' नामक प्रथम सर्ग के इक्यावन श्लोकों के अन्तर्गत मङ्गलाचरण में भगवान् शिव, सरस्वती, गणेश जी की स्तुति के उपरान्त भारतदेश का वर्णन है। हस्तिनापुर की तुलना द्वापर से की गई है। हस्तिनापुर के राजा शान्तनु का वर्णन और अन्त में करुण रस की अभिव्यक्ति के साथ राजा शान्तनु द्वारा अपने पुत्र को देखते हुए किसी प्रकार जीवन को धारण करने का वर्णन है।

'विद्याप्राप्ति' नामक द्वितीय सर्ग में इक्यावन पद्य है। इसमें राजा शान्तनु अपनी पत्नी के मृतशरीर का अन्तिम संस्कार करने के उपरान्त अपने पुत्र के पालन–पोषणार्थ ब्राह्मणकुल में उत्पन्न तथा राजपरिवार का कल्याण चाहने वाली स्त्री को नियुक्त करते हैं। शुभमुहूर्त में पुत्र का नामकरण संस्कार होता है तथा शिशु का नाम देवव्रत रखा जाता है। विद्यारम्भ का समय आने पर विविध विद्वानों को बुलाकर राजा शान्तनु देवव्रत की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। सर्ग के अन्त में राजकुमार देवव्रत के दीक्षान्त समारोह के आयोजन तथा अपने पुत्र के विषय में गुरुजनों के मांगलिक विचार सुनने के साथ ही सर्ग सम्पन्न होता है।

'दीक्षान्त समारोह' नामक तृतीय सर्ग में इक्यावन पद्यों के अन्तर्गत कवि ने मनोरम सभाभवन में राजकुमार देवव्रत के दीक्षान्त समारोह का वर्णन किया है। दीक्षान्त समारोह का प्रारम्भ मङ्गलाचरण, सरस्वती वन्दनादि के द्वारा होता है। समस्त आचार्यों के गुरु सर्वाचार्य दीक्षान्त उपदेश सुनाते है। तदनन्तर प्रधानामात्य द्वारा सभी अतिथियों को प्रीतिभोज में आमन्त्रित करने के साथ ही सर्ग सम्पन्न होता है।

'विशिष्टगुरुप्राप्ति' नामक चतुर्थ सर्ग में कवि ने बावन पद्यों के अन्तर्गत राजकुमार देवव्रत के गुरु आचार्य देवल तथा राजा शान्तनु का वार्तालाप, विशिष्ट धनुर्विधा के अध्ययनार्थ मुनि श्री परशुराम के समीप देवव्रत का गमन, महेन्द्र पर्वत वर्णन, परशुरामदर्शन तथा परस्पर संवाद वर्णित है।

'दिव्यास्त्रप्राप्ति' नामक पञ्चम सर्ग में बावन श्लोकों के अन्तर्गत देवव्रत द्वारा परशुराम की सेवा, परशुराम द्वारा धनुर्वेद, दिव्यास्त्रों का अध्यापन, श्रीपरशुराम द्वारा देवव्रत को उपदेश तथा देवव्रत के हस्तिनापुर लौटने का प्रसंग है।

'धनुर्विद्याप्राप्ति' नामक षष्ठ सर्ग में उन्हत्तर श्लोक है। इस सर्ग में महाराज शान्तनु के समीप गुप्तचर राजकुमार देवव्रत के आगमन की सूचना प्राप्त होने पर राजकुमार के स्वागत हेतु

हस्तिनापुर को सजाया जाता है। तदनन्तर राजकुमार का अभिनन्दन, उनकी शोभायात्रा, नागरिकों द्वारा उनके दर्शन की उत्सुकता, शान्तनु–देवव्रत का मिलन तथा राजा द्वारा देवव्रत को युवराज पद पर विभूषित करने का चित्रण है।

'वन–विहार' नामक सप्तम सर्ग में इकसठ श्लोक है। इस सर्ग में राजकुमार देवव्रत को युवराज बनाने के उपरान्त अपनी मृत पत्नी की स्मृति में दुःखी शान्तनु वन विहार करने जाते हैं, वहाँ फैली सुगन्ध का अनुसरण करते हुए उनको सत्यवती का दर्शन होता है। कवि ने उन दोनों की परस्पर प्रीति का वर्णन कर शान्तनु द्वारा सत्यवती के पिता से उसे पत्नी रूप में वरण का प्रस्ताव रखना तथा सत्यवती के पिता द्वारा शर्त रख दिये जाने पर दुःखी शान्तनु का राजधानी लौटना वर्णित हैं।

'वियोगवर्णन' नामक अष्टम सर्ग में चौवालीस श्लोक हैं। इसके अन्तर्गत क्रमशः वर्षा ऋतु का वर्णन, शान्तनु का सत्यवती के वियोग में रुग्णावस्था को प्राप्त होना, राजवैद्य द्वारा उपचार, देवव्रत द्वारा गुप्तचर के माध्यम से राजा शान्तनु तथा सत्यवती के प्रणय की जानकारी प्राप्त होना, तदनन्तर देवव्रत द्वारा चिन्तन का वर्णन है।

'भीष्मप्रतिज्ञावर्णन' नामक नवम सर्ग के अट्ठावन श्लोकों में राजा शान्तनु का विरह वर्णन, सत्यवती की वेदना का वर्णन, अपने पिता के प्रति सत्यवती का आक्रोश, उसके पिता दाशराज (मछुवारों का मुखिया) का उद्बोधन, दोनों में परस्पर संवाद, देवव्रत का उन लोगों के समीप जाना, दाशराज के साथ देवव्रत का वार्तालाप, देवव्रत द्वारा युवराज पद का त्याग, दाशराज की सन्तुष्टि हेतु देवव्रत की भीष्मप्रतिज्ञा, दाशराज को सन्तुष्ट कर सत्यवती को अपने साथ राजधानी ले जाने का वर्णन है।

'विमातृलाभवर्णन' नामक दशम सर्ग में सैंतालीस श्लोकों के अन्तर्गत देवव्रत की भीष्मप्रतिज्ञा से शान्तनु की चिन्ता, शान्तनु–देवव्रत संवाद, सत्यवती–शान्तनु का विवाह तथा उनके सुरतव्यापार का प्रसंग चित्रण है।

'अनुजद्वयलाभवर्णन' नामक एकादश सर्ग में चालीस श्लोकों में सत्यवती के गर्भ से प्रथम राजकुमार चित्राङ्गद का जन्म, उसके नामकरण संस्कार, उसकी शिक्षा, भीष्म द्वारा उसे अपना युवराज पद प्रदान करना, सत्यवती के दूसरे राजकुमार विचित्रवीर्य का जन्म तथा उसकी शिक्षा–दीक्षा का निरूपण है।

'विचित्रवीर्यविवाहवर्णन' नामक बाहरवें सर्ग में सत्तावन श्लोक है। जिसके अन्तर्गत शान्तनु की जिजीविषा के अवसान का वर्णन, शान्तनु–भीष्म संवाद, शान्तनु का देहावसान, सत्यवती–भीष्म संवाद, चित्राङ्गद राज्यवर्णन, चित्राङ्गद–गन्धर्व युद्ध में चित्राङ्गद की मृत्यु का वर्णन, विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक तथा काशीनरेश की पुत्रियों के साथ उसके विवाह का वर्णन है।

'पाण्डवकौरवकलहकारणवर्णन' नामक त्रयोदश सर्ग की कथावस्तु चौरासी श्लोकों में निबद्ध है जिसमें क्रमशः विचित्रवीर्य की क्षयरोग से मृत्यु का, सत्यवती–भीष्म संवाद, धृतराष्ट्र–पाण्डु–विदुर के जन्म का वर्णन, राज्याभिषेक, युधिष्ठिर–भीम–अर्जुन–नकुल–सहदेव–दुर्योधनादि के जन्म का वर्णन, पाण्डुमृत्यु, युधिष्ठिर को युवराज पद की प्राप्ति, दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या तथा कपटाचरण, द्रौपदी पाण्डव विवाह, राज्यविभाजन, कपटद्यूतक्रीड़ा, कौरवों द्वारा द्रौपदी का अपमान, भीम की प्रतिज्ञा, पाण्डवों का वनवास तथा कुरुक्षेत्र में युद्ध के आरम्भ का वृत्तान्त है।

'भीष्मशरशय्यावर्णन' नामक चतुर्दश सर्ग में इकसठ श्लोकों के अन्तर्गत भीष्म द्वारा कौरवों का सेनापति बनना, युधिष्ठिर की चिन्ता, भीष्म–युधिष्ठिर का संवाद, भीष्म का चिन्तन, शौर्य पराक्रम तथा शरशय्या में शयन का दृश्य है।

'भारतयुद्धवर्णन' नामक पञ्चदश सर्ग में इक्यावन श्लोक है। इसका कथानक इस प्रकार है– द्रोणाचार्य द्वारा कौरवों का सेनापति बनना, पाण्डवों से युद्ध, उनकी मृत्यु के पश्चात् कर्ण द्वारा कौरवों की सेना का नेतृत्व, उसका पराक्रम, उसकी मृत्यु, दुर्योधन का विषाद, कृपाचार्य द्वारा दुर्योधन के उपदेश, शल्य का सेनापति बनना, पाण्डवों से युद्ध तथा उसकी मृत्यु, दुर्योधन का सरोवर में भीम के साथ महायुद्ध तथा मृत्यु। तदुपरान्त युधिष्ठिर को राज्यप्राप्ति का उल्लेख है।

'खेदनिरासवर्णन' नामक षोडश सर्ग के बावन श्लोकों में पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण का भीष्म के समीप गमन, श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म के शरीर की वेदना का हरण, श्रीकृष्ण–भीष्म संवाद, भीष्म का श्रीकृष्ण के प्रति अपराध याचना, श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म के चित्त की व्याकुलता को शान्त करना तथा भीष्म के उपदेश का वर्णन है।

'राजधर्मवर्णन' नामक सप्तदश सर्ग में बावन श्लोक है। इसमें युधिष्ठिर द्वारा भीष्मपितामह से राजधर्म के विषय में पूछे गये प्रश्न तथा भीष्म द्वारा राजधर्म का उपदेश ही इस सर्ग का वर्ण्य विषय है।

'प्रजाधर्मवर्णन' नामक अष्टादश सर्ग में तिरेपन श्लोक हैं। इसमें भीष्म द्वारा युधिष्ठिर की प्रशंसा, युधिष्ठिर की प्रजाधर्म के प्रति जिज्ञासा, भीष्म का प्रजाधर्म के प्रति उपदेश का चित्रण है।

'मोक्षधर्मवर्णन' नामक एकोनविंशति सर्ग में तिरेपन श्लोकों के अन्तर्गत मोक्षधर्म के विषय में युधिष्ठिर की जानने की इच्छा, भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश, भीष्म की श्रीकृष्ण के प्रति अन्तिम अभिलाषा, युधिष्ठिर का सभी के साथ राजधानी प्रत्यागमन का वर्णन किया गया है।

'महाप्रयाणवर्णन' नामक विंशति सर्ग में चौवन श्लोक हैं। जिसमें सूर्य के उत्तरायण में प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण का बन्धु बान्धवों सहित युधिष्ठिर को लेकर भीष्मपितामह के समीप गमन, भीष्म द्वारा उन्हें आशीर्वाद, भीष्म का धृतराष्ट्र को उपदेश, भीष्म की श्रीकृष्ण के प्रति प्रार्थना, श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म को सान्त्वना, भीष्म का महाप्रयाण तथा भीष्म के अन्तिम संस्कार के साथ ही महाकाव्य की इतिश्री होती है।

♦♦♦♦

अध्याय तृतीय

(i) मूलकथा से प्रस्तुत महाकाव्य में परिवर्तन एवं कविकल्पना

(ii) महाभारतीय भीष्मकथा पर आधृत ग्रन्थों का विवरण

(i) मूलकथा से प्रस्तुत महाकाव्य में परिवर्तन एवं कवि कल्पना

रामायण और महाभारत सहस्राब्दियों से रचनाधर्मियों के उपजीव्य ग्रन्थ रहे हैं। महाभारत से उपजीव्य लेकर महाकवि ने भीष्मचरितम् महाकाव्य की रचना की हैं। महाकवि ने अपने महाकाव्य में महाभारत युद्ध के समस्त घटनाक्रम को बीस सर्गों में संक्षिप्त रूप से उपन्यस्त किया है। महाकवि के महाकाव्य को हम संक्षिप्त महाभारत का अतिलघुरूप कह सकते है। सम्पूर्ण महाभारत के अध्ययन के पश्चात् हम देखते है कि महाकवि ने महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध भीष्मकथा को अपने नित्यनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से परिवर्तित किया है और यह परिवर्तन षष्ठ सर्ग तक अनवरत है।

आदिपर्व में राजा शान्तनु गङ्गाजी को शर्तानुसार अपनी राजधानी लेकर आते है और गङ्गाजी क्रमशः अपने सातों बच्चों को एक–एक कर जल में विसर्जित कर देती है। जब गङ्गाजी आठवें पुत्र को जल में फेंकने जा रही है तब राजा शान्तनु के मना करने पर वह रुक जाती है और बालक को विद्याध्ययन के लिए अपने साथ लेकर अन्तर्ध्यान हो जाती है। गङ्गाजी राजा शान्तनु से कहती है कि विद्याध्ययन के पश्चात् पुत्र पुनः आपके पास वापस आ जायेगा। जबकि महाकवि ने अपने महाकाव्य के प्रारम्भ में इतना उल्लेख किया है कि गङ्गाजी ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया है–

इतः परं नाथ! भवात्यनीश्वरी
सह त्वया वस्तुमहं तव प्रिया।
अतो गृहाणात्भजभात्मवल्लभं
वियोगवेला समुपागताद्य नौ।।[1]

पुत्र को जन्म देने के पश्चात् राजा शान्तनु को पुत्र सौंपकर गंगा कहती है कि अब बिछुड़ने का समय आ गया है।

इसप्रकार राजा शान्तनु गङ्गा की बात सुनकर राजा शान्तनु और गङ्गा के मध्य संवाद के पश्चात् गङ्गा की मृत्यु को कवि ने चित्रित किया है जबकि महाभारत में इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता है।

1. भीष्मचरितम्–1 / 36

दूसरे सर्ग में गुरुजनों द्वारा निरन्तर समझाए जाने पर राजा शान्तनु ने अपनी सहचरी गङ्गा का अन्तिम संस्कार किया। इसके पश्चात् राजा शान्तनु ने पुत्रजन्म पर लघु उत्सव का आयोजन किया। राजा शान्तनु अपने पुत्र के पालन–पोषण के लिए कुछ महिलाओं को नियुक्त कर स्वयं भी समय–समय पर शिशु की देखभाल करते थे। ज्योतिषियों द्वारा बताए जाने पर शुभ मुहूर्त पर पुत्र का नामकरण संस्कार कर ''देवव्रत'' नाम रख दिया। वह बालक सबको आनन्दित करता हुआ पाँच वर्ष का हो गया। राजा शान्तनु ने विद्याध्ययन का उचित समय समझकर भारत के कोने–कोने से विद्वानों को बुलाया और शुभ मुहूर्त पर यह कहते हुए गुरुजनों को सौंप कर कहा यह बालक मातृ–सुख से वञ्चित है मेरे वंश का सहारा तथा मेरे प्राणों जैसा है–

न बलिनष्छलिनो न न योगिनो
न विबुधा न बुधा न तपस्विनः।
परिभवेयुरिमं च यथात्मजं
गुरुगणैर्हि तथा परिपाठ्यताम्।।[1]

राजा शान्तनु की बात सुनकर गुरुजनों ने प्रसन्न होकर कहा हम लोग बालक को पढ़ाने में कंजूसी और दुकानदारी नहीं करेगें। गुरुजनों ने राजकुमार को निगम, आगम, शस्त्रास्त्र संचालन, राजनीति, मानवता, शालीनता, रणनीति, लोकप्रिय सुनीति, न्यायपूर्ण प्रजाशासन पद्धति, माता–पिता के प्रति आलस्यरहित भक्तिभाव, युद्धकौशल, इन्द्रिय–संयम आदि की शिक्षाएं प्रदान की। राजकुमार विद्यागुणों की शोभा से प्रतिदिन बढ़ने लगा। राजकुमार के गुणों का विकास सुनकर राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और अध्ययन की समाप्ति समझकर दीक्षान्त–महोत्सव का सम्पूर्ण प्रबन्ध स्वयं राजा शान्तनु ने किया। जबकि महाभारत में गंगा शान्तनु से कहती है कि मेरे आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र यही है इसने सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन कर लिया है। इसने महर्षि वशिष्ठ, गुरु शुक्राचार्य एवं गुरु बृहस्पति से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है–

यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्व पुरा मय्यविन्दथाः।
स चायं पुरुषव्याघ्र सर्वास्त्रविदनुत्तम।।
गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम्।
आदाय पुरुष व्याघ्र मयस्वैनं गृहं विभो।

1. भीष्मचरितम्–2/31

वेदानधिजगे साङ्गान् वसिष्ठो देष वीर्यवान्।

कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि।।[1]

तत्पश्चात् **तीसरे सर्ग** में राजकुमार देवव्रत का दीक्षान्त समारोह प्रारम्भ होता है जिसमें राजकुमार देवव्रत रेशमी वस्त्रों से सुशोभित हो रहे थे। मनोरम संगीत की धुन सभासदों को आनन्दित कर रही थी। राजा शान्तनु ने कहा गुरुजन हमेशा ही पूजनीय होते है। यदि गुरुजन न हो तो सन्मार्ग दुर्लभ हो जाय। जिस प्रकार सूर्य बाहरी अन्धकार को दूर करता है, उसी प्रकार गुरु मन के अन्धकार को। माता–पिता तो केवल जन्म देते है, उसे अच्छे बुरे की सही जानकारी तो गुरु ही देता है। राजा शान्तनु ने सभी गुरुजनों में अग्रगण्य गुरु सर्वाचार्य से देवव्रत के हित सम्बन्धित उपदेश के लिए प्रार्थना की। गुरु सर्वाचार्य ने उपदेश करना प्रारम्भ किया–देवव्रत! सत्य के आचरण को ईश्वर की भक्ति के समान समझना, क्योंकि सत्य ईश्वर में रहता है और ईश्वर सत्य में–

अधीताध्ययनं कार्य

सावधानतया सदा।

शस्त्रं शास्त्रमनभ्यासात्

समयेनोपतिष्ठति।।[2]

इस प्रकार दीक्षान्त–समारोह समाप्ति पर राजा शान्तनु के प्रधानामात्य ने प्रीतिभोज में सम्मिलित होने के लिए सबसे प्रार्थना की। इस प्रकार गुरु की महता का प्रतिपादन महाभारत में उपलब्ध नहीं होता है किन्तु दीक्षितजी ने अपनी मौलिक कल्पना से सर्ग में गुरु की महता को निरूपित किया है। गुरु की महता हमारी संस्कृति में सदियों पुरानी है, उसी को कवि ने पुनः प्रतिस्थापित किया है।

चौथे सर्ग में राजकुमार देवव्रत अपनी सम्पूर्ण शिक्षा पूर्ण करके पिता राजा शान्तनु के साथ आनन्द से रहने लगे। देवव्रत बारह वर्षों में सम्पूर्ण विद्याओं को सीखकर अतीव यशस्वी हो गए। ऐसे पुत्र को पाकर राजा शान्तनु सम्पूर्ण चिन्ताओं से मुक्त होकर खुशी से रहने लगे। कुछ दिनों पश्चात् विद्वान् श्री देवल रात्रि प्रारम्भ होते ही राजा शान्तनु के पास आए। राजा शान्तनु ने उन्हें प्रणाम कर आदरपूर्वक आसन पर बैठाया। श्रीदेवल ने कहना प्रारम्भ किया कि मैं आपके पुत्र (देवव्रत) को अपने पुत्र के समान समझता हूँ, हमेशा ही कल्याण चाहता हूँ और इसी कारण से मैं

1. महाभारत–आदिपर्व–सभापर्व–100/33–35
2. भीष्मचरितम्–3/33

आपके पास आया हूँ। आप मेरी बात शान्तचित होकर सुनिए आपका पुत्र धुनर्विद्या प्राप्त करके प्रसिद्ध धनुर्धर हो गया है। इस समय उसको कोई भी धनुर्धर योद्धा जीत नहीं सकता। फिर भी मैं समझता हूँ, वह धनुर्वेद में पूर्णतया पारङ्गत नहीं हो पाया है। मेरी दृष्टि में मुनि परशुरामजी के समान इस संसार में कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है। इसलिए मेरा सुझाव है कि आप राजकुमार को परशुरामजी के पास भेज दीजिए–

लभास्ति विद्या गुरुसेवयाऽत्र
धनेन किञ्चितत्प्रतिषिक्षया वा।
न दृयते कोऽपि विधिस्तुरीयः
किन्त्वादिमः श्रेष्ठविधिर्मतोऽस्ति।।[1]

श्रीदेवल द्वारा ऐसा कहने पर राजा शान्तनु ने देवव्रत को परशुरामजी के पास भेजने का निश्चय किया और देवव्रत भी तैयार हो गया। देवव्रत ने पर्णशाला (कुटिया) के समीप पेड़ के नीचे धनुष धारण किए हुए भगवान शंकर के समान तेजस्वी तपस्वी की वेशभूषा को देखकर परशुरामजी समझकर प्रणाम किया और कहा आप मुझे धनुर्विद्या में पारङ्गत कर दीजिए। ऐसा कहकर परशुरामजी के चरणों में सिर रख दिया। मुझे अपना शिष्य बना लिजिए, आपकी आज्ञा का सदैव पालन करुँगा और कभी भी आपकी अवहेलना नहीं करुँगा। राजकुमार के भक्तिभाव वचनों को सुनकर अतीव प्रसन्न हुए मुनि परशुरामजी ने उनके सिर पर अपना हाथ रखकर कहा बेटा! चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें धनुर्विद्या पढ़ा दूगाँ। इस प्रकार राजकुमार को विशिष्ट गुरु परशुरामजी की प्राप्ति होती है। जबकि महाभारत में विशिष्ट गुरु की प्राप्ति व शिक्षा प्राप्ति का इस प्रकार से विवरण उपलब्ध नहीं होता है।

पाँचवें सर्ग में महाकवि ने राजकुमार देवव्रत को विशिष्ट गुरु परशुरामजी के समीप सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों की प्राप्ति का सुन्दर वर्णन विस्तृत रूप से किया है जिसमें गणेशजी की पूजा अर्चना करके सर्वप्रथम गणेशास्त्र की शिक्षा परशुरामजी ने देवव्रत को प्रदान की। तत्पश्चात् शक्तिबाण, वारुणास्त्र, समीरणास्त्र, सर्पास्त्र, मयूरास्त्र, निशास्त्र, ऐन्दवास्त्र, आग्नेयास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, वैष्णवास्त्र, यमास्त्र, रौद्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि[2] अस्त्रों की शिक्षा प्रदान की–

---

1. भीष्मचरितम –4/20
2. तत्रैव–5/3–21

अगस्त्यनामा कुशिकात्मजस्तथा

गुरुर्वसिष्ठो वसुधाकुटुम्बिने।

प्रियाय रामाय ददुः शरांश्च यान्

अदाद्गुरुस्तानपि राजसूनवे।।[1]

सम्पूर्ण दीव्यास्त्रों की शिक्षा पाकर राजकुमार देवव्रत प्रसन्नता के सागर में डूब गया। अपने शिष्य देवव्रत की पढ़ने की प्रवीणता को देखकर गुरु परशुरामजी का मन अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजकुमार ने सम्पूर्ण विद्याएँ प्राप्त कर गुरु परशुरामजी से गुरुदक्षिणा के लिए कहा लेकिन परशुरामजी ने कहा कि तुमने यहाँ रहकर जो मेरी सेवा की है, उससे बढ़कर कोई गुरुदक्षिणा नहीं है। जबकि महाभारत में इस प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा व गुरुदक्षिणा का कोई उल्लेख नहीं है। कवि ने अपनी कविकल्पना शक्ति से यह परिवर्तन किया है।

छठें सर्ग में महाकवि ने राजकुमार देवव्रत द्वारा सम्पूर्ण विद्याएँ ग्रहण कर अपनी राजधानी हस्तिनापुर आगमन पर स्वागत–सत्कार का सुन्दर वर्णन किया है। गुप्तचर द्वारा देवव्रत के आगमन का समाचार सुनकर राजा शान्तनु ने पुत्र देवव्रत के स्वागत के लिए सम्पूर्ण हस्तिनापुर की सजावट करवायी। राजकुमार देवव्रत आ रहे है ऐसा सुनकर सभी जातियों के स्त्री–पुरुष उन्हें देखने के लिए उत्सुक हो गये। नगर में ऐसा कोई भी स्त्री–पुरुष नहीं बचा जिसने राजकुमार को न देखा हो। महाकवि ने यहाँ पर राजकुमार देवव्रत के स्वागत–सत्कार को देखने के लिए लालायित स्त्रियों के श्रृंगार का विचित्र वर्णन किया है कि स्त्रियों ने जल्दीबाजी में काजल की जगह लिपस्टि, करधनी को गले में, फूलों की माला को गले में बाँधना, होठों में काजल लगाना तथा कन्याओं ने अपने माता–पिता और भाईयों की उपेक्षा कर देवव्रत को देखने के लिए निकल पड़ी। राजकुमार देवव्रत को देखने के लिए छत्तों पर चढ़ी हुई महिलाओं के मुखड़े ऐसे लग रहे थे, मानों स्वर्गलोक से निकली हुई अप्सराएँ हों।

नरोऽपि नो कोऽपि मुदं न यो गतो

न सा मुदासीद् वदने न यागता।

न तन्मुखं यन्न कुमारकीर्त्तकं

न कीर्त्तनं तच्च यशस्करं न यत्।।[2]

कवि ने उल्लेख किया है कि "पिता के पुण्यबल के बिना पुत्र परिश्रम करके भी उन्नति नहीं कर सकता।" स्वागत के पश्चात् राजा शान्तनु अपने पुत्र को युवराज बनाने की घोषणा कर

---

1. भीष्मचरितम् –5/22
2. तत्रैव–6/48

सभा में उपस्थित समस्त लोगों को भोजन के लिए निमन्त्रित कर सभा को विसर्जित कर दिया है। जबकि महाभारतकार ने इस प्रकार की किसी भी घटना को उपनिबद्ध नहीं किया है।

सातवें सर्ग में महाकवि ने महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध भीष्मकथा का यथावत् वर्णन किया है। राजा शान्तनु देवव्रत को युवराज पद पर अभिषिक्त कर अपनी प्रियतमा गङ्गा की याद में अकेले ही वनविहार के लिए यमुना नदी के तट पर जा पहुँचे वहाँ पर उत्तम खुशबू पाकर सत्यवती से मिलन होता है। राजा शान्तनु सत्यवती से विवाह प्रस्ताव रखते हैं, परन्तु सत्यवती ने राजा शान्तनु से कहा आप मेरे पिता से बात कीजिए। राजा शान्तनु सत्यवती के पिता (मछुवारा) से सत्यवती को धर्मपत्नी बनाने के लिए कहते है। लेकिन मछुआरे ने शर्त रखी कि सत्यवती से उत्पन्न पुत्र ही राजा बनेगा। लेकिन शान्तनु ने अपने पुत्र देवव्रत के प्रेम के वशीभूत होने के कारण यह शर्त स्वीकार नहीं की। राजा शान्तनु अपनी राजधानी लौट आए।

आठवें सर्ग की कथा महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध भीष्म कथा के समान है। कवि ने उसे संक्षेप में प्रस्तुत किया है। राजा शान्तनु सुन्दरी कन्या को भूल नहीं सकें। उसकी याद में उनकी दशा शोचनीय हो गयी। देवव्रत ने अपने पिता के दुःख का कारण जानने की बहुत कोशिश की, परन्तु कोई सफलता नहीं मिली। देवव्रत को गुप्तचर के माध्यम से राजा शान्तनु के दुःख का सम्पूर्ण वृतान्त प्राप्त होता है। देवव्रत अपने पिता की खुशी के लिए युवराज पद त्यागने की सोचकर सत्यवती के पिता दाशराज के पास शीघ्र ही चल दिए।

नवें सर्ग के प्रारम्भ में सत्यवती विवाह के सन्दर्भ में महाभारत में पिता–पुत्री के मध्य हुए किसी भी विवाद का उल्लेख व्यासजी ने नहीं किया है जबकि प्रस्तुत महाकाव्य में सत्यवती के विवाह को लेकर पिता–पुत्री के बीच हुए विवाद को कवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से अनुस्यूत किया है। सत्यवती ने अपने पिता से कहा–

विहाय कार्पण्यपणं निरर्थकं
प्रयच्छ मां शान्तनवे दयालवे।
न चेत्तदा तात! विलोकयिष्यसि
दिनैस्तु कैश्चित् स्वसुतां न जीविताम्।।[1]

उसी समय पिता–पुत्री के विवाद के मध्य राजकुमार देवव्रत अपने पिता के सुख के लिए आ पहुँचते है। देवव्रत द्वारा भीष्मप्रतिज्ञा करने पर ब्रह्माजी ने वरदान दिया कि तुम निःसन्तान ही दिव्यलोक के सम्पूर्ण सुख प्राप्त करोगे। ब्रह्माजी के वरदान का उल्लेख महाभारत में नहीं मिलता

1. भीष्मचरितम्–9/37

है। दाशराज ने देवव्रत से क्षमा माँगते हुए अपनी बेटी को ले जाने की अनुमति दी। सत्यवती ने क्रोधित होकर पिता दाशराज से कहा में भगवान (ब्रह्माजी) से प्रार्थना करुँगी कि मुझे तुम्हारी पुत्री किसी भी जन्म में न बनाए। देवव्रत दाशराज को आभूषण देकर सत्यवती को लेकर राजधानी लौट गये। भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण देवव्रत ''भीष्म'' कहलाए।

दसवें सर्ग में देवव्रत (भीष्म) प्रतिज्ञापूर्वक सत्यवती को लाकर अपने पिता को सौंप देते हैं। महाभारत में पिता–पुत्र के कर्तव्यों का उल्लेख व्यासजी ने नहीं किया है जबकि प्रस्तुत महाकाव्य में पिता–पुत्र के कर्तव्यों का उल्लेख महाकवि ने अपनी मौलिक कल्पना से करते हुए लिखा है–

पिता यथा पुत्रहितं विधते
तथा सुतेनापि पितुर्विधेयम्।
न भाति कर्त्तव्यकथैकपक्षा
तालीव लोके मम धारणेयम्।।[1]

यदि पिता व पुत्र दोनों जागरुक रहे तो परिवार में किसी भी प्रकार का कलह नहीं होगा।

राजा शान्तनु ने अपने पुत्र देवव्रत (भीष्म) के अलौकिक त्याग को देखकर ''इच्छामृत्यु'' का वरदान प्रदान किया।

व्यासजी ने महाभारत में रतिक्रीड़ा का वर्णन नहीं किया है जबकि महाकवि ने राजा शान्तनु द्वारा सत्यवती को पाकर सुरत व्यापार में संलग्न हो जाने पर रतिक्रीड़ा का अमर्यादित वर्णन किया है।

ग्यारहवें सर्ग में कुछ समय पश्चात् रानी सत्यवती गर्भवती हो गयी, उनके क्रमशः चित्राङ्गद, विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों भाइयों को पाकर भीष्म अत्यधिक प्रसन्न हुए। प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि ने इस कथा में कोई परिवर्तन नहीं किया है।

बाहरवें सर्ग में महाकवि ने महाभारत के आदि पर्व में वर्णित भीष्मकथा में कोई परिवर्तन व परिवर्धन नहीं किया है।

तेहरवें सर्ग में महाभारत के आदिपर्व, सभापर्व और उद्योगपर्व में उपलब्ध भीष्म कथा में महाकवि द्वारा कृत् कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता है, केवल आधुनिक युग के अनुरूप कुछ नीतिपरक श्लोकों को निबद्ध किया है। **महाकवि ने अपने महाकाव्य में भरी सभा में अपमानित होती हुई द्रौपदी के द्वारा प्रश्न करने का उल्लेख नहीं किया है जबकि महाभारत में इस प्रकार के प्रश्न करने का उल्लेख प्राप्त है द्रौपदी ने भरी सभा में कहा–कि मैं धर्म के अनुसार जीती गई हूँ या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर किसी ने नहीं दिया।** भीष्म ने द्रौपदी से कहा–कि धर्म की गति बड़ी

---

1. भीष्मचरितम् –10/11

सूक्ष्म है। बलवान् मनुष्य जिसको धर्म समझता है लोग उसी को धर्म मानते है और बलहीन पुरुष जो धर्म बतलाता है, वह बलवान् पुरुष के बताये धर्म से दब जाता है।[1] भीष्म कहते हैं कि मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। निश्चित रूप से यथार्थ विवेचना नहीं कर सकता। इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए युधिष्ठिर ही सबसे प्रामाणिक व्यक्ति है।

चौहदवें सर्ग में उद्योगपर्व व भीष्मपर्व में उपलब्ध भीष्मकथा को अत्यन्त सूक्ष्म रूप से यथावत् वर्णित किया गया है। दशवें दिन के युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को अनेक प्रकार से समझाए जाने पर शिखण्डी की आड़ में अर्जुन ने भीष्म पितामह पर घोर प्रहार किया, जिसके कारण भीष्म पितामह शरशय्या को प्राप्त हो गये। यहाँ पर महाकवि द्वारा कथावस्तु में परिवर्तन न करके कथा को अति संक्षिप्त रूप से उपस्थित किया गया है।

इसी प्रकार **पन्द्रहवें सर्ग** में महाकवि ने महाभारत के द्रोणपर्व व कर्णपर्व में उपलब्ध कथांशों को संक्षेप में उपनिबद्ध किया है। **महाकवि ने अपने महाकाव्य के इस सर्ग में कौरव सेनापति द्रोणाचार्य व अभिमन्यु के मध्य हुए महायुद्ध का वर्णन नहीं किया है जबकि महाभारत के द्रोण पर्व में इस महायुद्ध का वर्णन इस प्रकार से उपलब्ध होता है। दुर्योधन के उकसाने पर द्रोणाचार्य ने अर्जुन की अनुपस्थित में चक्रव्यूह का निर्माण कर डाला जिसे अर्जुन के अतिरिक्त कोई नहीं तोड़ सकता था। लेकिन अर्जुन पुत्र अभिमन्यु को चक्रव्यूह के छः द्वार तोड़ने तक की शिक्षा प्राप्त थी और भीमसेन ने कहा कि सातवाँ द्वार मैं अपनी गदा से तोड़ दूंगा।** चक्रव्यूह के मुख्य द्वार रक्षक जयद्रथ को अभिमन्यु ने मूर्च्छित कर चक्रव्यूह के भीतर प्रवेश किया। अकेले अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि, शल्य, दुर्योधन आदि महारथियों को अपने हाथों से बार–बार परास्त किया। द्रोणाचार्य ने स्पष्ट कहा–

अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः।। (द्रोणपर्व–अभिमन्युवधपर्व 48/30)

इस बालक के हाथ में धनुष–बाण रहते, इसे जीतना असम्भव है। अन्त में युद्ध के समय दुःशासन के पुत्र ने पीछे से अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार कर दिया। जिससे अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हुआ।

सोहलवें सर्ग में महाभारत के शान्तिपर्व में उपलब्ध भीष्मकथा को महाकवि ने परिवर्तित न कर संक्षेप में श्रीकृष्ण व भीष्म के मध्य हुए संवाद को प्रस्तुत किया है।

1. महाभारत–सभापर्व–द्यूतपर्व–69/15,16

सत्रहवें सर्ग में कवि ने महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित राजधर्म से सम्बन्धित उपदेश को सम्मिलित करते हुए आधुनिक युग के अनुरूप नवीन तथ्यों का समावेश किया है जैसे राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा को प्रसन्न रखे। क्योंकि विद्वानों ने प्रजा को राज्य की जड़ कहा है–

सामान्यकालेऽप्युभयोः समन्वयं
श्रयन्नृपो लोकमनांसि साधयेत्।
न रोटिकापाककृते स्वचूल्हके
सूदो मृदुं वा कुरुतेऽनलं खरम्।।[1]

महाकवि ने **अठाहरवें सर्ग** में महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म द्वारा प्रोक्त प्रजाधर्म से सम्बन्धित नीतियों में कतिपय नवीन परिवर्तनों का संयोजन किया है, जो वर्तमान युग के अनुरूप है यथा विद्वानों ने परिश्रम को ज्ञान का मित्र बताया है। विद्यार्थियों को अध्ययन के समय परिश्रमी होने की भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। पुत्र–पुत्री में भेदभाव नहीं करना चाहिए। क्योंकि रथ के पहियों की भाँति गृहस्थ–धर्म की गाड़ी को चलाने के लिए पुत्र–पुत्री समान है। कवि ने दहेज प्रथा पर घोर प्रहार किया है–

पिता च पुत्रस्य विवाहकर्मणि
काङ्क्षेद् वधूपक्षजनान्न यौतकम्।
न कल्यवर्तस्य धनस्य लब्धये
विमानयेत्सज्जनतां च सद्‌गुणान्।।[2]

महाकवि ने कहा है कि नारी का अपमान नहीं करना चाहिए। कवि ने नारी को धरती की देवी माना है। व्यापारियों को लोभवश विक्रयवस्तु का दाम नहीं बढ़ाना चाहिए तथा बनियों द्वारा नापतौल में धोखाधड़ी व वस्तु में मिलावट नहीं करनी चाहिए। कवि ने घूसखोरी पर भी घोर प्रहार किया है कि सरकारी नौकरी जनता को सताने के लिए नहीं वरन् जनता की सेवा के लिए होती है। इस प्रकार महाकवि ने वर्तमान युग में समाज में व्याप्त कुरीतियों को उजागर किया है।

उन्नीसवें सर्ग में महाभारत के शान्ति पर्व व अनुशासन पर्व में भीष्म द्वारा प्रोक्त मोक्षधर्म से सम्बन्धित उपदेशों में महाकवि ने कुछ परिवर्तन किया है जो सामयिक दृष्टि से उचित है। जैसे संसार में कुछ लोग है जो मोक्षमार्ग को जानते है। मोक्षलोक बहुत ही मनोरम निहायत ही सुन्दर और मनोहर है–

---

1. भीष्मचरितम्–17/15
2. तत्रैव–18/27

ते सन्ति केचिद् विरला महीतले

जानन्ति ये मोक्षपथं दुरासक्ष्म्।

न दुष्टभीतिश्च न चेतिभीतयः

स मोक्षलोकः सुतरां मनोरमः।।[1]

कवि ने मोक्ष के मार्ग को अतिकष्टदायक बताते हुए कहा है कि साधक को मोक्ष के मार्ग में मिलने वाले कष्टों की उपेक्षा करके साधक को कुँआ खोदने वाले व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए।

महाकवि ने **बीसवें सर्ग** में महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म प्रोक्त कथानक को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए आधुनिक युग से सम्बद्ध नवीन नीतियों को सम्मिलित किया है। कवि ने कहा है कि दुष्ट सन्तान समाज के लिए विनाश का कारण बन जाती है, इसलिए माता–पिता को अपनी सन्तान को समय रहते सुसंस्कृतवान बनाना चाहिए। जिस प्रकार–

अपक्वपात्रे विहितं लताङ्कनं

पक्वे दृढं सत्तदलङ्करोत्यलम्।

तदेव पक्वे यदि कर्त्तुमिष्यते

भनक्ति पात्रं तदसत्स्वयं तदा।।[2]

महाकवि की दृष्टि में भीष्म पितामह के महाप्रयाण का दृश्य आज भी अनुपमेय है। कवि को यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि भीष्म पितामह रूपी वह सूर्य डूब गया है। जबकि महाभारतकार ने ऐसे कथन का प्रयोग भीष्म के लिए नहीं किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रथम सर्ग से लेकर षष्ठ सर्ग तक महाभारत की मूलकथा में महाकवि ने परिवर्तन किया है और अपनी नवीन उद्‌भावनाओं से कथा को नवीन स्वरूप प्रदान किया है। शेष सर्गों का कथानक महाभारत में उपलब्ध कथा के ही समान है। सत्रहवें, अठारहवें, उन्नीसवें तथा बीसवें सर्ग में आधुनिक युग के अनुरूप उपदेशप्रद नीतियुक्त वचनों को समाविष्ट किया है। समाज में व्याप्त समस्याओं पर अपनी लेखनी के माध्यम से तीव्र प्रहार किया है।

---

1. भीष्मचरितम् –19/15, 22
2. तत्रैव– 20/14

(ii) महाभारतीय भीष्मकथा पर आधृत ग्रन्थों का विवरण

रामायण और महाभारत प्राचीनकाल से ही महाकवियों द्वारा प्रणीत किए जाने वाले ग्रन्थों के उपजीव्य रहे हैं। रामायण की कथा को उपजीव्य बनाकर शताधिक काव्य रचे जा चुके हैं उसी प्रकार महाभारतीय कथा को लेकर अनेक ग्रन्थ प्रणीत किए गए हैं। महाभारत में उपलब्ध कथाओं को लेकर माघ, भारवि, हर्ष आदि महाकवियों ने महाकाव्यों की रचना की है, जिनकी गणना वृहत्त्रयी के अन्तर्गत होती है। महाभारतीय कथा पर भास ने सात नाटक लिखे हैं– मध्यम व्यायोग, दूत घटोत्कच, कर्णभार, उरुभंग, पंचरात्र, दूतवाक्य, बालचरित। महाभारतीय कथा को लेकर आधुनिक युग में रचनाएँ हुई है जिनमें रामनाथ तर्करत्न–महाप्रस्थान महाकाव्य, हेमचन्द्रराय–पाण्डवविजयम् 1930, आत्मारामशास्त्री–सावित्रीचरितम् 1961, उमामहेश्वर शास्त्री–कंससंहारम् 1958, विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री–कर्णार्जुनीयम् 1968, ब्रह्मदत्त वाग्मी–पार्थचरितामृतम् 1994, इन्द्रदेव द्विवेदी–सुदामाचरितम् 1992, रामाशीष पाण्डेय–कृष्णोदयम् 1996, गुलाबचन्द्र चूलेट पाटलेन्दू–कर्णचरितामृतम् 1990, जयनारायण शास्त्री–कंसवधम् 1999, कृष्णप्रसाद धिमिरे–श्रीकृष्णचरितामृतम् 1991, कृष्णप्रसाद धिमिरे–नचिकेतसम् 1971, जीवभट्टाचार्यः–पाण्डवविक्रमम् 1985 आदि महाभारत के पात्रों को लेकर ग्रन्थों की रचना की गयी है।

इसी प्रकार महाभारत के मुख्य पात्र भीष्म पितामह के चरित्र को आधार बनाकर विद्वानों ने ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें से प्राप्य ग्रन्थ निम्न है–

(i) शरशय्या काव्य – महामहोपाध्याय प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी

(ii) श्रीभीष्मविजयम्–महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणसूरिः

(iii) देवव्रतचरितम् – डॉ. नलिनीकान्त मिश्र

इन ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(i) शरशय्या काव्य – महामहोपाध्याय प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी

प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी का जन्म मध्यप्रदेश के "सीहोर" नामक जिले के "नादनेर" ग्राम में 22 अगस्त 1935 ई. को हुआ था। इनके पिता नर्मदा प्रसाद व माता लक्ष्मी देवी थे। इन्होंने अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ साहित्य महोदधि पं. महादेव शास्त्री जैसे गुरु के सान्धिय में रहकर अलंकार शास्त्र का गहन अध्ययन किया। ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के इमीरेट्स प्रोफेसर पद पर नियुक्त है।

शरशय्या काव्य – इस काव्य में तीन शतकों का संग्रह है :– 1. सुगतोब्रवीति 2. वृद्ध कुमारी 3. शरशय्या। तीनों ही काव्य वेदना प्रधान है। शरशय्या काव्य शोध से सम्बन्धित है। इस गीतिकाव्य में कवि ने कौरव पाण्डवों के पितामह (भीष्म) की परिवेदना का वर्णन किया है। कवि को ऐसा महसूस होता है कि वे जन्म से ही शरशय्या पर थे। भीष्म पितामह द्वारा महाभारत युद्ध में कौरवों के सेनापति रहते हुए ग्यारहवें दिन पराक्रम दिखाते हुए अर्जुन के बाणों से आहत होकर भीष्म पितामह शरशय्या को प्राप्त हो गये थे जिसका वर्णन इस प्रकार है–

शरशय्या में पड़े भीष्म कह रहे है कि मैं अन्तिम अवस्था में हूँ मेरे पैदा होने से पहले ही मेरी माता गङ्गा ने मेरे सात भाईयों को मार दिया था। युद्ध में मेरे कारण ही श्रीकृष्ण को भी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी थी। इस संसार में मेरे पास सभी प्रकार का सुख था लेकिन अम्बा ने विचित्रवीर्य की गार्हस्थसिद्धि के कारण मुझे शाप दिया। इस संसार में मेरा गूढ रहस्य दुर्योधन ही था जिसके बारे में मुझे किसी ने नहीं बताया इसका मुझे दुःख है। मेरे आँखे होते हुए भी मैं अन्धे के नेतृत्व रूपी अन्धकूप में पड़ गया जिसके कारण मुझे द्रौपदी के अपमान को भी देखना पड़ा–

अन्धो न नेतृपदमन्धजनस्य लब्धुं
योग्यः कदापि नयवाक्य मिदं तदानीम्।
व्योमान्तराल–पृथिवी–क्षितिजान्त–पट्टे
नो नो व्यलेखि विधिना परमन्ध आसम्।।[1]

गङ्गा जो तीनों लोकों को पवित्र करती है मैं उसी का पुत्र अपवित्र हूँ जो डूबा हूँ गङ्गाजल में जिसके भीतर मलिनता ही भरी हुई है।

मेरी बाहरी आँखें तो है लेकिन भीतरी आँखे फूट चुकी है। मेरा शरीर वृद्ध है परन्तु इसमें इतनी शक्ति है जो एक युवक में रहती है। मेरे प्राणों पर अधिकार भी मेरा ही है लेकिन मैं अकेला ही यमराज धाम पहुँच चुका हूँ। मेरे सामने दुर्योधन, अर्जुन तथा इनके गुरु भी कुछ नहीं है। मैं ज्योति भी, तमस् भी हूँ। लेकिन दिनरात पका जा रहा हूँ हृदयरूपी अग्नि कुण्ड में। इस शरशय्या पर जो सोता है वह जागता ही रहता है, क्योंकि उसके चित्त में सदैव आग सुलगी रहती है।

मैं पितामह हूँ मुझे इस युद्ध में प्रपौत्रों का नाश देखना होगा, यह भाव भी मुझे युद्ध से नहीं रोक सका। निश्चित ही मेरी आयु पूर्ण हो चुकी है। मैं इतना समर्थ था कि श्रीकृष्ण को भी

---

1. शरशय्या परिवेदना–प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी – श्लोक सं. 16, पृ.सं.–82

अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर मुझे मारने के लिए दौड़ लगानी पड़ी थी, मुझे शरशय्या पर सुला दिया और जीवित भी रहूँगा मकर संक्रान्ति तक। धर्मपथ से हटकर निर्लज्ज होकर दूसरे का अन्न खाने हेतु अन्धतम में प्रविष्ट हो गया हूँ। मेरे प्राण लेने हेतु यमराज भी मेरे पास आ रहे है–

यद्यप्यहं स्ववशमृत्युरथापि नास्ति
जीवातवे क्षणमपि प्रसितोऽत्र लोके।
मत्स्वागताय तदिहाकलयामि देवं
वैवस्वतंयममिहागमनोत्सुकस्वम्।।[1]

मैंने मृत्यु को जीत रखा है परन्तु मैं सूर्य के उत्तरायण की प्रतीक्षा में हूँ जिससे भगवान् सूर्य मुझे सुख से उनके पुत्र यम को दे सकते हैं। मुझमें किसी प्रकार की कोई तृष्णा शेष नहीं है। भीष्म ने माता वसुधे को प्रणाम कर कहा–मैं आठवां वसु हूँ। मेरा धैर्य टूट चुका है मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ। तुम दया की सागर हो। मुझे क्षमा करो। इस प्रकार भीष्म अग्निदेव को प्रणाम करके कहते है कि मेरे शरीर को ग्रहण कीजिए। उसके बाद वायुदेव से कहते है कि मेरी चित्ताग्नि को चारों ओर से खूब धधकाना, किन्तु उठे हुए धुएँ को दिशाओं में फैलाना नहीं क्योंकि अनगिनत कीटाणु का दंश विषैला व ज्वलनशील होगा। मैं परमेश्वर के मुख से गीता सुन चुका हूँ मेरे लिए कुछ भी सुनना शेष नहीं है।

हे कर्ण! तुम जीवित हो और तुम्हारा झुकाव दुर्योधन की ओर है। इसे मैं कष्टकारी दुर्विपाक मानता हूँ। श्रीकृष्ण को ईश्वर के रूप में देख ईश्वर न तो अवतार लेता है न मरता है। इन दोनों की कामना करता है मनुष्य।

मैं विराट भगवान् से प्रार्थना करुँगा कि मेरी मुक्ति न हो–

भावेन किन्तु, भगवन्तमहं विराजं
याचे भवेन्न मम मुक्तिरसौ सुखात्मा।
याचे भवेन्मम सदा सुलभा शराणां
शीर्षेषु तीक्ष्ण–निशितात्मसु हन्त शय्या।।[2]

मैंने भगवान् विराट के मुखारविन्द के भीतर आसन लगा रखा है। मेरे सिर से खून बह रहा है। नियति मुझे रोक नहीं पा रही है और मैं हूँ नियति को रोकने वाला। सभी कौरव धृतराष्ट सहित अन्धे और नासमझ थे। इनकी बुद्धि क्षीण होकर शक्ति को निगल गयी। पाण्डव परमेश्वर

---

1. शरशय्या परिवेदना–प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी – श्लोक सं. 67, पृ.सं.–99
2. तत्रैव–श्लोक सं. 90, पृ.सं.–107

की कृपा से श्रद्धालु और बलशाली थे। माता के शरीर से पृथक् होना तो है जन्म और माता के शरीर में छिप जाना ही मृत्यु होती है। धन्य हूँ मैं, जो मेरे शरीर को समाप्त करने हेतु स्वयं भगवान् काल अपना मुख खोले हुए है। मेरा रक्त भी धन्य है, जिसे पीकर विराट पुरुष भी अपनी भयंकर पिपासा बुझा रहे है।

इस गीति काव्य में कवि ने कौरव पाण्डवों के पितामह (भीष्मपितामह) की परिवेदना का वर्णन किया है। कवि को ऐसा महसूस होता है कि वे जन्म से ही शरशय्या पर थे। इस काव्य का मुख्य सन्देश है कि मनुष्य की अतिशय शक्ति सम्पन्नता तथा सच्चरित्रता तभी तक उसकी रक्षक है जब तक वह अनीति का साथ नहीं देता और ना ही उसके विरुद्ध क्रान्तिकारी विरोध का स्वर उठाने की हिम्मत कर पाता। यही स्थिति भीष्म की थी जो उनके विनाश का कारण बनी। अविवेक से आक्रान्त उनकी अन्तश्चिति निरन्तर अनुचित को सहती गयी, देखती गयी और उसकी वृद्धि में मौन सहयोगी बनी रही। धृतराष्ट्र जन्म से ही आँखों से अन्धे थे परन्तु भीष्म तो आँखें होते हुए भी अन्धे बने रहे वे धर्मद्रोहियों के समान उनकी रक्षा करने में लगे रहे जो आततायी थे अतएव निःसंकोचबद्ध थे।

(ii) श्रीभीष्मविजयम्–महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणसूरिः

महाभारत के आदिपर्व से लेकर अनुशासन पर्व तक में उपलब्ध कथा को आधार बनाकर महाकवि ने श्रीभीष्मविजयम् की रचना की है श्री लक्ष्मणसूरि 'तमिलनाडु' राज्य के 'तिरुनेलवेली' जिले के निवासी थे इनके पिता का नाम पुनालवेली मुथुसुबा अय्यर था। महाकवि का जन्मकाल 1919–1959 तक रहा। ये मद्रास में पचपाया कॉलेज में प्रोफेसर रहे थे। इन्हें उच्च मानित विद्वता संस्कृत में प्राप्त हुई थी। इन्होंने भीष्म को नायक बनाकर श्रीभीष्मविजयम् महाकाव्य (उपन्यास) की रचना की। यह प्रबन्ध (उपन्यास) आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

प्रथम उच्छ्वास

ब्रह्मा की सभा में ऋषि–महर्षि, साधु–संत, देवता–उपदेवता एवं सभी सदस्य अपने स्थान पर बैठे हुए थे। जगत में अधिकाधिक शान्ति और सुख का विस्तार किस प्रकार किया जाय? इस विषय पर चर्चा हो रही थी। उसी समय गङ्गाजी वहाँ पर गयी। लोगों की दृष्टि नीचे हो गयी परन्तु महाभिषक्जी उनकी ओर देखते रहे। ब्रह्माजी ने नियमों का उल्लंघन मानकर महाभिषक्जी को शापवश ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में भेज दिया।

पृथ्वी पर महाप्रतापी महाराजा प्रतीप का साम्राज्य था। महाभिषक्जी ब्रह्माजी से अनुमति लेकर प्रतीप के पुत्ररूप में अवतीर्ण हुए। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी जिस वृद्ध या रोगी पुरुष के सिर पर हाथ रख देते थे, वह हृष्ट–पुष्ट हो जाता था। इसी कारण से संसार में वे शान्तनु के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जब गङ्गाजी ब्रह्मलोक से लौटने लगी। तब ब्रह्मलोक की घटनाएँ याद आने लगी कि महाभिषक्जी को मेरे ही कारण शाप मिला है। वह महाभिषक्जी की सेवा करने की सोचने लगी। तब उन्होंने देखा कि आठ वसु महर्षि वशिष्ठ के शापवश स्वर्ग से मृत्युलोक आ रहे हैं। उन वसुओं ने गङ्गाजी से माता और शान्तनु को पिता होने की इच्छा जताई। लेकिन शर्त यह थी कि हमें पैदा होते ही अपने जल में प्रवाहित कर देना। लेकिन वसुओं से गङ्गा ने कहा कम से कम एक पुत्र जीवित रखना होगा। वसुओं ने कहा हम अपने तेज का आठवाँ अंश दे देगें और हमारा सबसे छोटा भाई द्युनामका पृथ्वी पर रह जायेगा। हुआ भी ऐसा ही अन्त में जाकर आठवाँ वसु ही देवव्रत (भीष्म) कहलाया। इस प्रकार **भीष्मप्रादुर्भावनामक** पहला उच्छ्वास समाप्त हुआ।

द्वितीय उच्छ्वास

राजकुमार देवव्रत को युवराज बनाने के उपरान्त अपनी मृत पत्नी गङ्गा की याद में दुःखी शान्तनु वन विहार पर चले जाते हैं, वहाँ फैली हुई सुगन्ध का अनुसरण करते हुए उन्हें सत्यवती का दर्शन होता है, उन दोनों में परस्पर प्रीति हो जाती है। शान्तनु सत्यवती के पिता दाशराज से सत्यवती को अपनी पत्नी बनाने का प्रस्ताव रखते है लेकिन दाशराज द्वारा शर्त रखने के कारण शान्तनु दुःख के सागर में डूब जाते हैं। देवव्रत अपने पिता के दुःख का कारण जानकर दाशराज (मछुवारे) के पास पहुँच जाते हैं और दोनों में परस्पर संवाद होता है। देवव्रत द्वारा अपने पिता शान्तनु को खुश रखने के लिए दाशराज की शर्त का पालन करते हुए युवराज का पद त्याग देते है और भीष्मप्रतिज्ञा करते है। देवताओं द्वारा आकाश से पुष्पवर्षा और घण्टियों की ध्वनि का प्रसार किया जाता है। देवव्रत अपनी माता सत्यवती को साथ लेकर हस्तिनापुर आते है। राजा शान्तनु द्वारा पुत्र देवव्रत को स्वच्छन्द मृत्यु का वरदान प्राप्त होता है। इस कार्य से पिता को पत्नी और पुत्र को माता सत्यवती मिल जाती है। इस प्रकार भीष्म का **भीष्मत्वलाभ** नामक दूसरा उच्छ्वास समाप्त होता है।

तृतीय उच्छ्वास

राजा शान्तनु और सत्यवती के क्रमशः चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य दो पुत्र उत्पन्न हुए। चित्राङ्गद को राजा बनाया गया लेकिन अपनी शक्ति के घमण्ड के कारण अपने समान नाम वाला गन्धर्व चित्राङ्गद से शान्तनु चित्राङ्गद युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हो गया। विचित्रवीर्य के बाल्यावस्था में ही होने के कारण माता सत्यवती ने भीष्म से युवराज पद धारण करने के लिए कहा लेकिन भीष्म ने प्रतिज्ञा के कारण मना कर दिया।

सत्यवती ने भीष्म से विचित्रवीर्य का विवाह करने के लिए कहा था। भीष्म को काशीनरेश की तीन पुत्रियों का स्वयंवर होने की सूचना मिली और भीष्म स्वयंवर में पहुँच गये। वहाँ बैठे राजाओं ने भीष्म का मजाक बनाया कि यह विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर चुका है फिर स्वयंवर में क्यों आया? भीष्म ने सभी राजाओं को ललकार करके कहा कि मैं तीनों कन्याओं (अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका) को लेकर जा रहा हूँ। जिसे अपने बल पर घमण्ड हो, वह मुझसे युद्ध कर लें। समस्त राजा और भीष्म के मध्य भयंकर युद्ध होता है। अन्त में राजा शाल्व भी भीष्म से युद्ध करते है। लेकिन भीष्म को कोई भी हरा नहीं सका। अम्बा का शाल्व के प्रति अनुराग होने के कारण अम्बा को शाल्व के पास भेज दिया गया और अम्बिका व अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ सम्पन्न हुआ। इस प्रकार **भीष्मविक्रम** नामक तीसरा उच्छ्वास समाप्त हुआ।

चतुर्थ उच्छ्वास

भीष्म ने राजा शाल्व के पास अम्बा को भेज दिया। लेकिन राजा शाल्व ने अम्बा को स्वीकार नहीं किया। अम्बा वहाँ से ऋषियों के आश्रम में चली गयी। ऋषि और अम्बा की बात हो ही रही थी कि इतने में होत्रवाहन ऋषि भी आ गये। होत्रवाहन ऋषि ने सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर अम्बा को परशुरामजी की शरण में जाने के लिए कहा। परशुरामजी को अम्बा ने सारा वृत्तान्त सुनाया। इसके बाद परशुरामजी, अम्बा और होत्रवाहन ऋषि कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में पहुँच गये। परशुरामजी ने भीष्म को सन्देश पहुँचवाया और भीष्म परशुराम जी के पास आ पहुँचे। परशुरामजी ने कहा—भीष्म! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम अम्बा को ग्रहण करो और अपने धर्म की रक्षा करो। भीष्म ने कहा—मैंने इसको शाल्व के पास भेज दिया था। मैंने धर्म का उल्लंघन नहीं किया है। भय, दया, लोभ अथवा काम के वश होकर धर्म नहीं छोड़ना चाहिए, यह मेरा निश्चित व्रत है। परशुरामजी और भीष्म के मध्य युद्ध होना तय हो गया। दोनों के मध्य लगातार **तेईस दिनों** तक भयंकर युद्ध होता रहा अन्त में भीष्म ही विजय हुए। भीष्म को अपने व्रत की स्थिरता के कारण ही

अपने गुरु परशुरामजी से युद्ध करना पड़ा। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। इस प्रकार **व्रतस्थेमा** नामक चौथा उच्छ्वास समाप्त हुआ।

पञ्चम उच्छ्वास

भीष्म वध के लिए अम्बा ने पञ्चालनरेश द्रुपद के यहाँ पुनः जन्म लिया। स्थूणाकर्ण यक्ष ने अपना पुरुष रूप उस कन्या को दे दिया और कन्या का स्त्री रूप स्थूणाकर्ण यक्ष ने धारण कर लिया था। भीष्म को स्वच्छन्द मृत्यु का वरदान प्राप्त था। विचित्रवीर्य की मृत्यु हो जाती है। इससे शान्तनु वंश का नाश दिखाई देने लगा। भीष्म की अनुमति से सत्यवती ने अपने कानीन पुत्र वेदव्यास को बुलाया और अम्बिका से धृतराष्ट्र तथा अम्बालिका से पाण्डु को नियोगविधि द्वारा उत्पन्न करवाया। युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ किया गया जिसमें युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि अग्रपूजा किसकी होनी चाहिए। भीष्म ने कहा–श्रीकृष्ण वही परमेश्वर भगवान् वासुदेव है। श्रीकृष्ण को ही अग्रपूजा के योग्य माना। दुर्योधन द्वारा द्यूतक्रीड़ा का आयोजन रखा गया जिसमें पाण्डव युधिष्ठिर सम्पूर्ण राज्य व द्रौपदी को हार गये। दुःशासन द्रौपदी के बाल पकड़कर घसीटता हुआ भरी सभा में ले आता है। द्रौपदी द्वारा श्रीकृष्ण को पुकारने पर द्रौपदी की साड़ी लम्बी कर श्रीकृष्ण सहायता करते हैं। उस समय वहाँ का वायुमण्डल इतना दूषित हो गया था कि द्रौपदी के प्रश्नों का उत्तर किसी ने भी नहीं दिया और भीष्म ने भी स्पष्ट उत्तर न देकर युधिष्ठिर पर ही टाल दिया। दुर्योधन के अशुद्ध अन्न के भोजन से और अशुद्ध सहवास से भीष्म पितामह की बुद्धि भी प्रभावित हो गयी थी, जिससे भीष्म द्रौपदी के गूढ़ प्रश्नों का निर्णय नहीं कर सके। इतना सब होने पर भी भीष्मपितामह का हृदय पाण्डवों के पक्ष में था।

पहली बार जुएँ में तो धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को सारी सम्पति देकर पाण्डवों को मुक्त कर दिया, परन्तु दूसरी बार जुएँ में पाण्डवों के लिए बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास तय हुआ। तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास रूप बदलकर उन्होंने विराटनगर में बिताया। इसप्रकार अज्ञातवास का समय बीत जाने पर कौरवों को चिन्ता हुई कि पाण्डव कहाँ है? उन्हें किस प्रकार नष्ट किया जाय।

पाण्डव प्रकट हुए। विराट की पुत्री उत्तरा के साथ अभिमन्यु का विवाह हुआ। विवाह के अवसर पर देश–देश के राजा उपस्थित हुए। पाण्डवों को राज्य प्राप्त हो जाय, इसके लिए लोगों का विचार–विमर्श हुआ कि यदि पाण्डवों को हक़ नहीं दे देते तो युद्ध किया जाय। संजय वहाँ से लौटकर पाण्डवों का उत्साह वर्णन करने लगे और कहा पाण्डवों से युद्ध न करना ही अच्छा है। इस विषय में कौरव सभा में विचार होने लगा। भीष्म पितामह ने कहा–पाण्डवों को नहीं जीत

सकते क्योंकि अर्जुन नर और श्रीकृष्ण नारायण है। यह सब बातें सुनकर कर्ण तमक उठा और कहा–मैं दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए युद्ध में अर्जुन को मारुँगा। यह बात सुनकर भीष्म ने कर्ण को अर्धरथी की संज्ञा दे दी। जिसे कर्ण ने क्रोधित होकर कहा जब तक भीष्म शस्त्र धारण करेगें तब तक मैं युद्ध नहीं करुँगा। ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधन के पास और सात अक्षौहिणी सेना पाण्डवों के पास थी, महाभारत युद्ध में इस प्रकार **भीष्मोपन्यास** नामक पाँचवा उच्छ्वास समाप्त हुआ।

षष्ठ उच्छ्वास

भीष्म को अपने पिता राजा शान्तनु से इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था। अम्बा अपना बदला लेने के लिए पुनर्जन्म में शिखण्डिनी से उत्पन्न हुआ। महाभारत युद्ध में भीष्म ने भयंकर पराक्रम से पाण्डवों की सेना का सर्वनाश कर दिया। इसी चिन्ता के कारण एक दिन रात को युधिष्ठिर श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों के साथ भीष्म के पास पहुँचे। भीष्म पितामह को प्रणाम कर कहने लगे पितामह हमारी सम्पूर्ण सेना आपके पराक्रम से आहत होकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी है। पितामह आप ही हमें हमारी विजय का उपाय बताइए। भीष्म पितामह ने कहा युधिष्ठिर शिखण्डी (पूर्व अम्बा) को आगे करके युद्ध कर सकते हो। मैं शिखण्डी पर प्रहार नहीं करूँगा। हुआ भी ऐसा ही अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके भीष्म पितामह पर प्रहार किये। जिसे भीष्म पितामह घायल होकर शरशय्या पर लेट गये। सभी कौरव–पाण्डव उनके समीप आ गये। परन्तु भीष्म ने कहा अभी सूर्य दक्षिणायन है अभी मैं नहीं मरूँगा। सूर्य के उत्तरायण होने पर ही प्राणों का त्याग करूँगा। भीष्म ने शरशय्या पर लेटे–लेटे सम्पूर्ण महाभारत युद्ध को देखा था। भीष्म ने मृत्यु को अपनी इच्छानुसार ही अपने पास आने दिया और सूर्य उत्तरायण होने पर ही प्राण त्यागे। इस प्रकार **स्वच्छन्दमृत्युताप्रकाशन** नामक छठवाँ उच्छ्वास समाप्त हुआ।

सप्तम उच्छ्वास

भीष्म शरशय्या पर लेटे हुए थे। उनके पास पाण्डव व श्रीकृष्ण ने पहुँच कर प्रणाम किया। श्रीकृष्ण ने भीष्म से कहा आप युधिष्ठिर को राज्य प्रजा सम्बन्धित कुछ उपदेश दीजिए जिससे युधिष्ठिर का मन शान्त हो सके। भीष्म ने कहा–श्रीकृष्ण आप ही उपदेश दीजिए क्योंकि सभी शास्त्रों का ज्ञान आपके ही पास है। परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा–युधिष्ठिर और प्रजा आपके मुखारविन्द से ही उपदेश सुनना चाहते है। भीष्म ने उपदेश स्वरूप कहा आप अपने धर्म का आचरण कीजिए अधर्म का नहीं। राजा का धर्म है प्रजा का पालन, प्रजा के दुःखों को दूर करना, प्रजा के लिए धन संग्रह करना आदि। राजा का परम कर्तव्य है प्रजा के सभी दुःखों को दूर करना। प्रजा का भी

धर्म है कि राजा के कार्य को नियमानुसार करते रहे। राजा द्वारा शत्रु का वध करना भी क्षत्रिय धर्म है। प्रजा प्रसन्न रहेगी तभी राजा सुखी रहेगा। अर्थात् सभी प्रकार से राजा को प्रजा की सुरक्षा करनी चाहिए और मेरे मरने के बाद शोक नहीं करना क्योंकि आत्मा अमर है। इस प्रकार **उपदेशसंग्रह** नामक सातवाँ उच्छ्वास समाप्त हुआ।

अष्ठम उच्छ्वास

सूर्य के उत्तरायण होने पर भीष्म पितामह के शरीर त्याग का दिन आया। धृतराष्ट्र, पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण सब उपस्थित हुए। भीष्म पितामह ने अपनी इन्द्रियों, मनोवृत्तियों और बुद्धि को समेटकर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की। भीष्म ने श्रीकृष्ण से कहा मैं आज मृत्यु के समय आपको देख रहा हूँ। मैं कृतार्थ हो गया। मैं आपमें मिल गया, मैं आपसे एक हो गया।

इतना कहकर भीष्म चुप हो गये। देवता उनके शरीर पर पुष्पवर्षा करने लगे। ऋषि–मुनि स्तुति करने लगे। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा भीष्म के शरीर का प्राण ज्यों–ज्यों ऊपर उठता गया, त्यों–त्यों उनके शरीर से बाण निकलते गये और घाव भरते गये। इसे देखकर श्रीकृष्ण, वेदव्यास और युधिष्ठिर आश्चर्यचकित हो गये। आकाश में जय–जयकार के नारे लगने लगे–

जयतु जयतु दीव्यं धाम कृष्णाभिधानं
जयतु जयतु भीष्मः सत्यधर्मव्रतात्मा।
जयतु जयतु धर्म्या पद्धतिः साधुगम्या
जयतु च सुमतीनां वाचि सारस्वतश्रीः।।[1]

इस प्रकार **स्वर्गारोहनामक** आठवाँ उच्छ्वास समाप्त हुआ।

(iii) देवव्रतचरितम् – डॉ. नलिनी कान्त मिश्र कृत

नलिनीकान्त मिश्रजी का जन्म राणीसाहि नामक गाँव जिला मेदिनीपुर राज्य पश्चिम बंगाल सदाचार गुणसम्पन्न वैदुष्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपका गोत्र शाण्डिल्य था। आप बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे। मिश्रजी ने निरुक्त विषय में मध्यम परीक्षा 1955 ई. में और नव्यन्याय उपाधि परीक्षा 1959 ई. में उत्तीर्ण की। इन्होंने नव्यस्मृत्युपाधि परीक्षा के लिए स्वर्ण पदक पुरस्कार प्राप्त किया था।

मिश्रजी के कर्मजीवन का प्रारम्भ कोलकाता के राष्ट्रीय संस्कृत महाविद्यालय के गवेषणा विभाग के डॉ. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा ने निर्देशन में पुराण विषय में गवेषण से प्रारम्भ हुआ। इन्होंने

1. श्रीभीष्मविजयम्–लक्ष्मसूरि–अष्टम उच्छ्वास–अन्तिम पद्य

अनेक सम्मानित पदों पर रहकर भी कार्य किया था। इन्होंने अपने जीवनकाल में निबन्ध तथा पत्रिकाओं का प्रकाशन करवाया।

देवव्रतचरितम् महाकाव्य — मिश्रजी का यह महाकाव्य महाभारत के नायक भीष्म पितामह के जीवनचरित पर आधारित है। इन्होंने इस महाकाव्य को दश सर्गों में निबद्ध किया है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग — यह सर्ग सत्ताईस पद्यों में निबद्ध है इसमें चन्द्रवंशीय राजा महाभिष का देवगणों के साथ ब्रह्मलोक में गमन वहाँ पर गङ्गा से साक्षात्कार तथा गङ्गा और महाभिष के प्रति ब्राह्मणों का अभिशाप, अष्टवसुओं के साथ गङ्गा का साक्षात्कार और वार्तालाप वर्णित है। इस प्रकार **मार्गनिर्देश** नामक पहला सर्ग समाप्त हुआ।

द्वितीय सर्ग — इस सर्ग में इक्तीस पद्यों का वर्णन है हरिद्वार में तपस्या में रत प्रतीप और प्रतीपपुत्र महाभिष के समीप गङ्गा का आविर्भाव और दोनों के बीच परस्पर संवाद तथा प्रतीप द्वारा पुत्रवधू के रूप में गङ्गा को स्वीकारना आदि का वर्णन है। इस प्रकार **शान्तनुजनन** नामक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तीसरा सर्ग — इस सर्ग के उन्तीस पद्यों में प्रतीपपुत्र शान्तनु का राज्यभिषेक, शान्तनु का मृगयार्थ वनगमन, वन का वर्णन, गङ्गा के साथ शान्तनु का विवाह, पुत्रों को गङ्गाजल में विसर्जन के बाद गङ्गा के साथ शान्तनु का विच्छेद तथा शान्तनु का अपने राज्य की ओर प्रस्थान आदि कथायें निबद्ध है। इस प्रकार **भीष्मदेवजनन** नामक तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थ सर्ग — इस सर्ग में चालीस श्लोक है। एक बार राजा शान्तनु नदी के किनारे भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने नदी के जल का रुकने का दृश्य देखा, वहाँ पर गङ्गा का अविर्भाव और दोनों के मध्य वार्तालाप, जलरोध का कारण अपने पुत्र को जानकर, पुत्र के साथ शान्तनु का अपने राज्य की ओर प्रस्थान। देवदत्त नामक पुत्र का अपने राज्य पर अभिषेक, भ्रमण के लिए शान्तनु का यमुना नदी के किनारे गमन, वहाँ दासकन्या को देखकर शान्तनु की मदनपीड़ा का वर्णन है। इस प्रकार **देवव्रतसमागम** नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पञ्चम सर्ग — इस सर्ग में छत्तीस पद्य है। जिसमें शान्तनु और दासकन्या के मध्य संवाद, दासकन्या सत्यवती के साथ शान्तनु का दासराज के समीप गमन उन दोनों के विवाह का प्रस्ताव,

शर्त के कारण शान्तनु और सत्यवती का विवाह आदि का वर्णन है। इस प्रकार **देवव्रतप्रतिज्ञा** नामक पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठ सर्ग – इस सर्ग के छत्तीस पद्यों में कवि ने शान्तनु सत्यवती का मिलन के अवसर पर संक्षिप्त रूप से वसन्तकाल का वर्णन किया है। शिव दुर्गा की स्तुति, राजा को शिववर प्राप्ति का वर्णन किया है। इस प्रकार **इष्टप्रादय** नामक छठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तम सर्ग – इस सर्ग के बत्तीस पद्यों में सत्यवती को पुत्रलाभ, ज्येष्ठ पुत्र चित्राङ्गद का राज्याभिषेक, युद्ध में चित्राङ्गद की मृत्यु, कनिष्ठ पुत्र के विवाह के लिए काशीराज की कन्याओं के स्वयंवर सभा में भीष्मदेव का गमन, सभी राजाओं को पराजित कर कन्याओं का ग्रहण तथा अपने राज्य में पुनः गमन, सत्यवती के साथ परामर्श कर कनिष्ठ पुत्र विचित्रवीर्य के साथ अम्बिका अम्बालिका से पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। इस प्रकार **निधन** नामक सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अष्टम सर्ग – इस सर्ग में इक्तीस पद्य है जिसमें विचित्रवीर्य को धृतराष्ट्र आदि पुत्रलाभ, उसका भीष्मदेव के निर्देश से विवाह, युधिष्ठिर आदि पुत्रों की उत्पत्ति और गुरुद्रोण के समीप अस्त्रशिक्षा और शिक्षा विषय की परीक्षा में पाण्डवपुत्र अर्जुन को श्रेष्ठ देखकर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन का गुरु द्रोण के प्रति क्रोध और गुरु का अपमान आदि विषयों को उपन्यस्त किया है। इस प्रकार **कुरुवंशसम्भव** नामक आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

नवम सर्ग – इस सर्ग में तरेसठ पद्य है जिसमें राजा धृतराष्ट्र के समीप भाइयों सहित दुर्योधन का आगमन तथा द्रोणाचार्य का पाण्डव पक्ष में कथन। धृतराष्ट्र और गान्धारी का इस विषय में अपने मत का प्रकाशन वर्णित है। इस प्रकार **दुर्योधननिर्वेद** नामक नवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दशम सर्ग – इस सर्ग में पैंतीस पद्यों में कवि ने द्रोण के अपमान से द्रोण की मानसिक व्यथा तथा इस विषय में कर्त्तव्य निर्धारण के लिए विदुर के साथ भीष्म का परामर्श चित्रित किया है। इस प्रकार **भीष्मदेवचिन्तन** नामक दशवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

♦♦♦♦

अध्याय चतुर्थ

भीष्मचरितं महाकाव्य का महाकाव्यत्व

(i) महाकाव्य का लक्षण

(ii) वस्तु विभाजन

(iii) नेता–पात्रों का चरित्र–चित्रण

(iv) रस–अलंकार–गुण

(v) छन्द योजना

(i) महाकाव्य का लक्षण

महाकाव्य के प्रारम्भिक तत्त्व वैदिक–साहित्य ऋग्वेद में मिलते है। डॉ. ओल्डनवर्ग ने ऐसे लगभग 20 सूत्रों की खोज की है, जिन्हें वे आख्यान सूत्र कहते हैं। इन सूत्रों को उन्होंने भारतीय महाकाव्यों के प्राचीनतम रूप माना है। प्रो. मैक्समूलर ने इस तथ्य से अपनी असहमति व्यक्त करते हैं, किन्तु विन्टर नित्स ने ओल्डनवर्ग के इस तथ्य का समर्थन किया है।

ब्राह्मणग्रन्थों में कतिपय स्थलों में तथा इतिहास पुराणकाल में 'सुपर्णाध्याय' नामक आख्यान में भी काव्य की झलक दिखाई पड़ती है किन्तु संस्कृत का 'आदि अलंकृत महाकाव्य' वास्तव में वाल्मीकि रामायण ही है, जो काव्यधारा का शाश्वत् उद्गम स्त्रोत रहा है।[1]

महाकाव्यों की विकासात्मक परम्परा में महर्षि पाणिनी (ई.पू. 400) का नाम भी लिया जाता है। अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी के सूत्रों में पाणिनी ने शिशुक्रंदपि, यमसमीप तथा इन्द्रजननीय इन काव्यों का प्रसंगवश उल्लेख किया है। इन काव्यों के वर्णन से ज्ञात होता है कि पाणिनी से पूर्व भी प्रबन्धकाव्य की परम्परा में वाल्मीकि की रामायण या वेदव्यास के महाभारत के अतिरिक्त अन्य अनेक काव्यों का निर्माण हुआ था किन्तु ये काव्य उपलब्ध नहीं होते हैं।

महाकाव्य की रचना करने वाले कालिदास के पूर्व दो महान् कवियों के नाम उपलब्ध होते है–पाणिनी तथा वररुचि या कात्यायन। इन दोनों के रचे गये महाकाव्य उपलब्ध नहीं होते है। सदुक्तिकर्णामृत में उद्धृत एक पद्य में दाक्षी पुत्र पाणिनी का नाम सुबन्धु, रघुकार (कालिदास), भवभूति आदि श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में रखा गया है। पाणिनी ने व्याकरण के ग्रन्थ के साथ जाम्बवती विजय महाकाव्य की भी रचना की थी। कहीं–कहीं पाताल–विजय के नाम के रूप में भी जाम्बवती विजय महाकाव्य का उल्लेख मिलता है। इनके अनेक उद्धरण सूक्ति ग्रन्थों में संकलित है। रुद्रट कृत 'काव्यालंकार सूत्र' के सुप्रसिद्ध टीकाकार नमिसाधु ने उक्त दोनों काव्यों का उल्लेख किया है।[2] पण्डित बलदेव उपाध्याय का कथन है कि आर्ष काव्यों के पश्चात् जाम्बवती विजय या पातालविजय संस्कृत का प्रथम महाकाव्य है। यह महाकाव्य श्रीकृष्ण द्वारा पाताल में पहुँचकर पता लगाना और जाम्बती से उनके विवाह कथा पर आधृत होना प्रतीत होता है। महाकाव्यकार पतञ्जलि ने 'वाररुचं काव्यम्' के नाम से कात्यायन व वररूचि के महाकाव्य को प्रस्तुत किया है। कुछ विद्वान् कात्यायन के महाकाव्य को स्वर्गारोहण के नाम से भी उद्धृत करते हैं।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक सूक्तों से ही लौकिक काव्यधारा का सृजन हुआ। वेदों के उपरान्त पुराणों में पुराकथा को काव्यमयी भाषा में लिखकर प्रस्तुत किया गया अतः पुराणों का

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, पृ.सं.–27
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, पृ.सं.–41
3. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.सं.–103–104

महत्त्वपूर्ण योगदान है। पुराणकाल के पश्चात् ऋषियों ने जिस लौकिक काव्यधारा का सूत्रपात किया उसके आदि स्रोत थे रामायण एवं महाभारत। ये दोनों ही काव्य के उपजीव्य है। महाकाव्य, श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत आने वाले प्रबन्ध काव्य का प्रथम भेद है। महाकाव्य महत् विशेषण सहित काव्य शब्द के योग से निर्मित है। महत् काव्य इस संज्ञा का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वेदों में रामायण को महत् काव्य कहा गया है। महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता है। किन्तु वाल्मीकि तथा कालिदास के ग्रन्थों के आधार पर आलंकारिकों ने अपने ग्रन्थों में महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया। अग्निपुराण साहित्य का विश्वकोष है अतः पहले अग्निपुराण में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षण को निरूपण करेगें तत्पश्चात् अलंकारशास्त्रियों भामह, दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ, आचार्य विश्वनाथ द्वारा उल्लिखित महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण करेगें।

1. **महर्षि वेदव्यास** रचित **'अग्निपुराण'** में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है–

सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत्।।
तादात्म्यमजहत्तत्र तत्समं नाति दुष्यति।
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम्।
शक्कर्यातिजगत्यातिशक्कर्या त्रिष्टुभा तथा।।
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्राभिजनैश्चारूभिः समैः।
मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम्।।
अतिशर्करिकाष्टिभ्यामेकसङ्कीर्णकैः परः।
मात्रयाप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः।।
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सताम्।
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्काश्रम पादपैः।।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपान रतोत्सवैः।
दूतीवचनविन्यासैर सती चरिताद् भूतैः।।
तमसा मरुताप्यन्यैर्विभावैरति निर्भरैः।
सर्ववृत्तिप्रवृत्तश्च सर्वभावप्रभावितम्।।
सर्वरीतिरसैः पुष्टं पुष्टङ्गुणविभूषणैः।
अत एव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः।।

वाग्वैदग्धप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।
पृथक्प्रयत्ननिर्वर्त्यं वाग्वक्रिम्णि रसाद्वपुः।।
चतुर्वर्गफलं विश्वग्व्याख्यातं नायकाख्यया।[1]

1. इस प्रकार अग्निपुराण में महाकाव्य का लक्षण निम्न प्रकार से है–

1. महाकाव्य सर्गबद्ध एवं संस्कृत भाषा में होना चाहिए।
2. महाकाव्य के स्वरूप का त्याग किए बिना जो रचना महाकाव्य के समान होती है, उसे दूषित नहीं मानना चाहिए।
3. काव्य की रचना इतिहास के आधार अथवा किसी सदाश्रय के आधार पर होनी चाहिए।
4. इसमें गुप्तमन्त्रणा, दूतप्रेषण, प्रयाण तथा युद्ध का वर्णन होना चाहिए।
5. महाकाव्य अधिक विस्तृत नहीं होना चाहिए।
6. इसमें शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा आदि तथा वक्त्र आदि अत्यन्त मनोहर तथा समवृत्तों के द्वारा महाकाव्य का निर्माण होना चाहिए।
7. प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए।
8. सर्ग अत्यन्त संक्षिप्त नहीं होने चाहिए।
9. अतिशक्वरी तथा अष्टि इनमें से एक छन्द का संकीर्ण (पूर्ण) होना चाहिए।
10. दूसरा छन्द मात्रिक छन्दों से पूर्ण (संकीर्ण) होना चाहिए।
11. पूर्व सर्ग की अपेक्षा अगला सर्ग अधिक प्रशस्त होना चाहिए।
12. अत्यन्त अल्प निन्दित कोटि का काव्य है उसमें सज्जनों का आदर नहीं होता है।
13. इसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रमा, सूर्य, आश्रम, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव, दूतीवचन विन्यास तथा कुलटा के चरित्र आदि का अद्भूत वर्णन होना चाहिए।
14. अन्धकार, वायु तथा रति को उद्दीप्त करने वाले अन्य विभावों से महाकाव्य युक्त होना चाहिए।
15. उसमें समस्त प्रकार की वृत्तियों का वर्णन होना चाहिए।
16. इसमें सम्पूर्ण रीतियों तथा रसों का वर्णन होना चाहिए।
17. महाकाव्य सम्पूर्ण गुणों तथा अलंकारों से परिपुष्ट होना चाहिए।
18. उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इस रचना को महाकाव्य तथा उसके प्रणेता को महाकवि कहना चाहिए।

---

1. अग्निपुराण–महर्षि वेदव्यास–व्याख्याकार–आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी–अध्याय : 337 श्लोक –24–34, पृ.सं.–732–733

19. महाकाव्य में वाणी की विचित्रता की प्रधानता होने पर ही रस उसका जीवन होता है।
20. महाकाव्य के स्वरूपसिद्धि सहजभाव से साध्य वक्रोतिविषयक रस से होनी चाहिए।
21. महाकाव्य का फल चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होनी चाहिए।
22. महाकाव्य नायक के नाम से ही विख्यात होना चाहिए।
23. महाकाव्य का निर्वाह समान छन्दों तथा वृत्तियों से किया जाना चाहिए।

2. भामह रचित 'काव्यालंकार' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं महताञ्च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्द्यमर्थ्यञ्च सालङ्कारं सदाश्रयम्।।
मन्त्र दूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धि मत्।।
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ।[1]

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिये।
2. उसमें महापुरुषों अथवा राजवंशीय विशिष्ट नृपों का विस्तार से वर्णन अपेक्षित है।
3. महाकाव्य में ग्राम्य शब्दार्थ का साहित्य, सालंकार एवं सद्वृत्तयुक्त नायक का वर्णन होना चाहिए।
4. मन्त्रणा, दूतसम्प्रेषण, यात्रा, युद्ध, नायक का अभ्युदय आदि का वर्णन होना चाहिए।
5. उसमें पाँच नाट्य–सन्धियों का समावेश होना चाहिए।
6. सर्गों का अत्यधिक विस्तार नहीं होना चाहिए।
7. पुरुषार्थ चतुष्टय का समावेश होना चाहिए जिसमें अर्थ पुरुषार्थ का विशेष वर्णन होना चाहिए।

---

1. काव्यालङ्कार– भामह–प्रथमपरिच्छेद– पृ.सं.–43–44, व्याख्याकार – डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी

8. उसमें लोकाचार एवं समस्त काव्यरसों से युक्त अनेक सर्ग हो, उसमें नायक को कुलपराक्रमशास्त्रज्ञानादि से मण्डित दिखाकर अन्य नायक या प्रतिनायक का अभ्युदय दिखाने की इच्छा से मुख्य नायक का वध नहीं बताना चाहिए।
9. यदि नायक समस्त कथानक में व्याप्य न रहे तो कथावस्तु में उसक अभ्युदयादि का प्रारम्भ में उपन्यसन एवं स्वतन निष्प्रयोजन रहता है।

3. काव्यादर्श में **दण्डी** प्रोक्त महाकाव्य लक्षण निम्नवत् है–

सर्गबन्धो महाकाव्य मुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमास्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।।
इतिहास कथोद्भतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्ग फलायतं चतुरोदात्तनायकम्।।
नगरार्णवशैत्भर्त्तु चन्द्रार्कोंदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडा मधुपानरतोत्सवैः।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि।।
अलंकृतमसंद्धिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रृत्वृत्तेः सुसन्धिभिः।।
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरूपेतं लोकरञ्जकम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति।।[1]

1. सर्गों के आधार पर रचित पद्यमयी रचना महाकाव्य कहलाती है।
2. महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक प्रकारों में से किसी भी प्रकार का मंगलाचरण किया जाना चाहिए।
3. ऐतिहासिक कथानक अथवा लोकप्रसिद्ध महापुरुष से सम्बन्धित कथानक पर आधारित महाकाव्य होना चाहिए।
4. चतुर्वर्ग पुरुषार्थ–धर्म, अर्ध, काम, मोक्ष को उद्देश्य मानकर महाकाव्य की रचना करनी चाहिए।
5. महाकाव्य का नायक सम्पूर्ण कलाओं में चतुर और उदात्त प्रकृति का होना चाहिए।

---

1. काव्यादर्शः आचार्य दण्डी , पृ.सं.–39–42

6. महाकाव्य में प्रसंग प्राप्त नगर, समुद्र पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान और जलक्रीड़ा, मद्यपान, रतोत्सव नायिका गत संयोग तथा वियोग, पुत्रजन्म मन्त्रणा, इतप्रेषण, रणयात्रा, युद्ध तथा नायक की विजय आदि का सुन्दर वर्णन करना चाहिए।
7. महाकाव्य की रचना बिल्कुल संक्षिप्त और रस तथा भावध्वनि से रहित नहीं होनी चाहिए।
8. सर्गों का अनावश्यक विस्तार नहीं होना चाहिए।
9. सुन्दर दोष रहित छन्द और मुख्य प्रतिमुख आदि सन्धियों का समावेश होना चाहिए।
10. सर्गान्त में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है इस प्रकार का महाकाव्य लोकरञ्जक और अमर होता है।

4. रुद्रट 'काव्यालङ्कार' में प्रबन्ध की चर्चा करते हुए महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार लिखते हैं–

तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः।
सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि।।
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः।।
तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसा च।।
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्।।
विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृतं च।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत्समयम्।।
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादिं साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद्गुणिनम्।।
स्वचरात्तद्दूताद्वा कुतोऽपि वा श्रृण्वतोऽरिकार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम्।।
समन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
त दापयेत्प्रयाणं इतं वा प्रेषयेन्मुखरम्।।
अथ नायकप्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रि नदीः।
अटवीकाननसरसीमरुजलधिद्वीपभुवनानि।।
स्कन्धावारनिवेशं क्रीडां यूनां यथायथं तेषु।

रव्यस्तमयं संध्यां सतमसमथोदयं शशिनः।।
रजनीं च तत्र यूनां समाजसंगीतपानशृङ्गारान्।
इति वर्णयेत्प्रसङ्गात्कथां च भूयो निबध्नीयात्।।
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि।।
योद्वव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीति निशि कलत्रेभ्यः।
स्ववधं विशङ्कमानान्संदेशान्दापयेत्सुभटान्।।
संनह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायक स्यान्ते।।
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरप्रकरणामि कुर्वीत।
संधीनपि संश्लिष्टांस्तेषमन्योन्यसंबन्धात्।।[1]

1. महाप्रबन्ध वे है जिनके विस्तार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का प्रयोग होता हो तथा सभी रसों और सभी काव्यस्थानों में चर्चित होना चाहिए।
2. लघु प्रबन्ध जिसमें चतुर्वर्ग में से एक का प्रयोग होना चाहिए लघु प्रबन्ध दो प्रकार का होता है। एक में तो अनेक रसों का प्रयोग होता है और दूसरे में एक ही रस का प्रयोग होता है।
3. महाकाव्य के प्रारम्भ में सुन्दर नगरी तत्पश्चात् उसमें नायक के कुल की प्रशंसा का वर्णन होना चाहिए।
4. मन्त्र, प्रभू और कोष शक्ति से सम्पन्न, सभी गुणों से युक्त, समस्त प्रजाओं को प्रिय विजयेच्छु नायक का वर्णन करना चाहिए।
5. सम्पूर्ण राज्य और राजधर्म का पालन करते हुए प्रसङ्गानुसार शरदादि ऋतुओं का वर्णन करना चाहिए।
6. नायक के प्रतिनायक को कुलीनों में अग्रगण्य और गुणवान् रूप में चित्रित करना चाहिए।
7. राजसभा में अपने प्रतिपक्षी इत अथवा अन्य शत्रु के कार्यों को सुनते हुए क्रोध से जले हुये नायक के चित्त एवं वाणी के क्षोभ का वर्णन करना चाहिए।
8. सचिवों के साथ मन्त्रणा करके शत्रु के ऊपर आक्रमण अथवा चतुर इत भेजना चाहिए।

---
1. काव्यालङ्कार : रुद्रट, श्रीरामदेव शुक्ल–अध्याय 16/5–19, पृ.सं. 415–419

9. नायक के प्रस्थान में नागरिकों के धैर्य, देश, पर्वत, नदी, अटवी, वन, तालाब, मरुस्थल, सागर, द्वीप, लोक आदि का वर्णन करना चाहिए।
10. कवि द्वारा पड़ाव, सूर्योस्त, अन्धकार और चन्द्रोदय का वर्णन करना चाहिए।
11. रात्रि, संगीत, पान–गोष्ठी और शृङ्गार का प्रसङ्गानुकूल वर्णन करना चाहिए जिसे कथा का प्रभूत विस्तार हो सके।
12. नायक के समान प्रतिनायक का वर्णन तथा नगरी को घेरने का वर्णन करना चाहिए।
13. 'प्रातःकाल युद्ध करना है' इस कारण से मृत्यु की शंका करने वाले सैनिकों द्वारा रात में स्त्रियों के लिए मदिरा पान का संदेश दिलवाना चाहिए।
14. निश्चिन्त होकर युद्ध करते समय दोनों में से परिणाम में नायक की बड़ी कठिनाई के साथ सुन्दर चित्रण करना चाहिए।
15. महाकाव्य में परस्पर संबद्ध, संश्लिष्ट संधियों की तथा अवान्तर प्रकरणों की सर्गबद्ध रचना करनी चाहिए।

5. **विद्यानाथरचित "प्रतापरुद्रयशोभूषण"** ग्रन्थ में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार उपलब्ध होता है–

नगरार्णवशैलर्त्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनम्।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः।।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्चकुमारोदयवर्णनम।
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदया अपि।
एतानि यत्र वर्ण्यन्ते तन्महाकाव्यमुच्यते।।[1]

इस प्रकार विद्यानाथ द्वारा निरुपित महाकाव्य का लक्षण निम्न प्रकार से है–

1. महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रमोदय, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव आदि का वर्णन होना चाहिए।
2. इसमें नायिकागत संयोग तथा वियोग, पुत्रजन्म मन्त्रणा, दूतप्रेषण, रणयात्रा युद्ध तथा नायक की विजय आदि का सुन्दर वर्णन करना चाहिए।
3. इन सबका वर्णन होने पर ही उसको महाकाव्य कहा जाना चाहिए।

1. प्रतापरुद्रयशोभूषण–विद्यानाथ–काव्यप्रकरण, पृ.सं.–96

विधानाथ द्वारा प्रोक्त महाकाव्य लक्षण आचार्य दण्डी के महाकाव्य लक्षण से समानता रखता है।

6. कविराज विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए तथा यत्र तत्र नवीन लक्षणों या तत्वों का निर्देश करते हुए मौलिकता से युक्त महाकाव्य का लक्षण प्रतिपादित किया है। इन्होंने महाकाव्य में वस्तु, नेता रस की दृष्टि से अग्रलिखित विशेषताओं को प्रमुख स्थान पर लिखा है– जैसे

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।।
सब्दशंः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एववंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽऽगी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्धा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्नन्दा खलादीनां सतां च गुणकीतनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।
संध्यासूर्यैन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयमन्त्रपुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायक स्येतरस्य वा।।
नामास्य, सर्गोयादेयकथया सर्गनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः।।

छन्दसा स्कन्धकेनैतत्कवचिद् गलितकैरपि।।

अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन्सर्गाः कुडवकाभिधाः।

तथापभ्रंशयोग्यानिच्छन्दांसि विविधान्यपि।।[1]

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए।
2. उसका एक नायक होना चाहिए, जो देवता हो अथवा धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय भी हो सकता है तथा एक वंश के अनेक कुलीन क्षत्रिय राजा भी नायक हो सकते है।
3. श्रृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस प्रधान होना चाहिए तथा अन्य सभी रस उसके सहायक (अंगभूत) होते है। नाटक सन्धियाँ रहती है।
4. पौराणिक आख्यान (कथा) या ऐतिहासिक कथानक का उल्लेख होना चाहिए। सज्जनों के चरित्र का चित्रण भी इसका कथानक हो सकता है।
5. उसमें पुरुषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष में से किसी एक के फल की कामना का उद्देश्य होना चाहिए।
6. महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का विधान होना चाहिए।
7. कहीं सज्जनों की प्रशंसा व दुष्टों की निन्दा का वर्णन होना चाहिए।
8. न तो अत्यन्त छोटे और न अत्यन्त बड़े ही सर्ग होने चाहिए। सर्गों की संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए।
9. प्रत्येक सर्ग के कथानक को एक ही प्रकार के छन्दों में होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए।
10. किसी–किसी सर्ग में अनेक छन्दों का वर्णन भी हो सकता है।
11. सर्ग की समाप्ति में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए।
12. इसमें सन्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातकाल, मध्याह्नकाल, शिकार, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, विजय, जलक्रीड़ा, वन–विशद पुत्र जन्मोत्सवादि विभिन्न विषयों का यथास्थान सांगोपांग वर्णन करना चाहिए।
13. उसका नाम कवि के नाम से (माघ) या चरित्र के नाम से अथवा चरित्रनायक के नाम से (रघुवंश) होना चाहिए।

---

1. साहित्य दर्पण–षष्ठपरिच्छेद–कारिका संख्या 315–327

14. कवि–निबद्ध छन्द के अनुसार अथवा नायक के नाम के अनुसार अथवा सर्ग की कथा के अनुकूल प्रत्येक सर्ग का नामकरण करना चाहिए।
15. आर्ष काव्य में सर्गों का नाम 'आख्यान' होता है।
16. प्राकृत काव्यों में सर्गों का नाम 'आश्वास' होता है।
17. अपभ्रंश–भाषा के काव्यों में सर्गों का नाम 'कुडवक' होता है और छन्द भी अपभ्रंश के योग्य अनेक प्रकार के होते है।
18. महाकाव्य के लेखन की उद्देश्य, धर्म तथा न्याय की विजय तथा अधर्म व अन्याय की पराजय का होना चाहिए

(ii) अर्वाचीन महाकाव्य लक्षण

आधुनिक काव्यशास्त्रियों ने भी युगोचित महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है जिनमें अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी तथा रहसबिहारी द्विवेदी प्रमुख है। इन आधुनिक काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त लक्षण निम्नवत् है–

1. **अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत 'अभिराजयशोभूषण'** में प्रतिपादित महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार उपलब्ध होता है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं लोकवन्द्यजनाश्रयम्।
ख्यापयद्विश्वबन्धुत्वं स्थापयद्विश्वमङ्गलम्।।
नायकस्तत्र देवः स्यात्प्रजाबन्धुरथो नृपः।
चारुचर्योऽथवा कोऽपि सज्जनश्चरितोज्ज्वलः।।
प्रातस्सन्धानिशीथेन्दुभास्करोदयतारकाः।
वनोद्यानदीसिन्धुप्रपाताद्रिबलाहकाः।।
ग्रामाश्रमपुराऽऽरामदुर्गसैन्यरणोद्यमाः।
पुत्रजन्मादिवृत्तान्ताः पामरावाससङ्कथा।।
इतिवृत्तानुरोधात्तु वर्णनीया न चाऽन्यथा।
प्रसह्य वर्णने तेषां न च तृप्तिर्न वा यशः।।
यच्छिवं यच्च सत्यं स्यादथवा लोकमङ्गलम्।
वर्णनीयं प्रकल्प्यापि कथांशीकृत्य सादरम्।।
सर्गा अष्टाधिकाः सन्तु कथाविस्तृति सम्मताः।
अष्टत्रिगुणतां यावत्सर्गसंख्या प्रधीयसी।।

नोद्वेगः कविना कार्यः पाठकानां रसात्मनाम्।
सर्गसंख्यादिविस्तारैर्वर्णनैर्वाऽनपेक्षितैः।।
लोकवृतं न हातव्यं मूलवृत्तोपकारकम्।
लोकचित्रणगर्भं हि महाकाव्यं महीयते।
त्रयाणां पुरुषार्थानां कश्चिदेको भवेद्ध्रुवम्।
महाकाव्यफलं रम्यं धर्मकामार्थ सम्मतम्।।
श्रृंगारवीरशान्तानां कश्चिन्दन्यतमो रसः।
सयत्नमङ्गीकर्तव्यः कविना प्रतिभावता।।
छन्दोऽलङ्गार सन्दर्भा भूरिवैविध्यमण्डिताः।
महाकाव्ये प्रयोक्तव्या भावुकानां प्रतुष्टये।।
लोकोत्तरगुणादर्शः पुरुषो नायको भवेत्।
महीयसी पुरन्ध्री वा नाऽत्र कार्या विचारणा।।
कथावैशिष्ट्यमालक्ष्य समज्ञां नायकस्य वा।
करणीयं महाकाव्यस्याभिधानं यशस्करम्।।
प्रतिष्ठापयितुं नूत्नं महाकाव्ये स्वयं कविः।
आचार्यप्रतिभो नूनं यदि वा भवति क्षमः।।[1]

1. लोकवन्द्यनायक पर आश्रित, विश्वबन्धुत्व तथा विश्वमङ्गल की स्थापना करने वाला सर्गबद्ध महाकाव्य होना चाहिए।
2. उसका नायक देवता, प्रजावत्सल राजा अथवा समुज्ज्वल चरितवान् तथा सौम्य आचरण युक्त सत्पुरुष होना चाहिए।
3. उसमें प्रातः, सन्ध्या, अर्धरात्रि, चन्द्रोदय, सूर्योदय, नक्षत्रोदय, वन, उद्यान, नदी, सागर, प्रपात, पर्वत, मेघ, गाँव, आश्रम, नगर, आराम, दुर्ग, सैन्य, रणप्रयाण तथा पुत्रजन्मादि के वृतान्त एवं झोपड़ियों की आपबीती का वर्णन होना चाहिए।
4. महाकाव्य के इतिवृत्त के अनुरोध को दृष्टि में रखकर ही वर्णित करना चाहिए, किसी अन्यरूप में नहीं। उनका जबर्दस्ती वर्णन करने से न तो पाठकों को तृप्ति होगी और न ही कवि को यश प्राप्त होगा।
5. जो लोककल्याणकारी, सत्य अथवा लोकमंगलकार हो, ऐसी घटनाओं को कल्पना करके मूलकथा का अंश बनाकर वर्णन करना चाहिए।

---

1. अभिराजयशोभूषणम्—अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ.सं.—218—221

6. सर्ग आठ से अधिक चौबीस तक सर्ग संख्या उचित मानी जायेगी तथा कथा का विस्तार सानुपातिक होना चाहिए।
7. रसानुभूति के लिए उत्कण्ठित पाठकों का कवि द्वारा सर्गसंख्यादि का विस्तार तथा अप्रांसगिक वर्णनों द्वारा उद्वेग नहीं किया जाना चाहिए।
8. मूल कथा का उपकार करने वाले लोकवृत्तों का परित्याग नहीं करना चाहिए लोकचित्रण के प्रयोग से महाकाव्य प्रशंसनीय होता है।
9. धर्म, अर्थ, काम–इन तीन पुरुषार्थों में से कोई एक महाकाव्य का फल (लक्ष्य) होना चाहिए।
10. कवि द्वारा शृङ्गार, वीर एवं शान्त में से किसी एक को महाकाव्य का अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए।
11. महाकाव्य में छन्दों एवं अलंकारों का पाठकों की हार्दिक तुष्टि के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।
12. लोकोत्तर गुणवान् एवं उच्च आदर्शों वाला कोई पुरुष नायक होना चाहिए या फिर कोई महीयसी महिला। इस सन्दर्भ में (स्त्री, पुरुष होने का) विचार नहीं करना चाहिए।
13. कथा की विशेषता अथवा नायक की कीर्ति को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य का यशस्कर नाम रखना चाहिए।
14. अथवा आचार्य सरीखी प्रतिभा वाला कवि निश्चित रूप से स्वयमेव (अपने महाकाव्य में) कुछ भी अभिनव (विलक्षण) प्रतिष्ठ करने में समर्थ होता हैं

2. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी रचित 'अभिनवकाव्यालंकार सूत्र' में कवि ने सूत्रशैली में महाकाव्य का लक्षण निरुपित करते हुए कहा है–

पद्यात्मकं समग्रजीवननिरूपणपरं महाकाव्यम्।
गीतैतिह्यपुराणलोककथाभेदादस्य नानात्वम्।।[1]

आचार्य त्रिपाठी जी कहते हैं कि पद्यात्मक और समग्रजीवन का निरुपण करने वाला महाकाव्य कहलाता है। गीता, ऐतिह्य, पुराण, लोककथा आदि के भेद से यह अनेक प्रकार का होता है।

3. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी ने 'दूर्वा द्वितीयोन्मेष' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार निरुपित किया है–

1. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.सं.–325

सर्गैर्वृत्तैश्च बद्धं सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थरम्यं
संवादैश्चोच्चशिल्पैः सततरसमयं ग्रन्थिमुक्तं समृद्धम्।
पात्रं स्याद् यस्य मुख्यं परमगुणयुतं लोकविख्यातवृत्तं
भव्यं लोकस्वभावं महदपि महतां तन्महाकाव्यमास्ते।।[1]

1. महाकाव्य सर्गों व छन्दों में निबद्ध होना चाहिए।
2. सहृदयों के हृदयों के लिए आह्लादकारी शब्द व अर्थ से रमणीय, संवादों व उच्चकोटि के शिल्प से सतत समय, ग्रन्थियों से मुक्त, समृद्ध होना चाहिए।
3. मुख्य पात्र (नायक) श्रेष्ठगुणों से युक्त होना चाहिए।
4. महाकाव्य में लोकविख्यात कथावस्तु होनी चाहिए।
5. महाकाव्य लोकस्वभाव से युक्त होना चाहिए।

(iii) लक्षणों का तात्त्विक विश्लेषण

प्राचीन महाकाव्य लक्षण और आधुनिक महाकाव्य के लक्षणों को देखने के पश्चात् हम यह पाते हैं कि महाकाव्य में निम्न तत्त्वों का होना आवश्यक है–

दोनों परम्पराओं के अनुसार–

1. महाकाव्य सर्ग बद्ध होना चाहिए।
2. इसमें पुरुषार्थ चतुष्टय की फल की कामना का उद्देश्य होना चाहिए।
3. इसमें शृङ्गार, वीर अथवा शान्त में से किसी एक को अङ्गीरस के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए।
4. इसमें छन्द और अलंकारों का प्रयोग होना चाहिए।
5. महाकाव्य का नायक देवता, राजा या उज्ज्वल चरित्रवान् सत्पुरुष होना चाहिए।
6. महाकाव्य नायक के नाम से विख्यात होना चाहिए।
7. इसमें सर्ग संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए।
8. महाकाव्य अतिविस्तृत नहीं होना चाहिए।
9. महाकाव्य में सर्ग अत्यधिक बड़े और अत्यधिक छोटे नहीं होने चाहिए।

---

1. दूर्वा द्वितीयोन्मेष–डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी, पृ.सं.– 93/दूर्वा

10. महाकाव्य में प्रातः सन्ध्या, चन्द्रोदय, वन, उद्यान, समुद्र, पर्वत, आश्रम, नगर, सैन्य, रणप्रयाण तथा पुत्रजन्मादि का वर्णन होना चाहिए।

11. महाकाव्य की रचना इतिहास के आधार पर अथवा किसी सदाश्रय के आधार पर तथा लोकविख्यात कथावस्तु होनी चाहिए।

अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने जो महाकाव्य का लक्षण किया है। उन्होंने महाकाव्य के लक्षण में निम्न तत्त्वों को सम्मिलित किया है तथा कुछ तत्त्वों को सम्मिलित (परिगणित) नहीं किया है।

1. महाकाव्य में सर्ग संख्या आठ से अधिक (आठ की तिगुनी) चौबीस तक उचित हो सकती है।
2. महाकाव्य का नायक उच्च आदर्शों वाला पुरुष या फिर कोई महीयसी महिला भी हो सकती है।
3. महाकाव्य में तीन पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम) में से एक की फल प्राप्ति का वर्णन होना चाहिए।
4. महाकाव्य के सर्गान्त में छन्द परिवर्तन का वर्णन नहीं किया है।
5. इसमें पाँच नाट्य सन्धियों के समावेश का भी वर्णन किया गया है।
6. नायक के समान प्रतिनायक के वर्णन का उल्लेख नहीं किया है।
7. नायिकागत संयोग तथा वियोग पर भी ध्यान नहीं दिया है।
8. इसमें दूतप्रेषण, ऋतु के वर्णन का उल्लेख नहीं किया है।
9. इसमें रीति और गुणों के वर्णन पर भी ध्यान नहीं दिया है।
10. महाकाव्य संस्कृत भाषा में होना चाहिए इसका भी उल्लेख नहीं है।
11. महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग का नामकरण करना चाहिए इसका भी अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने निरुपण नहीं किया है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि प्राचीन एवं अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षण में विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता है। आधुनिक काव्यशास्त्रियों में अभिराज राजेन्द्र जी ने नायिका महीयसी महिला पात्र भी हो सकती है तथा सर्गों की संख्या आठ की तिगुनी हो सकती है, केवल यही नवीन तथ्य लक्षण में निबद्ध किया है।

(ii) वस्तुविभाजन

सर्वप्रथम अन्वेषित व अधीत किए गए महाकाव्य के लक्षणों में से महाकाव्य के इतिवृत्त का विश्लेषण करेंगे–

इतिवृत्त – काव्यशास्त्रीय आचार्यों द्वारा दिए गए महाकाव्य लक्षणानुसार महाकाव्य का इतिवृत्त इतिहास प्रधान अथवा परिकल्पना पर आधारित लोककल्याणकारी घटनाओं से सम्बद्ध होना चाहिए।

उपर्युक्त लक्षण की दृष्टि से "भीष्मचरितम्" महाकाव्य का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि महाकवि ने वेदव्यास विरचित महाभारत के कथानक को आधार बनाकर भीष्मचरितम् महाकाव्य की रचना की है, परन्तु इस प्राचीन कथा में महाकवि ने अपनी प्रतिभा एवं कल्पनाशक्ति से अनेक परिवर्तन कर विलक्षणता का प्रतिपादन किया है। संस्कृत साहित्य में प्राक्काल से लेकर अर्वाचीनकाल तक महाभारत को उपजीव्य मानकर अनेक ग्रन्थों की रचना रचनाकारों द्वारा की जा रही है। इसी क्रम में डॉ. हरिनारायण दीक्षित जी ने भी सम्पूर्ण घटना को अपनी नवीन उद्भावनाओं से सजोंकर भीष्मचरितम् महाकाव्य की रचना की है। महाकाव्य के इतिवृत्त का मूलाधार महाभारत की कथा होने पर भी कवि के कल्पनाशक्ति के मिश्रण के कारण यह पूर्णतया ऐतिहासिक न होकर मिश्रित श्रेणी का महाकाव्य है। महाकाव्य का कथानक पुरातन होने पर भी महाकवि ने उसमें नूतनता का संचार किया है।

सर्ग व नामकरण – महाकाव्य के लक्षणानुसार किसी भी महाकाव्य का निबन्धन सर्गों में होना चाहिए व सर्गों की संख्या आठ से लेकर चौबीस तक होनी चाहिए। इस नियम के अनुसार भीष्मचरितम् महाकाव्य का निबन्धन भी महाकवि द्वारा बीस सर्गों में किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कथा के अनुसार ही सर्ग का नामकरण भी किया गया है।

भीष्म पितामह (देवव्रत) की माता के स्वर्ग सिधारने से सम्बन्धित प्रथम सर्ग को **"जननी–वियोग"** की संज्ञा दी गई है। देवव्रत की शिक्षा प्राप्त करने से सम्बन्धित द्वितीय सर्ग **"विद्याप्राप्ति"** नामक है। राजकुमार देवव्रत के अध्ययनपूर्ण होने से सम्बन्धित तृतीय सर्ग का नाम **"दीक्षान्त–समारोह"** है। राजकुमार देवव्रत के धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्ति से सम्बद्ध विशिष्ट गुरु परशुरामजी की प्राप्ति वाला चतुर्थ सर्ग **"विशिष्ट गुरुप्राप्ति"** नामक है। राजकुमार देवव्रत को गुरु परशुरामजी ने सम्पूर्ण दीव्यास्त्रों की शिक्षा दी। अतः **'दिव्यास्त्रप्राप्ति'** नामक पञ्चम सर्ग है। देवव्रत को गुरु परशुरामजी से धनुर्वेद की शिक्षा दी। अतः **'धनुर्विद्याप्राप्ति'** नामक छठा सर्ग है। राजा शान्तनु द्वारा राजकुमार देवव्रत का राज्याभिषेक कर वन भ्रमण से सम्बन्धित सर्ग **"वनविहार"**

संज्ञक सातवाँ सर्ग है। आठवें सर्ग का नाम **"वियोगवर्णन"** है। चूँकि वन विहार करने पर शान्तनु का सत्यवती से मिलन और राजा शान्तनु द्वारा सत्यवती से विवाह हेतु दाशराज से विवाह प्रस्ताव रखना तथा दाशराज द्वारा विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करने के कारण राजा शान्तनु का वियोग वर्णन है। दाशराज के समक्ष राजकुमार देवव्रत द्वारा जीवनपर्यन्त अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करने के कारण नौवें सर्ग का नामकरण **"भीष्मप्रतिज्ञा"** है। राजा शान्तनु और सत्यवती के विवाह मिलन तथा राजकुमार देवव्रत को माता सत्यवती की प्राप्ति से सम्बन्धित दशवाँ सर्ग **"विमातृलाभ वर्णन"** नामक है। राजा शान्तनु और सत्यवती को दो पुत्रों की प्राप्ति तथा राजकुमार देवव्रत को दो भाईयों की प्राप्ति होने से ग्याहरवाँ सर्ग **"अनुजद्वयलाभ वर्णन"** नामक है। माता सत्यवती की आज्ञा से भीष्म पितामह द्वारा स्वयंवर से काशीनरेश की कन्याओं का अपहरण कर लाने एवं भाई विचित्रवीर्य के विवाह कराने से युक्त होने के कारण **"विचित्रवीर्यविवाहवर्णन"** नामक बाहरवाँ सर्ग है। कौरवों द्वारा सदैव पाण्डवों से ईर्ष्या रखने के कारण, कौरव पाण्डवों में सदैव कलह (विवाद) होने के कारण तेहरवें सर्ग का नामकरण **"कौरवपाण्डवकलहवर्णन"** नामक है। महाभारत युद्ध में कौरव सेनापति भीष्म पितामह द्वारा लगातार घोर पराक्रम दिखाते हुए शिखण्डी को सामने (पूर्वजन्म की स्त्री) देखकर शस्त्रास्त्र त्यागने के कारण दशवें दिन बाणों की शय्या पर होने के कारण **"भीष्मशरशय्यावर्णन"** नामक चौहदवाँ सर्ग है। पन्द्रहवें सर्ग में पाण्डवों द्वारा कौरव पक्ष के महारथियों धुष्टद्युम्न, दुःशासन, कर्ण, शल्य, शकुनि, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि से युद्ध होने के कारण सर्ग का नामकरण कवि ने **"महाभारतयुद्धवर्णन"** किया है। श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म पितामह की वेदना का निराकरण किए जाने के कारण सोलहवें सर्ग का नामकरण **"खेदनिरासवर्णन"** है। सत्रहवें सर्ग में पाण्डवों को पितामह भीष्म राजधर्म का उपदेश देते हैं अतः सर्ग का नाम **"राजधर्म –वर्णन"** है। अठारहवें सर्ग में पितामह भीष्म युधिष्ठिरादि को प्रजाधर्म की शिक्षा देते है अतएव सर्ग का नामकरण **"प्रजाधर्मवर्णन"** किया गया है। उन्नीसवें सर्ग में पितामह भीष्म द्वारा पाण्डवों को मोक्ष मार्ग बताने के कारण सर्ग का नामकरण **"मोक्षधर्मवर्णन"** है। बीसवें सर्ग में सूर्य के उत्तरायण होने पर पितामह भीष्म अपने प्राणों का परित्याग करते है अतः सर्ग का नाम **"महाप्रयाणवर्णन"** है।

महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की कथा के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि कवि ने सभी सर्गों में भीष्म पितामह के जीवन की विविध घटनाओं का वर्णन किया है। इसी आधार पर महाकाव्य का नामकरण किया गया है क्योंकि काव्यशास्त्रीय आचार्यों का भी यही मत है कि महाकाव्य का नामकरण कथा के वैशिष्ट्य अथवा नायक/नायिका के आधार पर ही होना चाहिए। अतः यहाँ दोनों ही दृष्टियों से महाकाव्य का नामकरण **"भीष्मचरितम्"** महाकवि ने किया है ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है।

मङ्गलाचरण – महाकाव्य का प्रारम्भ देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तुनिर्देश में से किसी एक मङ्गलाचरण से होना चाहिए।

कवि ने इस परम्परा का निवर्हन तो किया है। किन्तु मङ्गलाचरण में कवि ने अपने महाकाव्य में देवाधिदेव शंकर, सरस्वतीदेवी तथा पार्वतीपुत्र गणेशजी की वन्दना के साथ अपने गुरु विद्यानन्द सरस्वती महाराज को सिर झुकाकर प्रणाम किया है। जबकि प्रायः महाकाव्यों में महाकवियों ने मङ्गलाचरण में अपने केवल एक ही ईष्ट देवी या देवता का स्मरण ग्रन्थारम्भ में किया है। कवि की यह विलक्षणता विशेष दर्शनीय है कि कवि ने अपने गुरु के प्रति भक्ति को प्रमाणित करने के लिए गुरु वन्दना की है। प्राचीन महाकाव्यों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। गुरु नमस्कार की परम्परा कविकृत् नवीन सर्जना है।

सर्वप्रथम महाकवि ने अपने महाकाव्य के प्रारम्भ में सरस्वती देवी को प्रणाम किया। यथा–

नमामि देवीं वरदायिनीं शुभां
परायणा भक्तजनार्त्तिनाशने।
शरीररक्षां विदधाति मामकीं
दयावती स्नेहवती च सा सदा।।[1]

तत्पश्चात् महाकवि ने देवादिदेव शङ्कर भगवान को प्रणाम किया है। यथा–

उमापतिं स्तोतृजनार्तिहारकं
सदाशुतोष विधिविष्णुवन्दितम्।
महाधिदेव शिवरात्रिपूजितं
नमामि शम्भु कविबुद्ध्यवाप्तये।।[2]

कवि पुनः सरस्वती देवी को प्रणाम कर पार्वतीपुत्र गणेशजी की वन्दना करते है। यथा–

उमासुतं विघ्नविनाशकर्मठं
गणेशनाम्ना प्रथितं महीतले।
दयानिधिं बन्धुवरं विनायकं
नमामि भक्त्या कविकर्मपूर्त्तये।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–1/1
2. तत्रैव–1/2
3. तत्रैव–1/4

महाकवि ने सबके अन्त में गुरू को नमस्कार कर नवीन परम्परा को जन्म दिया है। यथा–

कृपा यदीया मयि वर्तते सदा
सदा च यो रक्षति मामनिष्टतः।
गुरुं स्वकीयं तमहं दिवङ्गतं
नमामि मूर्ध्ना कविकर्मसिद्धये।।[1]

इतिवृत्त के अन्य तत्त्व

महाकाव्य के लक्षण में काव्यशास्त्रियों ने सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, दिन, प्रातःकाल, पर्वत, ऋतु, वन, नगर, संग्राम, यात्रा, विवाह, रतोत्सव, मध्यान्ह, मधुपान, जलक्रीड़ा, उपवनविहार, पुत्रजन्म, संभोग, वियोग आदि के वर्णन का उल्लेख किया है। इन तत्त्वों के आधार पर प्रस्तुत महाकाव्य के इतिवृत्त का विश्लेषण करेंगे–

पर्वत – महाकवि ने महाकाव्य के चौथे व पाँचवें सर्ग में महेन्द्र पर्वत का वर्णन किया है। राजकुमार परशुराम जी के आश्रम को जाते समय मार्ग में महेन्द्रपर्वत का उल्लेख कवि ने किया है। इस पर्वत के चहचहाते हुए पक्षियों और पेड़ों से टपकते हुए फूलों ने राजकुमार का स्वागत किया–

शब्दायमानैर्विहगैस्तदानीं
पुष्पैः पतद्भिश्च महीरूहेभ्यः।
महेन्द्रनामा कुलपर्वतोऽसौ
सुस्वागतं चक्र इवादसीयम्।।[2]

नद–नद वर्णन के अन्तर्गत महाकवि ने शीतल एवं सुगन्धित जल युक्त झील को 'अमृत' कहा है–

सुगन्धि शीतं सलिलं तदीयं
पपौ स पस्पर्श मुहुर्मुहुश्च।
मतौ तदा तस्य समाजगाम
नूनं सुधायाः सरसीयमस्ति।।[3]

आश्रम – महाकवि ने पांचवे सर्ग में परशुरामजी के आश्रम का वर्णन किया। इसी आश्रम में रहकर देवव्रत ने सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों को ग्रहण किया। दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के पश्चात् आश्रम से विदा हुए–

1. भीष्मचरितम्–1/5
2. तत्रैव–4/34
3. तत्रैव–4/40

गुरुचरणपरागं धारयित्वा ललाटे

नयनकमलयोः सन्धारयन्नश्रुबिन्दून्।

निज–जनक–दिदृक्षा–शृखला–बद्धचेताः

कथमपि गुरुपार्श्वात्प्रस्थितो राजसूनुः।।[1]

नगर – नगर वर्णन के सन्दर्भ में कवि ने हस्तिनापुरी का वर्णन किया है। कवि ने हस्तिनापुर की सुन्दरियों तथा सुन्दरियों द्वारा राजकुमार देवव्रत को देखने की उत्कण्ठा का भी चित्रण छठें सर्ग में किया है–

ततो द्वितीयेऽहनि हस्तिनापुरी

सुसज्जिताभूच्च मुदान्विता तथा।

कुमारमालोकयितुं समुत्सुका

बभौ तदा वासकसज्जिका यथा।।[2]

नदी – महाकवि ने नदी का वर्णन भी महाकाव्य के सातवें सर्ग में किया है। कालिन्दी व यमुना नदी का चित्र कवि ने उपस्थित किया है। उन्होंने यमुना को गङ्गानदी की छोटी बहिन जैसी बताया है। यमुना नदी का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं–

उदितवीचिकरा यमुनानदी

तटविहङ्गमनादवचाः शुभा।

सदकरोदिव शान्तनुमागतं

भवति कुत्र सतां न समादरः?।।[3]

वनविहार – महाकवि ने सातवें सर्ग का नामकरण ही वनविहार किया है। इस सर्ग में जब देवव्रत का राज्याभिषेक किया गया, उस समय शान्तनु को अपनी पत्नी गंगा की याद आ गयी और वे दिल बहलाने के लिए वन विहार को गये लेकिन वन का प्रकृतिस्थ सौन्दर्य भी उनके मन को शान्ति प्रदान नहीं कर सका–

प्रियतमास्मरणाकुलमानसो

नहि वने सुखमाप महीपतिः।

सुखकरी प्रकृतिर्विरहे रिपुर्–

भवति नात्र मनागपि संशयः।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–5/52
2. तत्रैव–6/20
3. तत्रैव–7/28
4. तत्रैव–7/25

विवाह – प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि ने सत्यवती–शान्तनु के विवाह का वर्णन दसवें सर्ग में तथा तेरहवें सर्ग में द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों का विवाह व उत्तरा अभिमन्यु के विवाह का वर्णन किया है–

ततोऽनुरक्तौ तु परस्परं तौ
कृत्वा विवाहं विधिपूर्वकं दौ।
देवव्रतत्यागफलं रताख्यं
दिवानिशं सेवितुमारभेताम्।।[1]

रामकृष्णोपस्थितौ
द्रौपदीपाण्डवविवाहो बभूव।
पाण्डुसुताभ्युदयोऽयं
व्यथयामास धृतराष्ट्रसुतान्।।[2]

पुत्रजन्म – ग्याहरवें सर्ग में महाकवि ने सत्यवती–शान्तनु से उत्पन्न चित्राङ्गद व विचित्रवीर्य के जन्म का वर्णन पूरे सर्ग में किया–

अथैकदा सत्यवती सुखेन
द्वितीयपुत्राय समुज्ज्वलाय।
ददौ शुभं जन्म दिनावसाने
पूर्णाय चन्द्राय च पूर्णिमेव।।[3]

सेना – महाकाव्य के चौदहवें सर्ग में महाकवि ने कौरव–पाण्डव की सेनाओं का चित्रण किया है। कवि ने कौरव–पाण्डवों की सेनाओं को खिलाड़ियों की दो टोली की तरह बताया है–

अग्रे च पश्चात्पदमादधाने
जयश्रियं स्वां दिशमाहरन्त्यौ।
क्रीडार्थिपाल्याविव ते अभातां
समाचरन्त्यावथ रज्जुकर्षम्।।[4]

संग्राम – महाकवि ने पन्द्रहवें सर्ग में महाभारत के महासंग्राम का वर्णन किया है। इस सर्ग में कवि ने धुष्टद्युम्न, दुःशासन, कर्ण, शल्य, शकुनि, दुर्योधन, अश्वत्थामा के साथ पाण्डवों के युद्ध का

---

1. भीष्मचरितम्–10 / 26
2. तत्रैव–13 / 35
3. तत्रैव–11 / 34
4. तत्रैव–14 / 41

विशद वर्णन किया है। युद्ध में अश्वारोही, गजारोही, रथारोही और पदाति के युद्ध का वर्णन किया है–

अश्वाधिरूढास्तुरगेषु संस्थितैः

गजाधिरुढा गजपृष्ठशोभितैः।

रथाधिरुढा रथिभिश्च पत्तयः

पदातिभिर्युद्धरता विलोकिताः।।[1]

रतोत्सव – महाकवि ने दशवें सर्ग में शान्तनु और सत्यवती के रतोत्सव का वर्णन किया है। रतोत्सव के प्रसंग में कामसूत्र में उल्लेखित आलिङ्गन, उपगूहन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत का विशद विवेचन किया है। महाकवि ने कामसूत्र में निरूपित आलिङ्गन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत आदि प्रकारों का नामसहित उल्लेख किया है–

रसातिशय्येन नखक्षतानि

दन्तक्षतान्यातुरताकृतानि।

अवर्धयन्भोगतृषं क्रमेण

वेगं विलासे च तयोरकार्षुः।।[2]

चन्द्रमा व सन्ध्या – प्रस्तुत महाकाव्य के आठवें सर्ग में महाकवि ने रात्रि, सन्ध्या का वर्णन भी यथावसर किया है। आठवें सर्ग में रात्रि, चन्द्रमा का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। राजा शान्तनु द्वारा रात्रि में अपनी प्रियतमा को स्मरण करने का वर्णन किया है–

खे खेलन्तं नयनसुभगं पौर्णमासीनिशायां

चन्द्रं दृष्ट्वा नृपनयनयोरागतं वल्लभास्यम्।

स्मारं स्मारं तदतिललितं दुर्लभ चानुचिन्त्य

स्वैरं स्वैरं बत नरपतेः श्वासवेगो विवृद्धः।।[3]

सूर्योदय व प्रातः – कवि ने सूर्योदय को नैत्यिक कर्म करके युधिष्ठिरादि चित्तोपयोगी सामग्री लेकर भीष्म पितामह के पास पहुँचने का वर्णन बीसवें सर्ग में किया है–

---

1. भीष्मचरितम्–15 / 10
2. तत्रैव–10 / 34
3. तत्रैव–8 / 10

ततः प्रभाते कृतनित्यसंस्क्रियः

पुरोहितान् बन्धुजनांश्च पावकान्।

सम्भारभादाय चितोचितं तथा

भीष्मोपकण्ठे गतवान् युधिष्ठिरः।।[1]

वर्षाऋतु – महाकवि ने प्रस्तुत महाकाव्य के आठवें सर्ग में वर्षा ऋतु का वर्णन किया है। राजा शान्तनु सत्यवती की याद में कामदेव की अवस्था में होने पर उनको सताने के लिए वर्षाकाल ने अवसर पाकर घेर लिया–

याते कालेऽपि च बहुतिथे राजकार्यावृतोऽपि

रम्भोरुं तामसितनयनां नो विसस्मार भूपः।

कामावस्थं व्यथयितुममुं शत्रुवत्प्राप्य कालं

वर्षाकालस्सजलदबलस्तत्पुरीमाजगाम।।[2]

यज्ञ – तेरहवें सर्ग में महाकवि ने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर के द्वारा इन्द्रप्रस्थ नामक नगर में रहते हुए भाईयों की सहायता से किए जाने वाले राजसूय यज्ञ का उल्लेख किया है–

धर्मात्मा युधिष्ठिरः

सुखयामास प्रजा निजा अनिशम्।

कालेन राजसूयं

यज्ञं चकार सानुजोऽसौ।। [3]

इस प्रकार विवेच्य महाकाव्य के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य ने निर्दिष्ट काव्य लक्षणों का अनुसरण किया है।

---

1. भीष्मचरितम्–20/4
2. तत्रैव–8/1
3. तत्रैव–13/45

(iii) नेता–पात्रों का चरित्र चित्रण

जैसा कि प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने काव्य के लक्षण में उल्लेख किया है कि महाकाव्य का नामकरण इतिहास पुराणादि में प्रसिद्ध पात्रों के नाम के आधार किया जाना चाहिए। महाकवि ने इसी परम्परा का अनुकरण करते हुए महाकाव्य का नामकरण भीष्मचरित किया है। 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य के पात्रों के चरित्रांकन में कवि को पर्याप्त सफलता मिली हैं। प्रख्यात कथानक होने से किसी कल्पित पात्र की योजना नहीं की गई हैं। पात्रों के चरित्र विकास में भारतीय संस्कृति का स्वरूप अभिव्यञ्जित हुआ है। भीष्म पितामह के ऊपर ही महाकाव्य की सम्पूर्ण कथा अवलम्बित है। अतः समस्त घटनाएँ भीष्म पितामह के चरित्र के इर्द–गिर्द घूमती है। महाकाव्य का सूक्ष्माध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता हैं कि महाकवि ने प्रथम सर्ग से लेकर अन्तिम सर्ग तक भीष्म पितामह के जीवन के विविध घटनाक्रम को वर्णित किया है। महाकाव्य के नायक एवं मुख्य पात्र भीष्म पितामह हैं। इसके अतिरिक्त शान्तनु, युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, कृष्ण आदि का पुरुष पात्रों के रूप में कवि ने चरित्र–चित्रण किया है। प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने सत्यवती और द्रौपदी को नारी पात्रों के रूप में चित्रित किया हैं। सर्वप्रथम पुरुष पात्रों का चरित्र–चित्रण महाकाव्य के आधार पर करेंगे तत्पश्चात् स्त्री पात्रों का चरित्र निरुपित करेंगे–

मुख्य पुरुष पात्र –

1. भीष्म
2. शान्तनु
3. युधिष्ठिर
4. अर्जुन
5. दुर्योधन
6. धृतराष्ट्र
7. श्रीकृष्ण

मुख्य स्त्री पात्र – 1. सत्यवती 2. द्रौपदी

भीष्म

ज्ञान एवं करुणा के सागर भीष्म सत्कुलोत्पन्न, लक्ष्मीवान्, मनोहर, मृदुभाषी, प्रजारञ्जक हैं। पितृभक्त, उदार हृदय, क्षमावान, तेजस्वी, पराक्रमी, सत्यप्रतिज्ञ, महासत्त्व, विनीत आदि गुणों से भीष्म शोभन चरित्रवान् हैं। जिनमें रूप, गुण, शील अपनी श्रेष्ठता के साथ समाहित हैं।

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में कवि ने भीष्म की जो छवि अंकित की है, वह उन्हें लोकाभिराम लोकनायक के पद पर विभूषित करती हैं। उनके हृदय में एक तरफ विनम्रता थी तो दूसरी तरफ पाषाण सी कठोरता। भीष्म की चारित्रिक विशिष्टताओं का प्रस्तुतीकरण निम्नवत है–

1. **शारीरिक सौष्ठव से युक्त –** राजकुमार देवव्रत शारीरिक सौष्ठव से युक्त थे। कवि उनके शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते है कि राजकुमार के मुखमण्डल की शोभा कमल के समान थी। कवि उनकी शैशवावस्था का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि अति सुन्दर शरीर को धारण करते हुए मुस्कुराने, हँसने और चलने में देवव्रत समर्थ हुआ–

कतिपयैर्दिवसैश्च नृपात्मजः
स्वमुखकान्तितिरस्कृतवारिजः।
स हसितुं स्मयितुं चलितुं तथा
प्रभूरभूदतिरम्यवपुर्वहन्।।[1]

राजकुमार देवव्रत के अङ्ग प्रत्यङ्ग कमल के समान कोमल थे जिससे वे स्त्रियों के चित्तरूपी भँवरों का आश्रय बने हुए थे–

जगाम सर्वाङ्गजिताब्जचारुतो
विलासिनीचित्तमिलिन्दसेव्यताम्।।[2]

2. **नयनाभिराम –** राजकुमार अद्भुत शोभा सम्पन्न है जो भी उन्हें देखता हैं, अपलक देखता ही रह जाता हैं। कवि उनकी बालचेष्टाओं के प्रसंग में लिखते हैं कि शिशु राजकुमार उज्ज्वल मणियों से बने हुए फर्श रूपी दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने का प्रयास करता है। लेकिन बारम्बार असमर्थ (असफल) होता है, यह दृश्य देखने वालों के हृदय को आनन्दित करता था–

मणिविनिर्मितकुट्टिमदर्पणे
निपतितं प्रतिबिम्बमसौ निजम्।
परिजिघृक्षुरनीश्वरतां व्रजन्
परममोदकरोऽभवदर्भकः।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–2/15
2. तत्रैव–6/46
3. तत्रैव–2/17

3. **शस्त्र व शास्त्र के ज्ञाता –** भीष्म (देवव्रत) शस्त्र और शास्त्र दोनों में अत्यन्त निपुण थे। इन्होंने वेदशास्त्र की शिक्षा वशिष्ठ से प्राप्त की थी। युद्ध व शस्त्रविद्या की शिक्षा इन्हें परशुरामजी से मिली थी। परशुरामजी ने वरुणास्त्र, सर्पास्त्र, ऐन्दवास्त्र, मयूरास्त्र, गन्धर्वास्त्र आदि की शिक्षा देवव्रत को प्रदान की थी। परशुराम जी ने राजकुमार को वे सम्पूर्ण अस्त्र सिखाए जिन अस्त्रों को गुरु अगस्त्य, विश्वामित्र और गुरु वसिष्ठ ने श्री रामचन्द्र को सिखाए थे–

अगस्त्यनामा कुशिकात्मजस्तथा
गुरुर्वसिष्ठो वसुधाकुटुम्बिने।
प्रियाय रामाय ददुः शरांश्च यान्
अदाद्गुरुस्तानपि राजसूनवे।।[1]

4. **विनीत –** देवव्रत (भीष्म) के चरित्र में सरलता एवं विनय का उभय गुण सन्निहित है। वे राजपुत्र है, किन्तु उनके चरित्र में वैभव का विलास अथवा हठधर्मिता देखने को नहीं मिलती। वे गुरुजनों के प्रति अतीव समादरशील रहते हुए नम्रतापूर्वक अध्ययन करते थे–

नृपसुतोऽपि सदा गुरुभक्तिमान्
विनयपूर्वकमेव पठन्नसौ।[2]

5. **पितृभक्त –** राजकुमार देवव्रत का समग्र जीवन पितृभक्ति की भावना से परिपूर्ण है। पिता की इच्छापूर्ति के लिए उन्होंने अपने जीवन के समस्त सुखों का परित्याग कर डाला। वे पिता की दयनीय स्थिति को देखकर उनका दुःख जानने का प्रयास करते थे। पिता के सुख के लिए उन्होंने आजीवन विवाह न करने का संकल्प लिया। उन्होंने जीवन पर्यन्त इस संकल्प का निर्वहन किया–

स्वमीदृशं कामसुखं त्जाम्यहं
पितुः सुखं नश्यति यस्य सत्तया।[3]

6. **त्यागी –** शोभन कर्मों से देवव्रत (भीष्म) त्याग की प्रवृत्ति से युक्त है। अपार ऐश्वर्य, राज्य का भी उन्हें मोह नहीं था। पिता के सुख के लिए और मछुआरे (सत्यवती के पिता) की शर्त को पूर्ण करने के लिए उन्होंने युवराजपद का त्याग कर दिया–

---

1. भीष्मचरितम्–5/22
2. तत्रैव–2/45
3. तत्रैव–9/64

पणस्य पूर्त्यै भवतस्त्यजाम्यहं

स्वयौवराज्यं ससुखं निजेच्छया।[1]

भीष्म ने युवराजपद के साथ–साथ वैवाहिक जीवन का भी त्याग कर दिया। उन्होंने स्त्री से सम्बन्धित सम्पूर्ण सुखों का त्याग कर दिया–

अहं निवत्स्यामि सदा विना स्त्रियं

रतिं विवाहं च जहामि सर्वथा।[2]

7. **दानी** – भीष्म की दानशीलता की झलक महाकाव्य के नौंवे सर्ग भीष्मप्रतिज्ञा नामक में दृष्टिगत होती है। भीष्म द्वारा मछुआरे (सत्यवती के पिता) को नानाविध आभूषण और सुन्दर वस्त्र भेंट करने में भी उनकी दानशीलता प्रतीत होती है–

अथ बहुविधरत्नैः कोमलैश्चापि वस्त्रैः

सपदि नृपतनूजस्तोषयामास दाशम्।[3]

8. **वात्सल्य की भावना** – कवि ने भीष्म के चरित्र को वात्सल्य से युक्त दर्शाया है। भीष्म वात्सल्यपूर्वक युधिष्ठिर से कहते है कि तुम सभी मेरे प्रिय हो, मेरी इच्छा है कि युद्ध में विजय तुम्हें ही मिले–

युतोऽसि तत्तात! जयं लभस्व

यूयं प्रिया मे स्थ न संशयोऽस्मिन्।।[4]

9. **दृढ़प्रतिज्ञ** – भीष्म का व्यक्तित्व कोमलता के साथ–साथ दृढ़प्रतिज्ञ भी था। उन्होंने अपने पिता के सुख के लिए आजीवन अविवाहित रहने की दृढ़प्रतिज्ञ की जो कि उनकी महानता का परिचायक है–

सदोर्ध्वरेता इह जीवने वसन्

व्रतं चरिष्यामि विखानसो भवन्।।[5]

भीष्म का राज्य प्राप्ति के सम्बन्ध में दृढ़ कथन है कि सूर्य चन्द्रमा या चन्द्रमा सूर्य बन जाए, संसार भले प्रलयकाल से ग्रस्त हो जाए, राज्य या उससे भी महान सुख के लिए मैं अपना व्रत नहीं तोड़ूंगा–

---

1. भीष्मचरितम्–9/47
2. तत्रैव–6/63
3. तत्रैव–9/85
4. तत्रैव–14/8
5. तत्रैव–9/62

निशाकरो नाम दिवाकरायतां
दिवाकरो नाम निशाकरायताम्।
जगद्विपर्यासमवाप्नुयाद् वरं
न मे प्रतिज्ञा ह्यनृता भविष्यति।।[1]

अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग रहने के कारण भीष्म ने माता सत्यवती के सुझाव (अपने विवाह) को भी अस्वीकार कर दिया–

सत्यवती–प्रस्तावं
प्रत्याख्यत्प्रणपरायणो भीष्मः।[2]

10. **उदारता** – भीष्म द्वारा स्वयं अपनी मृत्यु का उपाय बताना ही उनकी उदारता थी। उन्होंने कहा कि शिखण्डी (अम्बा) पूर्व में स्त्री रूप में जन्मा था इसलिए कोई सच्चा शूरवीर नारी पर प्रहार नहीं करेगा। मैं शिखण्डी को सम्मुख देखकर प्रहार नहीं करुँगा–

अतो यदाऽऽगच्छति मां शिखण्डी
योद्धूम्, तदा चापमहं त्यजामि।
सन्तिष्ठते यावदसौ समक्षं
रणेऽपि तावद् विरमामि युद्धात्।।[3]

11. **रणरङ्गधीर** – भीष्म सुकोमल एवं वज्र से भी कठोर है, उनका रणकौशल चमत्कार करने वाला था। भीष्म अत्यन्त पराक्रमी थे। इन्होंने महाभारत के युद्ध में वृद्धावस्था में भी युवक की भाँति अद्भुत पराक्रम दिखाया–

पितामहोऽपि स्वयशोऽनुरूपं
प्रादर्शयद् विक्रममद्भुतं स्वम्।
दिने दिने पाण्डवसैन्यनाशं
चकार वृद्धोऽपि युवेव वीरः।।[4]

महाकाव्य में उनके भीषण पराक्रम के प्रथम दर्शन बाहरवें सर्ग में काशी नरेश की पुत्रियों के स्वयंवर के प्रसंग होता है। भीष्म ने अपने दिव्यास्त्रों के प्रयोग से सभी राजाओं को परास्त कर दिया और काशीनरेश की तीनों पुत्रियों को हस्तिनापुर लेकर आए–

---

1. भीष्मचरितम्–12/22
2. तत्रैव–13/14
3. तत्रैव–14/18
4. तत्रैव–14/2

परन्तु दिव्यास्त्रबलेन सत्वरं
रणे स सर्वानजयन्महीभृतः।
दिनैश्च कैश्चित्कुशली सकन्यको
विवेश मातुर्भवनं परन्तपः।।[1]

12. **सुशासक –** कवि ने भीष्म के चरित्र को शक्तिशाली और सुशासक के रूप में चित्रित किया है। उनमें राजनीतिविषयक निपुणता, युद्धविषयक कुशलता, प्रजाप्रियता और प्रियभाषिता आदि गुण विद्यमान थे। ये गुण ही भीष्म को सुशासक के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं–

श्रुत्वा तदीयं नृपनीतिशास्त्रे
विशारदत्त्वं रणकौशलं च।
प्रजाप्रियत्वं प्रियभाषितां च
राजा स्वराज्यं विगतारि मेने।।[2]

13. **गुरु के प्रति भक्ति भावना –** देवव्रत (भीष्म) का चरित्र गुरु के प्रति भक्ति भावना से पूर्ण था। परशुराम जी को देखते ही उन्होंने उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और धनुर्विद्या की प्राप्ति के लिए उनके चरणों में अपना सिर रख दिया। देवव्रत द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदन करने पर परशुराम जी ने उन्हें धनुर्वेद की शिक्षा देने का वचन दिया–

तद्–वेश–भूषां प्रविलोक्य धीमान्
निश्चित्य तं श्रीजमदग्निसूनुम्।
ननाम भक्त्या मुनिना च पृष्टो
जगाद सर्वं निजचित्तवृत्तम्।।[3]

श्रुत्वा भावभृतं कुमार–वचनं मोमुद्यमानो मुनिः
पाणिं तस्य निधाय मूर्धनि निजं प्रेम्णा जगादेति तम्।
चिन्तां नैव विधेहि वत्स! लषितं त्वां पाठयिष्याम्यहम्;
जायन्ते मनुजाः सदैव सफलाः कार्येषु निष्ठालवः।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–12 / 45
2. तत्रैव–4 / 7
3. तत्रैव–4 / 46
4. तत्रैव–4 / 51

14. **पश्चाताप की भावना से युक्त** – भीष्म का चरित्र पश्चाताप की भावना से ओत–प्रोत है। द्रौपदी की रक्षा न कर पाने के कारण वे आत्मग्लानि से परिपूर्ण है। वे कहते हैं कि राजदरबार में द्रौपदी की उपेक्षा करके मैं ही पाण्डवों का अपराधी हो गया हूँ–

कृतापराधस्त्वहमेव भूतवान्
उपेक्ष्य तेषां दयितां सभास्थले।।[1]

भीष्म का पश्चातापरूपी वक्तव्य है कि मैंने नारी का अपमान करने वाले पापियों की युद्धभूमि में रक्षा की–

भूयश्च तेषां महिलापमानिनां
रणे सुरक्षापि मयैव हा कृता।[2]

भीष्म कहते हैं कि मैंने समय रहते दुर्योधन के अपराध रूपी साँपों को पैदा होते ही क्यों न कुचल दिया, आज मैं उसी का फल भोग रहा हूँ–

दुर्योधनीया अपराधपन्नगाः
उत्पद्यमाना निहता न यन्मया।
अभूत्तदेव स्खलितं हि मामकं
तस्यैव चेदं फलमद्य भुज्यते।।[3]

भीष्म की अपने गुरु के प्रति भी पश्चाताप की भावना दृष्टिगत होती है। भीष्म कहते हैं कि जिन्होंने मुझे सम्पूर्ण विधाओं की शिक्षा प्रदान की, मैंने उनके साथ ही क्रोधपूर्वक युद्ध किया, मुझे धिक्कार है–

यो मे धनुर्वेदमशेषमार्पयत्
समस्तदिव्यास्त्रनिधिं च योऽददात्।
तेनैव सार्ध गुरुणां प्रतापिना
हा हन्त युद्धं कृतवानहं क्रुधा।।[4]

15. **राजनीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ** – कवि ने भीष्म के चरित्र को प्रबल पराक्रमी के साथ–साथ महान् राजनीतिज्ञ और धर्मज्ञ के रूप में चित्रित किया है। कवि ने भीष्म की राजनीतिविषयक निपुणता के विषय में लिखा है कि भीष्म के विचार से राजा ऐसे कर्मचारी को नियुक्त करे, जो लोभ की भावना न रखता हो–

---

1. भीष्मचरितम्–16 / 14
2. तत्रैव–16 / 17
3. तत्रैव–16 / 18
4. तत्रैव–16 / 25

कामेन लोभेन विवर्जितान्नृपः

कुलेन शीलेन समन्वितांश्चरान्।[1]

भीष्म की धर्म के प्रति भावना प्रगाढ थी। उनका मत है कि राजा को धर्मपूर्वक आचरण करना चाहिए, अधर्म तो अनर्थ को जन्म देता है–

अर्थं ह्यु पासीत च धर्मपूर्वकं

नानर्थमर्थाय नृपः समाश्रयेत्।[2]

16. **विद्याभिलाषी –** भीष्म के चरित्र को कवि ने विद्याभिलाषी के रूप चित्रित किया है। राजकुमार देवव्रत (भीष्म) विद्या प्राप्ति की अभिलाषा रखते हुए प्रसन्नतापूर्वक गुरु परशुराम के पास विद्या ग्रहण करने के लिए चल पड़े–

विद्याभिलाषी स शुभे मुहूर्ते

पित्रा विसृष्टो बहुधैर्यपूर्वम्।

रथाधिरुढो मुदितां दधानः

चचाल पार्श्वं जमदग्निसूनोः।।[3]

शान्तनु

हस्तिनापुर नरेश शान्तनु का सम्पूर्ण जीवन ही त्यागमय आदर्श का प्रतिष्ठापक है। दीक्षित जी विरचित भीष्मचरितम् महाकाव्य का प्रारम्भ राजा शान्तनु से ही होता है। प्रस्तुत महाकाव्य में अतिशय वात्सल्यपूर्ण पिता, प्रजावत्सल राजा धर्म व सत्यनिष्ठा से पूर्ण, अतिथि सत्कार परायण एवं गुरुचरणाविन्द अनुरक्त आदि श्रेष्ठ चारित्रिक विशिष्टताओं से मण्डित शान्तनु का निरुपण कवि ने किया है।

1. **शारीरिक सौष्ठव से युक्त–** शान्तनु का शरीर अतीव सुन्दर था वे इन्द्र के समान तेजस्वी थे, जो शत्रुओं का विनाश करने में सक्षम थे–

सुरेन्द्रतेजा रिपुसूदनक्षमः

प्रतीपसूनू रमणीयविग्रहः।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–17/18
2. तत्रैव–17/23
3. तत्रैव–4/27
4. तत्रैव–1/19

2. **सुशासक** – शान्तनु शासन करने में कुशल थे। शान्तनु के न्याय और वीरतापूर्ण शासन में न तो कोई दुःखी, न कोई परेशान, न करीब, न बेरोजगार और न ही किसी व्यक्ति में भय था–

न कोऽपि दुःखी न च कोऽपि पीडितो
न निर्धनो नैव च जीविकां विना।
न कश्चिदातङ्कित एव मानवो
नयेन शौर्येण च तस्य शासने।।[1]

इनके शासनकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिए, वैश्य और शुद्र आदि सभी वर्ग अपने–अपने कार्यों में संलग्न रहते थे–

द्विजास्सदा शास्त्रविचारतत्परा
सदैव रक्षार्थरता हि बाहुजाः।
विशोऽपि कृपयादिविधौ समुद्यताः
सुखेन सेवाव्रतिनश्च पादजाः।।[2]

शान्तनु के राज्य में गुरुजन हमेशा ही अध्यापन में संलग्न रहते थे और विद्यार्थी उनकी आज्ञा का अनुपालन करते थे। इस प्रकार गुरु–शिष्य भी एक–दूसरे का सहयोग करते थे–

गुरुस्सदा शिक्षणदानमानसो
बभूव विद्यार्थिजनश्च तद्वशः।
परस्परं तौ हितमेव चक्रतुः
प्रशासने भूमिपतेश्च शान्तनोः।।[3]

इनके शासनकाल में जातिवाद, वर्गवाद, भेदभाव और आतंकवाद कुछ भी नहीं था–

न जातिवादो न च वर्गभावना
न वोच्चनीचादिविभेदवेदना।
बभूव नातङ्किजनस्य वन्दना
महीयसी शान्तनुनीतिदेशना।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–1/20
2. तत्रैव–1/22
3. तत्रैव–1/25
4. तत्रैव–1/28

3. **लोकप्रिय** – शान्तनु ने सम्पूर्ण शत्रुओं पर विजय पाकर भारत भर में विकास–योजनाएँ चलायी जिससे वे लोकप्रिय हुए और उनका यश सर्वत्र फैल गया–

विजित्य सर्वानवनीपतीनरीन्
ततान सर्वत्र स उत्तमं यशः।
विकासकार्याणि विधाय भारते
तथा प्रजास्वादरमाप भूरिशः।।[1]

इन्हें सभी जगह श्रेष्ठ सम्मान मिला और भारतवर्ष के सम्राट् पद पर विभूषित हुए–

अलब्ध सर्वत्र स मानमुत्तमं
बभूव सम्राडखिले च भारते।[2]

4. **पुत्र वत्सलता की भावना** – दीक्षित जी ने अपने महाकाव्य के कई सर्गों में राजा शान्तनु के लिए पुत्रवत्सल व विशेषण का प्रयोग किया जैसे षष्ठ सर्ग में,[3] द्वितीय सर्ग में।[4] राजा शान्तनु अपने पुत्र से बहुत स्नेह करते थे। वे अपने पुत्र की शिक्षा–दीक्षा में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होने देते थे। शान्तनु अपने पुत्र के शरीर की प्रतिदिन शिशु–रोग–विशेषज्ञ से जाँच करवाते थे और पुत्र की कुशलता की जानकारी लेते थे–

शिशुशरीरपरीक्षणहेतवे
प्रतिदिनं शिशुरोगविदागमत्।
निजसमक्षमसौ तमदर्शयत्
तनयवार्तमवेच्च्य तदाननात्।।[5]

5. **कारुणिक** – शान्तनु का ह्रदय करुण से परिपूर्ण था। उनकी संवेदनशील प्रकृति को 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में कवि ने बखूबी उभारा हैं। अपनी पत्नी गंगा के मृत्युवशात् बेहोश होने पर उनके नेत्रों से अश्रुधारा उमड़ पड़ती हैं–

महामहीपस्य गतस्य दीनतां
विलापवाक्यैरपि मानसोद्भवैः।
पतिव्रता प्रेमपरायणापि सा
प्रबोधमाप्नोन्नहि मृत्युमूर्च्छिता।।[6]

---

1. भीष्मचरितम्–1/32
2. तत्रैव–1/33
3. तत्रैव–6/7,18,53
4. तत्रैव–2/48
5. तत्रैव–2/11
6. तत्रैव–1/49

6. **अतिथि – सत्कार परायण** – राजा शान्तनु अतिथि सत्कार में अत्यन्त निपुण थे। ये गृहागत अतिथि का सर्वविध सत्कार एवं सम्मान करने में स्वयं आगे रहते थे। अपने पुत्र देवव्रत के विद्याध्ययन हेतु उन्होंने भारत के कोने–कोने से कुछ विद्वानों को सम्मान के साथ बुलाया। सभी विद्वानों को आवास, भोजन, वेतन और सेवकों की सुविधा देकर भली–भाँति सन्तुष्ट किया–

पठनकालमवेत्य सुतस्य तं
बहुविधान्विदुषो वसुधाधिपः।
अखिलभारतकोणगतान्बहून्
प्रतुलमानपुरस्सरमाह् वयत्।।[1]

भवन–भोजन–वेतन–सेवकैः
स निखिलान्विदुषः समतोषयत्।
गुरुजना मुदिता हि भवन्ति चेत्
सकलबोधनिधिं वितरन्ति तत्।।[2]

राजा शान्तनु ने पास आये विद्वान् श्री देवल को प्रणाम कर आदर–सत्कारपूर्वक आसन पर बैठाया–

राजा समुत्त्थाय नमोविधाय
शुभासनं सादरमर्पयित्वा।[3]

7. **विद्याप्रेमी** – शान्तनु अपने पुत्र की शिक्षा के प्रति जागरुक एवं उत्साही थे उन्होंने शुभ दिन और शुभ नक्षत्र देखकर देवताओं की पूजा करके अपने पुत्र देवव्रत को गुरुजनों की सेवा में सौंपा। उनका कथन है कि गुरुकृपा पाकर मुर्ख व्यक्ति भी विद्वान् बन जाता है। अतः मैं अपने पुत्र को शिक्षा हेतु गुरु की सेवा में सौंप रहा हूँ–

गुरुकृपामधिगम्य जडो जनो
भजति पण्डिततां नहि संशयः।
इति विचार्य भवत्सु निजं सुतं
सकलपाठनकामनया ददे।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–2/21
2. तत्रैव–2/22
3. तत्रैव–4/9
4. तत्रैव–2/24

राजा शान्तनु अपने पुत्र को समस्त विद्यागुणों से विभूषित देखना चाहते थे। यही कारण हैं कि उन्होंने अपने हृदय पर कठोर पाषाण शिला रखकर अपने पुत्र को गुरुजनों की सेवा में भेज दिया–

निजसुतं हि समर्पयता मया
हृदि कठोरशिलाद्य निधीयते।[1]

राजा शान्तनु अपने पुत्र देवव्रत को सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रों में पारंगत देखना चाहते थे इसलिए विद्वान् श्रीदेवल द्वारा बताये गये गुरु परशुराम के पास धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने के लिए देवव्रत को भेज दिया–

विद्याभिलाषी स शुभे मुहूर्ते
पित्रा विसृष्टो बहुधैर्यपूर्वम्।
रथाधिरुढो मुदितां दधानः
चचाल पार्श्वं जमदग्निसूनोः।।[2]

8. **शान्तनु की अधीरता** – कवि ने शान्तनु की चरित्रगत अधीरता का वर्णन गङ्गा के मृत्यु के प्रसंग में किया है। गङ्गा की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय बाद राजा शान्तनु अत्यन्त अधीर हो जाते हैं। उनकी अधीरता का चित्रण दीक्षित ने सातवें व आठवें सर्ग में किया है। सातवें सर्ग में कवि ने उनकी अधीरता का चित्रण इस प्रकार किया है कि शान्तनु प्रियतमा (गंगा) की याद की आग में झुलस जाते हैं इस कारण से उनको कोई भी साधन सुख नहीं पहुँचाते हैं, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष को श्रेष्ठ स्त्री के बिना सुख नहीं मिलता है–

नरमणी रमणीमणिमन्तरा
जगति नैव सुखं लभते क्वचित्।
स्वदयिता–विरहानलपीडितं
न सुखयन्ति जनं सुखहेतवः।। [3]

आठवें सर्ग में कवि ने शान्तनु की अधीरता का चित्रण सत्यवती के वियोगावस्था के प्रसंग में किया है–शान्तनु को भोज्य और पेय पदार्थ जरा भी तृप्ति नहीं करते थे। उनके हाथ–पैर

---

1. भीष्मचरितम्–2 / 33
2. तत्रैव–4 / 27
3. तत्रैव–7 / 14

किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये और मल–मूत्र का समय भी अनिश्चित हो गया आदि इन सब कारणों से उनका शरीर क्षीण हो गया–

वृत्तिर्मूढा करचरणयोर्वाचि जातः प्रमादो
वेगत्यागो विषमसमयश्शान्तनोस्तद्वियोगे।
सर्व चैतन्मिलितमकरोत्तानवं तस्य देहे
कामाधीनं जगति नियतं खेदयन्तीन्द्रियाणि।।[1]

युधिष्ठिर

कवि ने युधिष्ठिर के चरित्र को धर्मात्मा, नीतिपरायण, धीर, विद्वान्, प्रजाप्रिय, उदार हृदय, सत्यवादी, पराक्रमी, मधुरवाणी आदि गुणों से युक्त चरितार्थ किया है। युधिष्ठिर की चरित्रगत विशेषताएँ निम्न है–

1. **ज्ञानी –** युधिष्ठिर सदाचार और विचारशीलता के कारण बचपन में ही लोकप्रिय हो गये थे और प्रजा भी इनको भावी राजा के रूप में देखने लगी थीं। वे राजकुमारों में श्रेष्ठ तथा सर्वाधिक गुणवान् होने के कारण उनको युवराज पद प्राप्त हुआ–

   ज्येष्ठत्वाद् गुणवत्वाद्
   युवराजश्चामन्यत युधिष्ठिरः।[2]

2. **प्रजापालक –** युधिष्ठिर के सुशासन के कारण उनके नगर की प्रजा सदैव सुखी रहती थी। उनके नगर की प्रजा को किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था। प्रजा हमेशा ही सुखपूर्वक जीवन यापन किया करती थी–

   धर्मात्मा युधिष्ठिरः
   सुखयामास प्रजा निजा अनिशम्।[3]

3. **धर्मपालक –** युधिष्ठिर की गलती के कारण बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास का दुःख पाण्डवों को सहना पड़ा। लेकिन फिर भी युधिष्ठिर के मन में इसके प्रति खेद नहीं था, बल्कि एक प्रकार का सन्तोष और सुख था, क्योंकि वे अपने धर्म का पालन कर रहे थे–

---

1. भीष्मचरितम्–8/9
2. तत्रैव–13/25
3. तत्रैव–13/45

धर्मधनास्ते सर्वे

द्वादशवर्षाण्यध्युष्य विपिनेषु।

गुप्तं विराटभवने

व्यतीयुस्त्रयोदशं वर्षम्।।[1]

4. **व्याकुलता** – कवि ने युधिष्ठिर की व्याकुलता के प्रसंग में भी अपनी लेखनी चलाई है। युधिष्ठिर अपने बन्धुजन (भीष्म) की हत्या करने के पास से दुःखी होकर अत्यधिक व्याकुल हो गये थे–

युधिष्ठिरो वीक्ष्य पितामहस्य

शौर्यं भृशं व्याकुलितो बभूव।[2]

5. **आशावादी** – आशा ही युधिष्ठिर के जीवन को सुखमय बनाती रहती थी। वे बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी घबराते नहीं थे और मुसीबत आने पर भी भविष्य में सुखी जीवन की आशा करते थे। उनकों कौरवों से अपना हिस्सा प्राप्त करने की आशा थी–

पाण्डवेभ्यो निर्जनं

खाण्डवप्रस्थं काननं प्रादात्।[3]

6. **प्रजास्नेह** – युधिष्ठिर का अपनी प्रजा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था वे प्रजा को किसी भी प्रकार से दुःखी नहीं होने देते थे। वनवास गमन के समय अपने पीछे आये हुए नगर–निवासियों को स्नेहपूर्वक समझाते है। युधिष्ठिर द्वारा प्रजा को प्रेमपूर्वक समझाना ही उनको प्रजा स्नेही के रूप में अलंकृत करता है–

अन्वाव्रजतः पौरान्

यथाकथञ्चिदाश्वास्य युधिष्ठिरः।[4]

7. **पराक्रमी** – युधिष्ठिर दयालु स्वभाव के होते हुए भी रणभीरु कभी नहीं थे। वे युद्धस्थल में पूर्ण साहस के साथ युद्ध करते थे। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के वचनों से प्रेरित होकर शल्य को शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दिया–

प्रदर्शयन्तं स्वपराक्रमं रणे

विलोक्य शल्यं कुपितो युधिष्ठिरः।

---

1. भीष्मचरितम्–13/72
2. तत्रैव–14/5
3. तत्रैव–13/43
4. तत्रैव–13/70

श्रीकृष्णवाचा समवाप्तसाहसो

युद्धं विधायाशु जघान तं नृपम्।।[1]

8. **वैराग्य की भावना** – युद्ध स्थल में अपने बन्धुजनों को मरणावस्था में देखने के उपरान्त युधिष्ठिर की सोचने व समझने की शक्ति असमर्थ हो गयी थी, इस कारण से उनका चित्त राजकार्यों से विमुख हो गया और उनके मन में विरक्ति की भावना ने वास कर लिया–

न राजधर्मे मतिरस्य मोदते

निर्वेदमाप्नोति विबोधितापि सा।।[2]

9. **नृपकल्याण की भावना** – युधिष्ठिर का चरित्र राजाओं के कल्याण की भावना से युक्त था। उन्होंने राजाओं के कल्याण के लिए भीष्म पितामह से राजधर्म के विषय में विस्तार से वर्णन करने के लिए कहा–

तद् राजधर्मान् वद विस्तरेण मां

यैरस्तु कल्याणमशेषभूभृताम्।।[3]

अर्जुन

कवि ने अपने महाकाव्य में अर्जुन के चरित्र को वीर, पराक्रमी, निर्भीक, कारुणिक आदि गुणों से विभूषित किया है। कवि ने इनका प्रथम दर्शन पराक्रमी के रूप में चित्रित किया है।

1. **वीर** – अर्जुन वीरता, स्फूर्ति, ओज, तेज, शस्त्र संचालन की कुशलता और अस्त्र ज्ञान से युक्त थे। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए कौरवों और अनेक राजाओं को शीघ्र ही परास्त कर दिया–

अवसरेऽस्मिन् कौरवैः

अपरैश्चापि राजभिरभूत्समरम्।

किन्तु भीमार्जुनाभ्यां

पराजिता अचिरेण सर्वे।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–15/36
2. तत्रैव–16/41
3. तत्रैव–17/3
4. तत्रैव–13/32

अर्जुन ने अपने अस्त्र संचालन की कुशलता का प्रयोग करते हुए युद्धस्थल में भीष्म पितामह को अत्यधिक रूप से पीड़ित (घायल) कर उनके धनुष को भी नष्ट कर दिया–

पार्थोऽपि तं तीक्ष्णशरैस्तदानीं
विव्याध चिच्छेद धनुश्च तस्य।[1]

कवि ने अर्जुन के चरित्र को पराक्रमी के रूप में निरुपित किया है। अर्जुन ने अपना ओज दिखाते हुए भीष्म पितामह के सम्पूर्ण शरीर को बाणों से अलंकृत कर दिया–

श्रीकृष्णवाचं च निशम्य पार्थो
धाराप्रवाहेण समग्रशक्त्या।
आरब्ध कर्त्तुं शितबाणवृष्टिं
शरीरभागेषु पितामहस्य।।[2]

2. **गोरक्षक** – कवि ने अर्जुन की भावना को गायों की रक्षा से ओत–प्रोत चित्रित किया है। अर्जुन ने अकेले सभी को परास्त करते हुए राजा विराट् की गायों की रक्षा की–

तत्रार्जुन एकाकी
मा रक्षन् सर्वान् व्यजेष्ट समरे।[3]

3. **कोमल** – कवि ने अर्जुन के चरित्र को कठोरता के साथ–साथ कोमलता के रूप में भी चित्रित किया है। युद्धभूमि में अर्जुन भीष्म पितामह के प्रति कोमल रहते थे–

एषोऽर्जुनो मां प्रति कोमलोऽस्ति।[4]

4. **कारुणिक** – अर्जुन वीर होते हुए भी परम कारुणिक और कोमल है। अर्जुन के कारुणिक होने का दृश्य कवि ने भीष्म के शरशय्यावस्थ के प्रसंग में दर्शाया है। भीष्म की शरशय्यावस्था के समय उभय पक्षों के वीरों (अर्जुन आदि) के नयनों से अश्रुधारा उमड़ पड़ती है–

निशभ्य भीष्मस्य तथास्थितस्य
वंचासि वीरप्रथमस्य तस्य।
श्रद्धाभिभूताः स्रवदश्रुधाराः
रक्षाप्रबन्धान् व्यदधुः समन्तात्।।[5]

---

1. भीष्मचरितम्–14/49
2. तत्रैव–14/51
3. तत्रैव–13/75
4. तत्रैव–14/21
5. तत्रैव–14/60

5. **क्रोधी** – अर्जुन का चरित्र क्रोध से परिपूर्ण परिलक्षित होता है। उन्होंने युद्धभूमि में भीष्म पितामह के प्रति अपना क्रोध प्रकट किया था। वे क्रोध की भावना से ओत–प्रोत प्रतीत होते हुए दिखाई पड़ते थे–

अवेक्ष्य भीष्मः कुपितं च पार्थं
चक्रे सहर्ष समितिं मुमूर्षुः।।[1]

दुर्योधन

प्रस्तुत महाकाव्य में दुर्योधन का चरित्र कवि ने प्रतिनायक के रूप में चरितार्थ किया है। दुर्योधन का चरित्र क्रोधी, घमण्डी, अहंकारी, ईर्ष्यालु, धूर्त, राज्य लोभी, हठी एवं नारी की अवमानना आदि दुगुणों से परिपूर्ण है।

1. **ईर्ष्यालु** – कवि ने दुर्योधन के चरित्र को ईर्ष्या की भावना से युक्त चित्रित किया है। दुर्योधन कुरुवंश के भावी राजा के रूप में युधिष्ठिर को सहन नहीं कर पा रहा था क्योंकि वह युधिष्ठिर के प्रति ईर्ष्या द्वेष की भावना रखता था–

दुर्योधनो न सेहे
किन्तु तं भाविकुरुराजरुपेण।[2]

दुर्योधन में आत्मविश्वास की कमी एवं हीन भावना के कारण ही ईर्ष्या की भावना थी। वह ईर्ष्या की अग्नि में जलता हुआ पाण्डवों के हस्तिनापुर आगमन व द्रौपदी के साथ पाण्डवों के विवाह को सहन नहीं कर सका–

पाण्डवानामागमं
पाञ्चाल्या सह परिणयं च तेषाम्।
न शशाक दुर्योधनो
हा, द्रष्टुमीर्ष्यानलाकुलः।।[3]

दुर्योधन पाण्डवों की उन्नति, वृद्धि, वैभव आदि को देखकर उनसे ईर्ष्या करता था–

पाण्डवानां वैभवं
दृष्ट्वा तत्र दुदाव दुर्योधनः।
प्रबोधितेऽपि शकुनिना
नोपशशाम तदीर्ष्यानलः।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–14/49
2. तत्रैव–13/26
3. तत्रैव–13/41
4. तत्रैव–13/46

2. **हठधर्मी** – दुर्योधन के चरित्र को कवि ने अपनी बात पर अडिग रहने वाले के रूप में निरुपित किया है। अपने पिता के द्वारा समझाए जाने पर भी दुर्योधन ने अपनी हठ नहीं छोड़ी–

निवारितोऽपि विदुरेण

दुर्योधनस्य हठेन धृतराष्ट्रः।

द्यूतं कारयामास

कुटिलं चालयन् पथि कुटिले।।[1]

हठी व्यक्ति को चाहे किसी के भी द्वारा समझाया जाए परन्तु वह अपनी हठ को नहीं छोड़ता है ऐसा ही चरित्र दुर्योधन का कवि ने चरितार्थ किया है–

श्रुत्वापि वाचं स कृपस्य दुर्मतिः

निजाभिमानं च हठं च नो जहौ।[2]

3. **अभिमानी** – कवि ने दुर्योधन के चरित्र को अहंकार से परिपूर्ण चित्रित किया है। दुर्योधन अपने आपको बहुत ही शक्तिशाली समझता था इसका उसको अभिमान था–

दुर्योधनोऽभिमानी

पाञ्चाली दर्शयामास जङ्घाम्।[3]

4. **नारी अपमान** – दुर्योधन का चरित्र नारी के अपमान की भावना से पूर्ण है। उनकी आज्ञा से राजदरबार में नारी (द्रौपदी) का अपमान होता है–

दुर्योधनस्याज्ञया

द्रौपदीं द्यूतजितां मन्यमानः।

दुःशासन सभायाम्

आकर्षन् कुन्तलेष्वानयत्।।[4]

5. **राज्यलोभी** – दुर्योधन का सम्पूर्ण जीवन ही राज्य के प्रति लोभ से पूर्ण रहा है। अपनी लोभयुक्त प्रवृत्ति के कारण वह किसी की आज्ञा का पालन नहीं करता था–

---

1. भीष्मचरितम्–13/49
2. तत्रैव–15/32
3. तत्रैव–13/56
4. तत्रैव–13/52

लोभर्ष्याबलमूढो

दुर्योधनो न मेने दूतोक्तम्।

भीष्मादीनां चापि

मोघा अभवन् बोधवाचः।।[1]

6. **दुष्ट –** दुर्योधन में दूसरों को जान बूझकर कष्ट देने की प्रवृत्ति थी। उसने अपने की सिद्धि के लिए अधर्म का मार्ग ग्रहण किया। उसकी दृष्टता के कारण तो भीष्म पितामह की जीने की इच्छा ही समाप्त हो गयी थी–

विलोक्य दुर्योधनदुष्टभावं

जिजीविषा मेऽपि गतास्ति नाशम्।[2]

दुर्योधन एक ऐसा व्यक्ति था जिसमें सम्पूर्ण निन्दित कार्य करने वाले दुर्गुण मौजूद थे। वह पापी, नीच और कुलनाशक आदि दुर्गुणों से ओतप्रोत था–

दुर्योधनो निन्दितकर्मकारी

पापधमो वंशविनाशकारी।[3]

7. **कायर –** कवि ने दुर्योधन के चरित्र को उत्साह, बल या साहस से रहित चित्रित किया है। दुर्योधन की कायरता का दृश्य युद्धभूमि से भागकर अपनी जान बचाने के प्रसंग में दिखायी देता है–

दुर्योधनो वीक्ष्य पराभवं निजं

भीत्वा च भीमाद् यमराजसन्निभात्।

पलाय्य युद्धादवितुं निजानसून्

अगाधतोये सरसि व्यलीयत।।[4]

धृतराष्ट्र

कवि ने धृतराष्ट्र के चरित्र को पुत्र के प्रति प्रेम, न्यायप्रिय, भीरू ईर्ष्यालु आदि गुणों से युक्त दर्शाया है।

---

1. भीष्मचरितम्–13/81
2. तत्रैव–14/10
3. तत्रैव–14/33
4. तत्रैव–15/39

1. **पुत्रमोह** – धृतराष्ट्र का दुर्योधन के प्रति मोह, पुत्रमोह ही था। दुर्योधन के षडयंत्रकारी कार्यों का भी धृतराष्ट्र ने कभी विरोध नहीं किया। दुर्योधन जो भी निन्दित कार्य करता था वे पुत्रमोह के कारण उससे प्रसन्न होते थे।

सहसा सच धृतराष्ट्र

पतितोऽभून्निजपुत्रमोहजाले।

गूढं जहर्ष राजा

धृतराष्ट्रः सुतमोहमूढः।।[1]

2. **न्यायप्रिय** – कवि ने धृतराष्ट्र के चरित्र को न्यायप्रियता की भावना से भी पूर्ण दिखाया है। उन्होंने न्यायपूर्वक पुत्रों के लिए राज्य का विभाजन कर दिया था–

सुतयोगक्षेमार्थं

राज्य विबभाज धृतराष्ट्रः।।[2]

3. **भीरु** – धृतराष्ट्र के चरित्र को कवि ने कायरता से पूर्ण भी निरुपित किया है। वे अशुभ वाणी को सुनकर भयभीत हो जाते है–

रुरुस्तदा वायसाः

भृशमशिवाः शिवाश्चापि ववाशिरे।

धार्तराष्ट्रसदनेषु

श्रुत्वा तत्रास धृतराष्ट्रः।।[3]

4. **धैर्यवान्** – धृतराष्ट्र ने कठिन परिस्थिति में धैर्य को धारण करते हुए द्रौपदी से पर प्राप्त करने का अनुरोध करना ही उनको सहनशीलता की अवस्था में प्रतिष्ठित करता है–

तेनापमानाग्निना

दह्यमानां द्रौपदीं सान्त्वयितुम्।

त्वरमाणो धृतराष्ट्रः

तामनुरुरुधे वरलाभाय।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–13/27, 51
2. तत्रैव–13/42
3. तत्रैव–13/59
4. तत्रैव–13/60

श्रीकृष्ण

कवि ने श्रीकृष्ण के चरित्र को नारी गौरव रक्षक, सहायक, सन्देशवाहक, स्वामी, प्रेरणादायक, वेदनाहरक, प्रियभाषी, धर्मरक्षक, भक्तवत्सल, परामर्शकर्ता आदि गुणों से युक्त चित्रित किया है।

1. **नारी गौरव रक्षक** – जब भरी सभा में द्रौपदी (नारी) को अपमानित (साड़ी खींच कर) किया जा रहा था तब श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के गौरव की रक्षा की–

अदर्शयश्चात्मानं

स तस्याः शाटीमवर्धयत्।।[1]

2. **सहायक** – कवि ने श्रीकृष्ण के चरित्र को पाण्डवों के सहायक के रूप में चित्रित किया है। श्रीकृष्ण की सहायता पाकर पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नामक भव्य नगर बसाया–

कृष्णस्य सहायतया

पाण्डवा इन्द्रप्रस्थाख्यं पुरम्।

निर्ममुस्तत्र दिव्यं

चेतश्चौरं च सेचतसाम्।।[2]

3. **दूत** – श्रीकृष्ण के चरित्र को कवि ने सन्देशवाहक के रूप में निरुपित किया है। वे पाण्डवों की ओर से सन्धि करने के सन्देश को लेकर धृतराष्ट्र की सभा में पहुँचते हैं–

पाण्डवपक्षात् कृष्णः

सन्ध्यर्थ यातो धृतराष्ट्रसभाम्।[3]

4. **ईश्वर** – श्रीकृष्ण साक्षात् सम्पूर्ण विश्व के भगवान् है। कवि ने उनके चरित्र को सम्पूर्ण जगत् के स्वामी एवं भगवान् के रूप में चरित्रांकन किया है–

कृष्णश्च साक्षाज्जगदीश्वरोऽयं

करोति सर्वत्र सहायतां वः। [4]

---

1. भीष्मचरितम्–13/54
2. तत्रैव–13/44
3. तत्रैव–13/83
4. तत्रैव–14/9

5. **प्रेरणादायक** – श्रीकृष्ण का चरित्र महाकाव्य में प्रेरणादायक के रूप में दृष्टिगत होता है। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से ही अर्जुन ने भीष्म पितामह के ऊपर प्रहार करना शुरु किया था–

श्रीकृष्णवाचं च निशम्य पार्थो
धाराप्रवाहेण समग्रशक्त्या।
आरब्ध कर्त्तुं शितबाणवृष्टिं
शरीरभागेषु पितामहस्य।।[1]

6. **वेदनाहरक** – श्रीकृष्ण भगवान् तो साक्षात् सम्पूर्ण विश्व स्वामी थे। उन्होंने अपनी योगविद्या से भीष्म पितामह के सम्पूर्ण शरीर की वेदना को शीघ्र ही दूर कर दिया–

विचार्य किञ्चित्स च योगविद्यया
सद्योऽहरद् भीष्म–शरीरवेदनाम्।।[2]

8. **प्रियभाषी** – श्रीकृष्ण की वाणी अतीव मधुर थी। उनके चरित्र को कवि ने मृदुभाषी युक्त चित्रित किया है। वे अपने मधुर वचनों से भीष्म से कहते है कि आपको खिन्नता का अनुभव नहीं करना चाहिए। ये पाण्डव आपका स्नेह चाहते हैं–

भीष्मं समालोक्य तपन्तमात्मनि
जगाद कृष्णो मधुरं वचस्तदा।
हे भीष्म! खेदं न विधेहि मानसे
वाञ्छन्ति ते स्नेहमिमे तु पाण्डवाः।।[3]

स्त्री पात्र

महाकाव्यों में नारी पात्रों का चित्रण करना भी अनिवार्य होता है। सभी महाकाव्यों में नारी पात्र का उल्लेख मिलता है। कवि ने भी अपने महाकाव्य में सत्यवती व द्रौपदी दो नारी पात्रों का मुख्य रूप से वर्णन किया है। जिनका चरित्र चित्रण इस प्रकार है–

सत्यवती

सत्यवती अनुपमेय गुणों से सम्पन्न पतिव्रता, कुलीन नारी है। विनीत, सरलशील, सदाचार सम्पन्न, समधिक लज्जाशील, मृदुभाषिणी, गृहकार्यों में कुशल, पति अनुगामिनी, दयादि गुणों से युक्त नारी है। सत्यवती के समुज्ज्वल चरित्र की कतिपय विशिष्टताएँ इस प्रकार है–

---

1. भीष्मचरितम्–14/51
2. तत्रैव–16/5
3. तत्रैव–16/20

1. सौन्दर्य सम्पन्न – कवि ने सत्यवती के चरित्र को सौन्दर्य से सम्पन्न दर्शाया है। उसका अतुलनीय सौन्दर्य बाह्य दृष्टि से मोहक होते हुए भी सर्वत्र नैसर्गिक ही है। उसके सौन्दर्य चित्रण में कवि ने प्रकृति के उपादानों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। कवि ने उसके लिए रूपवती, सुमुखी विशेषण का प्रयोग किया है–

युवतिरप्यतिरूपवती ह्यसौ
चरणशब्दविवृत्तमुखी सती।
मृगवधूनयना नयने स्वके
नृपमुखे सुमुखी समपातयत्।।[1]

कवि ने सत्यवती के रूप लावण्य का वर्णन करते हुए उसके सौन्दर्य को प्राकृतिक विशेषणों जैसे करभोरु (हाथी की सूँड की तरह सुडौल जांघ), सुमुखी, मृगीनयने व वरानने आदि से सुसज्जित किया है–

त्वमसि का करभोरु! वरानने।
कथय कास्ति शुभा च तवाभिधा?
त्वमधुना च वने यमुनाटते
प्रकुरुषे हरिणीनयनेऽत्र किम्?।।[2]

2. दीव्यता – सत्यवती अलौकिक गुणों से मण्डित हैं। शारीरिक सौन्दर्य, शील सदाचार की उत्कृष्टता, प्रकृष्ट सहनशक्ति, अनुपम पातिव्रत आदि गुण उसके चरित्र की दिसता को दर्शाते हैं। कवि ने सत्यवती को शारीरिक रूप से अतिमनोरम खुशबू युक्त चित्रित किया है–

युवतिगात्रगतोऽतिमनोरमः
परिमलस्तु तदीयमनोज्ञताम्।[3]

3. बुद्धिमता – सत्यवती की सोच उच्चकोटि से युक्त थीं। कवि ने उसके चरित्र के माध्यम से विवाह हेतु वर–कन्या के सामाजिक स्तर, जाति और वर्ग की समानता को महत्त्वपूर्ण नहीं मानकर उनके चित्त के स्तर की समानता पर बल दिया है। सत्यवती के द्वारा ही यह प्रतिपादित किया है कि पिता को पुत्री के विवाह पर दहेज की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शिक्षित वर्ग

1. भीष्मचरितम्–7/33
2. तत्रैव–7/37
3. तत्रैव–7/47

समाज में ऐसे पिता की निन्दा करते हैं। इन गुणों से सत्यवती का चरित्र बुद्धिमता से युक्त प्रतीत होता है–

प्रशस्ते वा न च विक्रयः क्रयः
कदापि लोके वरकन्ययोर्बुधैः।
अहो! त्वया तात! मदीयविक्रयः
पणेन कूटेन विधातुमिष्यते।।[1]

4. अधीरता – कवि ने सत्यवती को राजा शान्तनु के प्रति प्रेम तथा उनसे विवाह हेतु व्याकुलता को उसकी अधीरता के रूप में चित्रित किया है–

वयोऽर्धभागेन सुखस्य भोगिनोः
रथाङ्गनाम्नोरपि योगिनोर्दिवा।
शशंस भाग्यानि सदा वियोगिनी
समुच्छ्वसन्ती नयने निमील्य सा।।[2]

सत्यवती की आतुरता के प्रसंग में कवि ने शानतनु के साथ निवास करने वाली हिरनी, हंसा, मैना को सत्यवती से अधिक भाग्यशाली दर्शाया है–

मृगीं मरालीं च शुकीं च सारसी
सदा स्वकान्तेन समं सुशोभिताम्।
विलोक्य तासामतिभाग्यशालिताम्
अमन्यतासौ बहुदूरवल्लभा।।[3]

सत्यवती अपने प्रियतम शान्तनु के प्रेम में अत्यधिक अधीर है। इसलिए सत्यवती को भूख–प्यास और दिन–रात का भी भान नहीं रहता था। यह चित्रण सत्यवती की अधीरता को दर्शाता है–

निवारणायापि तृषाबुभूक्षयोः
निजेच्छया नैव कदाप्यचेष्टत।
विचिन्तयन्त्या निजवल्लभं तदा
ननाश तस्या दिनरात्रिचेतना।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–9/33
2. तत्रैव–9/14
3. तत्रैव–9/15
4. तत्रैव–9/18

5. तेजस्विनी – कवि ने सत्यवती के स्वभाव को विषम परिस्थितियों में धैर्य रखने वाली, नार्योचित्त गरिमा से ओत–प्रोत तेजस्वी नारी के रूप में चित्रित किया है। जिसके तेज के सम्मुख मछुआरा (पिता) भी निस्तेज हो जाता है–

निशम्य पुत्रीवचनं सुनिश्चितं
निषादनेत्रे कुटिले बभूवतुः।।[1]

सत्यवती के चरित्र की उदात्तता एवं निर्भीकता का निरुपण कवि ने आधुनिक भारतीय नारी को सम्बल प्रदान करने के रूप में किया है। सत्यवती का राजा शान्तनु से विवाह करने का निश्चय दृढ़ था, विवाह न होने की स्थिति में मरना ही उचित था सत्यवती का अपने पिता (मछुआरा) के प्रति यह ओजपूर्ण वक्तव्य तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचायक है–

भवामि जाया यदि शानतनोरहं
तदा भविष्यामि कृतार्थजीवना।
न चेत्तदा नूनमहं नदीजले
प्रपातयिष्यामि निजाममूं तनूम्।।[2]

कवि ने सत्यवती के दृढ़निश्चय पर अडिग रहने का वर्णन किया है। सत्यवती का अपने पिता के प्रति दृढ़ कथन है कि मेरा विवाह राजा शान्तनु से नहीं हुआ तो मैं जीवित नहीं रहूँगी। सत्यवती का यह संकल्प दृढ़ता का द्योतक हैं–

विहाय कार्पण्यपणं निरर्थकं
प्रयच्छ मां शान्तनवे दयालवे।
न चेत्तदा तात! विलोकयिष्यसि
दिनैस्तु कैश्चित् स्वसुतां न जीविताम्।।[3]

6. पिता की भर्त्सना – कवि ने सत्यवती के चरित्र को पिता के प्रति आलोचना से युक्त वर्णित किया है। सत्यवती अपने को दाम्पत्य सुख से रहित मानती हुई अपने पिता को लालची व सगा पिता नहीं आदि सम्बोधन से सम्बोधित कर आरोपित करती है–

---

1. भीष्मचरितम्–9/38
2. तत्रैव–9/35
3. तत्रैव–9/37

ममैष गार्हस्थ्यसुखान्यनाशयत्

मिषेण कूटस्य पणस्य लोलूपः।

प्रतीयते नास्य सुताहमात्मजा

न जन्मदो दुःखकरो यतः पिता।।[1]

सत्यवती का अपने पिता के प्रति तिरस्कारपूर्ण कथन है कि मुझे किसी भी जन्म में ब्रह्माजी तुम्हारी पुत्री नहीं बनाए। सत्यवती का यह कथन पिता के प्रति भर्त्सना से युक्त है–

सुता च भत्वा तव लज्जितास्म्यहं

ततोऽर्थये सृष्टिकरं पितामहम्।

कदाप्यसौ यज्जनान्तरेष्वपि

त्वदीयपुत्रीं विद्धातु नैव माम्।।[2]

7. कारुणिक – सत्यवती के हृदय को कवि ने कारुणिक एवं मधुरता उभय गुणों से युक्त चित्रित किया है। सत्यवती अश्रुपूर्ण नेत्रों से पिता से कहती है कि आपने मानवता को त्याकर राजकुमार देवव्रत (भीष्म) को पत्नी सुख से वंचित कर दिया, यह मेरे लिए पीड़ादायक है–

जमाद तं चाश्रुमुखी झषोदरी

बत त्वयात्याजि मनुष्यता पितः।

अहो! कुमारो नवनीतमानस

कलत्रसौख्यादपि वञ्चितोऽधुना।।[3]

8. प्रियव्रता – कवि ने सत्यवती के चरित्र को प्रियव्रता से युक्त दर्शाया है। सत्यवती अपने प्रियतम (राजा शान्तनु) से अनन्य भाव से प्रेम करती थी इस कारण से सत्यवती का चित्त अपने प्रियतम में लगा रहता था और स्वयं विरह की वेदना से चिन्तित रहती थी–

स्ववल्लभस्यापि मनोजवेदनां

विचार्य चित्ते बहु चिन्तिताभवत्।

यथा स्वकान्तव्यथया प्रियव्रता

प्रपीड्यते स्वव्यथया तथा न सा।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–9/9
2. तत्रैव–9/81
3. तत्रैव–9/80
4. तत्रैव–9/17

द्रौपदी

कवि ने द्रौपदी के प्रथम दर्शन अपने महाकाव्य के तेहरवें सर्ग में द्रौपदी स्वयंवर के प्रसंग में करवाया है। द्रौपदी का चरित्र पतिव्रता, विनीत, सरलशील, सदाचार सम्पन्न, करुणा से युक्त, मृदुभाषिणी, पति अनुगामिनी, त्यागमयी आदि गुणों से विभूषित किया है। उसमें ओज और विनय का अद्‌भुत समन्वय है, आत्मसम्मान एवं सेवा का दुर्लभ संयोग है। प्रेम और व्यवहार–कुशलता का उसमें एक साथ निवास है। श्रीकृष्ण के प्रति अविचल श्रद्धा, परम प्रेम एवं परमभक्ति के भाव उसके हृदय में है। द्रौपदी के समुज्ज्वल चरित्र की विशिष्टताएँ निम्नवत् हैं–

1. अलौकिक पत्नी – द्रौपदी के दाम्पत्य जीवन में पाँच पाण्डवों की धर्मपत्नी दैवयोग से बनना इतिहास का अद्‌भुत उदाहरण है। कवि ने भी द्रौप्दी का दाम्पत्य जीवन महाभारत के सदृश ही चित्रित किया है–

देवयोगाद् द्रौपदी
पाण्डवपञ्चकस्य बभूव जाया।
अभवंस्ते निदर्शनं
दाम्पत्यजीवनेतिहासे।।[1]

2. करुणामयी – द्रौपदी स्वभाव से ही मधुर एवं अत्यधिक करुणामयी है। द्रौपदी ने भरी सभा में स्वयं को अपमानित देखकर अपने रक्षाकवच के रूप में श्रीकृष्ण का करुण स्वर से स्मरण किया। इससे द्रौपदी का कारुणिक स्वर प्रस्फुटित हुआ–

कृष्णाकरुणाह्वानं
श्रुत्वा सपदि समाजगाम कृष्णः।
अदर्शयंश्चात्मानं
स तस्याः शाटीमवर्धयत्।।[2]

3. बुद्धिमानी – धृतराष्ट्र अपने भवन में अमाङ्गलिक आवाजों से भयभीत होकर द्रौपदी से वर प्राप्ति का प्रस्ताव रखते है। द्रौपदी ने अपनी बुद्धिमता से वर के रूप में दुर्योधन के बन्धन से अपने पतियों को मुक्त करने का धृतराष्ट्र से प्रस्ताव रखती है–

मनीषिणी पाञ्चाली
मोचयामास पतीन् दास्यभावात्।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–13/33
2. तत्रैव–13/54
3. तत्रैव–13/61

4. पतिव्रता – द्रौपदी पतिव्रता व चरित्रवान् नारी है। उसका चरित्र उसको आदर्श नारी के रूप में सुशोभित करता है। द्रौपदी के व्यक्तित्व में स्थायीभावों में पतिप्रेम एवं कृष्ण–भक्ति मुख्य हैं। पति प्रेम का स्थायीभाव अत्यन्त दृढ़ है। इसी दृढ़ता के कारण वह अनेक प्रकार की विपत्तियों को सहन करके भी पतिव्रत–धर्म का निर्वाह करती हुई जीवन–यापन करती थीं। द्रौपदी का पतिप्रेम ही उसको वनवास व्यतीत करने के लिए सम्बल प्रदान करता है और द्रौपदी पतियों के साथ वनगमन के लिए निकल पड़ती हैं–

विजितीकृताः पाण्डवाः
वृद्धानुक्त्वा द्रौपदी च नीत्वा।
वनाय सम्प्रतस्थिरे
निजधर्माध्वानमनुव्रताः।।[1]

अतः निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि दीक्षित जी का महाकाव्य पुरुष व नारी पात्रों से परिपूर्ण है। भीष्मचरितम् महाकाव्य का प्रख्यात कथानक होने से पात्रों की झलक भी स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। महाकाव्य के नायक तथा अन्त्र पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। भीष्म इस महाकाव्य के नायक है इसलिए सर्वप्रथम उनके चरित्र–चित्रण को निरूपित किया गया है। इसके साथ ही अन्य पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का चरित्रांकन किया गया है। यह कृति पात्रों की दृष्टि से अप्रतिम है।

1. भीष्मचरितम्–13 / 69

(iv) रस, अलंकार, गुण

रस – काव्य का प्राणदायक आत्मतत्त्व रस है। काव्य या नाटक को पढ़ने या देखने से जो आनन्दानुभूति होती है, उसी का नाम रस है। संस्कृत साहित्य में रस की अवधारणा सबसे पहले भरतमुनि ने की थी उनका स्पष्ट कथन है–

न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।।[1]

तथा –

यथा बीजात् भवेत् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूल रसा सर्वे तेषु भावा व्यवस्थिताः।।[2]

भरतमुनि ने नाट्य के परिप्रेक्ष्य में रस को प्रमुखता दी जबकि अलंकार शास्त्र की परम्परा में रस की मान्यता बहुत बाद में स्वीकृत हुई। भामह, दण्डी, उद्भट आदि प्राचीन आलंकारिक भरत सम्मत रस से परिचित थे, ऐसा नहीं लगता है। सर्वप्रथम ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि की उद्भावना कर रसध्वनि को प्रथमतया सभी कवि कर्मों में "आत्मासिद्ध" किया। रस ध्वनि के मूल में भरत का प्रसिद्ध रस सूत्र– **"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगद्रसनिष्पतिः"** भरत रस सूत्र की चार व्याख्याएँ मम्मट ने काव्यप्रकाश में उद्धत की है– 1. उत्पत्ति 2. अनुमिति 3. भुक्ति 4. अभिव्यक्ति। इसमें से अभिनवगुप्त के मत को मम्मट ने सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित किया है।

इस सन्दर्भ में सर्वाधिक मान्य अभिनवगुप्त के मत का उल्लेख करना समीचीन होगा। रसास्वाद की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए अभिनवगुप्त का कथन है कि लौकिक अनुभवों के आधार पर ही मनुष्य काव्य जगत में रसास्वाद करता है, परन्तु काव्य का संसार लौकिक संसार (लोक) से भिन्न होने के कारण उसमें कारण कार्य सहकारी के स्थान पर विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव क्रियाशील हो जाते है। लौकिक भूमि ही लौकिक रस की भूमिका है।

रस चूँकि व्यङ्ग्य होता है अतः अभिधा से उसका साक्षात् अवबोध नहीं होता है। विभाव और अनुभाव ही स्थायीभाव का संकेत कर सकते है और उन्हीं से सह्रदयों के ह्रदय में रस की अभिव्यक्ति आस्वाद के रूप में होती है। व्यभिचारिभाव भी व्यञ्जित होकर उसकी सहायता करते है। रस की अभिव्यक्ति के विषय में यही ध्वनिवादी दृष्टि है।

---

1. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि–6/71
2. तत्रैव–6/303

किसी भी कृति में रस का निरूपण करते समय हमें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभावों का अन्वेषण करना पड़ता है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने आठ या नौ रसों के विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव का समग्र विवरण इन रसों के प्रसङ्ग में किया है इसी को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य में रस की विवेचना करेंगे।

महाकाव्य में प्रयुक्त रस का विवेचन –

आलंकारिक आचार्यों धनञ्जय–दण्डी–विश्वनाथ आदि ने महाकाव्य में शृङ्गार, वीर तथा शान्त में से किसी एक रस को ही अंगीरस (प्रधान) के रूप में स्वीकार किया है शेष अन्य सभी रस अंगीरस को पुष्ट करने में सहायक होते हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में मुख्यतया शान्त रस ही प्रधान रस है। महाभारत का भी प्रमुख रस शान्त ही है। पूरा कथानक महाभारतीय कथा पर आधृत है। प्रस्तुत महाकाव्य का अवसान भी शान्त रस से समाप्त हुआ है। परन्तु कवि ने कई सर्गों में स्थल–स्थल पर करुण, हास्य, वीर, वात्सल्य, शृंगार आदि रसों का भी प्रयोग किया है।

अंगीरस शान्त

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।।
कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः।
अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिः सारता तु या।।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते।
पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः।।
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरुपिणः।
रोमाञ्चाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।।
निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः।।[1]

शान्त रस का स्थायीभाव शम, आश्रय उत्तमपात्र, वर्ण कुन्दपुष्प तथा देवता श्री लक्ष्मी नारायण है। इस रस में संसार की अनित्यता या दुःखमयता ही आलम्बन विभाव है, पवित्र आश्रम, तीर्थ, साधु समागम आदि उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्चादि इनके अनुभाव होते है। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि संचारीभाव होते है।

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद– 3/245–248

"भीष्मचरितम्" महाकाव्य के अनेक सर्गों में शान्त रस की अभिव्यञ्जना की गई है। महाकवि ने चौहदवें सर्ग में शान्त रस को अभिव्यक्त किया है जहाँ भीष्म पितामह अपने पश्चाताप पूर्ण वचनों द्वारा ग्लानि का अनुभव करते हुए अपने जीवन का अन्त करना चाहते है–

अतोऽद्य युद्धे मरणीयमेव
मयाधिकं नैव यशो विनाश्यम्।
विनिष्क्रयोऽन्नस्य कृतः प्रभूतो
धर्मोऽथ मृत्वा परिरक्षणीयः।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन कृत कार्य आलम्बन विभाव है तथा भीष्म पितामह द्वारा मन ही मन में विचार करना कि अब मुझे मरना चाहिए अपने कार्यों पर दुःखी होना तथा पापी दुर्योधन का साथ देना आदि कार्यों से स्वयं जीने से विमुख होना आदि कार्य अनुभाव है। अपने अपराध कृत्योंघ का स्मरण होना संचारीभाव है। इन सब कार्यों से निर्वेद स्थायीभाव पुष्ट होकर शान्त रस की अनुभूति कराने वाला है।

महाकाव्य शान्त रस से परिपूर्ण है। सोहलवें सर्ग में भीष्म पितामह के शरीर पर प्रहार करने के पश्चाताप से युधिष्ठिर द्वारा ग्लानि का अनुभव करते हुए राजधर्म से विमुख होना ही शान्त रस की पुष्टि कराने वाला है–

पौत्रास्तवैतेऽपि युधिष्ठिरादयः
प्रकामयन्ते भवतः शुभाशिषः।
भवच्छरीरे विजयाप्तिवाञ्छया
प्रहत्य चैतेऽनुभवन्ति वेदनाम्।।[2]

प्रस्तुत पद्य में युधिष्ठिर आदि द्वारा आशीर्वाद चाहा जाना आलम्बन विभाव है। शरीर पर प्रहार द्वारा ग्लानि का अनुभव करना अनुभाव है। ग्लानि का उत्पन्न संचारीभाव है जो निर्वेद स्थायीभाव को पुष्ट करते हुए शान्त रस का आस्वाद कराता है।

सोहलवें सर्ग के अतिरिक्त उन्नीसवें सर्ग में भी कई स्थलों पर शान्त रस की अनुभूति होती है–

---

1. भीष्मचरितम्–14/36
2. तत्रैव–16/40

प्रकाशमाने ह्रदि चात्मतेजसि
मोक्षाय दीक्षामुररीकरोतु सः।
संसारभावानखिलान् परित्यजन्
परिव्रजेत् पूर्णविमुक्तिहेतवे।।[1]

उक्त पद्य में आत्मतत्व का बोध होना आलम्बन विभाव है। परिव्राजक बनना अनुभाव है। सांसारिक भावों को त्यागना संचारीभाव है जो निर्वेद स्थायीभाव को पुष्ट करते हुए शान्त रस का आस्वाद करा रहा है।

"भीष्मचरितम्" महाकाव्य में महाकवि ने अङ्गीरस शान्त रस के साथ–साथ अन्य रसों का परिपाक भी स्थल–स्थल पर किया है।

करुण रस

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।
तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः।।
अनुभावा दैवनिन्दाभूपातक्रन्दितादयः।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च।।
निर्वेदमोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः।
विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः।।[2]

इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुण रस आविर्भूत होता है। यह कपोतवर्ण, देतवता यमराज, इसका स्थायीभाव शोक होता है विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव है एवं दाहकर्म उद्दीपन है। निन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवर्णता, स्तम्भ औश्र प्रलाप अनुभाव है। निर्वेद, मोह, ग्लानि, स्मृति, श्रम, जड़ता, चिन्ता आदि व्यभिचारीभाव है।

प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि ने अनेक ऐसे प्रसंगों का सन्निवेश किया है जिससे पाठकों का ह्रदय द्रवीभूत हो उठता है। ये प्रसंग ही करुण रस को पुष्ट कराने वाले है।

प्रथम सर्ग में पत्नी के जीवित न होना जानकर राजा शान्तनु करुणा के सागर में डूब जाते है–

---

1. भीष्मचरितम्–19/28
2. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद– 3/222–225

अनुभूय दिवङ्गतां प्रियां

करुणाब्धावपतन्नृपोऽवशः।

भवने लहरी विपत्तिजा

परितो व्यापदरुन्तुदा तदा।।[1]

प्रस्तुत पद्य में शान्तनु की पत्नी आलम्बन विभाव, प्रिय पत्नी का जीवित न होना उद्दीपन विभाव है, करुणा में डूब जाना अनुभाव है। तत्त्व ज्ञान व्यभिचारीभाव है इन सबसे शोकरूपी स्थायीभाव अभिव्यक्त होकर करुण रस की प्रतीति करा रहा है।

महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में महाभारत युद्ध के अन्त में भी करुण रस की झलक दिखाई देती है–

ततः कृताभूच्छवदाहसंस्क्रिया

रणे मृतानामुभपक्षयोधिनाम्।

सम्बन्धिनीनां रुदितेन योषितां

तत्रत्यदृश्यं करुणं तदाभवत्।।[2]

इस पद्य में वीरों का शव आलम्बन विभाव है, शवों की चित्ताएँ लगाना उद्दीपन विभाव है। नारियों का विलाप अनुभाव है। ग्लानि, विषाद, मरण आदि संचारीभावा है। जो शोकरूपी स्थायीभाव वाले करुण रस का परिपाक करने वाले है।

इनके अतिरिक्त राजा शान्तनु, चित्रााङ्गद व विचित्रवीर्य की मृत्यु तथा भीष्म पितामह के महाप्रयाण के समय भी महाकवि ने करुण रस को अभिव्यक्त किया है।

रौद्र रस

रौद्रः क्रोधस्थायिभावो रक्तोः रुद्राधिदैवतः।

आलम्बनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।

मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव।

संग्रामसंभ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत्प्रौढा।।

भ्रूविभङ्गौष्ठनिर्दशबाहुस्फोटनतर्जनाः।

आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणनि च।।

उग्रतावेगरोमाञ्चस्वेदवेपथवो मदः।

---

1. भीष्मचरितम्–1/50
2. तत्रैव–15/50

अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादयः।।

मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः।[1]

रौद्र रस में क्रोध स्थायीभाव होता है। इसका वर्ण लाल और देवता रुद्र है। इसमें आलम्बन शत्रु होता है और उसकी चेष्टायें उद्दीपन होती है। मुक्का मारने, गिराने, काटने, फाड़ देने, युद्ध करने के लिए बेताब होने आदि के वर्णन से रौद्ररस की खूब प्रदीप्ति होती है। ओंठ चंबाना, ताला ठोंकना, डाँटना, अपने पिछले कामों (वीरता) की बड़ाई करना, शस्त्र घुमाना, उग्रता, आवेग, मद ये इस रस के अनुभाव है। आक्षेप करना, क्रूरता से देखना, मोह और अमर्ष आदि इसके अभिचारी होते हैं।

महाकवि ने रौद्र रस का परिपाक अवसरानुकूल अपने महाकाव्य में किया है। कौरवों द्वारा द्रौपदी के अपमान को भीमसेन सह नहीं सके। भीमसेन के क्रोध के माध्यम से रौद्र रस की अभिव्यक्ति की है–

दुःशासनस्य रूधिरं

पातुं, भङकतुं दुर्योधनजङ्घे।

भीमश्चक्रे भीमां

कोपारूणनयनः प्रतिज्ञाम्।।[2]

इस पद्य में दुःशासन का खून पीना व दुर्योधन की जाँघे तोड़ना आदि शत्रु आलम्बन विभाव है। भीमसेन कृत चेष्ठा में उद्दीपन विभाव है। क्रोध से भीमसेन की आँखे लाल होना अनुभाव है। द्रौपदी के अपमान से उदीप्त भीमसेन के क्रोध रूपी स्थायीभाव वाले रौद्ररस की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।

काशीनरेश की कन्याओं के अपहरण के प्रसंग में कवि ने बाहरवें सर्ग में रौद्र रस का प्रयोग किया है–

क्रुधान्विता मानधना उदायुधाः

विषेहिरे नैव निजावमाननाम्।

अतः प्रतीकाररता अमी व्यधुः

जवेन भीष्मोपरि बाणवर्षणम्।।[3]

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद– 3/227–230
2. भीष्मचरितम्–13/58
3. तत्रैव–12/44

प्रस्तुत पद्य में राजाओं द्वारा अपमान को न सहना आलम्बन विभाव है, अस्त्र–शस्त्र उठाना उद्दीपन विभाव है, बाणों द्वारा बौछार अनुभाव है। अमर्ष व्यभिचारिभाव है। अतः पूर्ण रुपेण रौद्र रस का परिपाक हुआ। भीष्म द्वारा अपहरण से उदीप्त राजाओं के क्रोधरूपी स्थायीभाव वाले रौद्र रस की स्पष्ट प्रतीति हो रही है।

वीर रस

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।।
आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरुपिणः।।
अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः।।
संचारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोञ्माचाः।
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।।[1]

उत्तम पात्र में आश्रित वीर रस होता है। इसका स्थायीभाव उत्साह देवता महेन्द्र और रंग सुवर्णव के सदृश होता है। इसमें जीतने योग्य शत्रु आलम्बनविभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपनविभाव होते हैं। युद्ध के सहायक (धनुष आदि) का अन्वेषणादि इसका अनुभाव है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क रोमाञ्चादि संचारिभाव है। दान, धर्म, दया और युद्ध के कारण यह (वीर) चार प्रकार का होता है।

महाकाव्य में वीर रस का प्रयोग बाहरवें, पन्द्रहवें सर्गों में मिलता है। काशी नरेश की कन्याओं के स्वयंवर व महाभारतयुद्ध वर्णन के प्रसंग में भीष्म तथा पाण्डवों का उत्साही रूप देखने को मिलता है। जो वीर रस का पोषक है। काशीनरेश की कन्याओं के स्वयंवर प्रसंग में भीष्म द्वारा कन्याओं का अपहरण करना, इस स्थल में कवि ने वीर रस का प्रयोग किया है–

परन्तु दिव्यास्त्रबलेन सत्वरं
रणे स सर्वानजयन्महीभृतः।
दिनैश्च कैश्चित्कुशली सकन्यको
विवेश मातुर्भवनं परन्तपः।।[2]

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद– 3/232–234
2. भीष्मचरितम्–12/45

उक्त श्लोक में सभी राजा आलम्बन विभाव है, भीष्म पितामह द्वारा दिव्यास्त्रों का प्रयोग अनुभाव है। भीष्म पितामह द्वारा युद्ध में उत्साह दिखाना ही वीररस के स्थायीभाव की पुष्टि कराने वाला है।

पन्द्रहवें सर्ग में भी कवि ने अनेक प्रसङ्गो में वीर रस का सन्निवेश किया है–

उत्साहमासाद्य ततो जयेप्सवः
द्रोणेन सेनापतिना सुरक्षिताः।
अधर्मलिप्ता धृतराष्ट्रसूनवः
प्राणान् पुरस्कृत्य रणार्थमागताः।।[1]

इस पद्य में द्रोणाचार्य से सुरक्षित होकर विजय प्राप्ति के लिए कौरव सेना का उत्साह से युक्त होकर रणभूमि में आना वीर रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला है। कौरवसेना का उत्साह वीर रस की पुष्टि कराने वाला है।

भयानक रस

भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः।
स्त्रीनिचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः।।
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः।।
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम्।
प्रलयस्वेद रोमाञ्चकम्पदिकप्रेक्षणादयः।।
जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासग्लानिदीनताः।
शङ्कापस्मारसंभ्रान्तिभृत्वाद्या व्यभिचारिणः।।[2]

भयानक रस का स्थायीभाव भय है। देवता काल, वर्ण कृष्ण और इसके आश्रयपात्र स्त्री तथा नीचपुरुष आदि होते हैं। जिससे भय उत्पन्न हो वह इसमें आलम्बन और उसकी चेष्टायें उद्दीपन मानी जाती है। विवर्णता, गद्गद भाषण, प्रलय (मूर्च्छा), स्वेद, रोमाञ्च, कम्प और इधर–उधर ताकना आदि इसके अनुभाव है। जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार, सम्भ्रम तथा मृत्यु आदि इसके व्यभिचारिभाव होते हैं।

---

1. भीष्मचरितम्–15/4
2. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद– 3/235–238

महाकवि ने भयानक रस का प्रयोग भी अवसरानुकूल अपने महाकाव्य में किया है। द्यूतक्रीड़ा में द्रौपदी को हार जाने के पश्चात् दुर्योधन द्वारा द्रौपदी के साथ अनधिकृत चेष्टा किए जाने के प्रसंग में कवि ने भयानक रस का प्रयोग किया है–

रूरूवुस्तदा वायसाः
भृशमशिवाः शिवाश्चापि ववाशिरे।
धार्तृराष्ट्रसदनेषु
श्रुत्वा तत्रास धृतराष्ट्रः।।[1]

प्रस्तुत पद्य में कौए एवं सियारनें आलम्बन विभाव है तथा अमाङ्गलिक आवाजें उद्दीपन विभाव है। इनकी आवाजों से धृतराष्ट्र का भयभीत होना भयरूपी स्थायीभाव वाले भयानक रस की पुष्टि करने वाला है।

पन्द्रहवें सर्ग में दुर्योधन द्वारा अपनी पराजय को देखकर यमराज समान भीमसेन से भयभीत होकर अपनी जान बचाने हेतु सरोवर में छिपने के प्रसङ्ग में कवि ने भयानक रस का प्रयोग किया है–

दुर्योधनो वीक्ष्य पराभवं निजं
भीत्वा च भीमाद् यमराजसन्निभात्।
पलाय्य युद्धादवितुं निजानसून
अगाधतोये सरसि व्यलीयत।।[2]

प्रस्तुत श्लोक में भीमसेन के भय से उदीप्त दुर्योधन के भयरूपी स्थायीभाव वाले भयानक रस की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो रही है।

शृङ्गार रस

श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इष्यते।।
परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः।।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्।

---

1. भीष्मचरितम्–13/59
2. तत्रैव–15/39

भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः।।
त्यक्त्वौग्रयमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः।।[1]

कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को श्रृङ्गः कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृङ्गार कहलाता है। परस्त्री तथा अनुरागशून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकायें तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन विभाव माने जाते हैं। चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेदादि इसके संचारिभाव होते हैं। इसका स्थायीभाव रति है और वर्ण श्याम है एवं देवता इसके विष्णु भगवान् है।

विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मतः।।[2]
यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।

अर्थात् विप्रलम्भ और सम्भोग ये दो श्रृङ्गाररस के भेद हैं। जहाँ अनुराग तो अति उत्कृष्ट है, परन्तु प्रियसमागम नहीं होता उसे विप्रलम्भ (वियोग) कहते हैं।

दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः।।[3]

अर्थात् एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त नायक और नायिका जहाँ परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि करते है वह सम्भोग श्रृङ्गार कहलाता है।

महाकाव्य में महाकवि ने श्रृङ्गार रस की भी सुन्दर अभिव्यञ्जना की है। श्रृङ्गार का निरुपण कामसूत्र में उल्लेखित शास्त्रीय पद्धति पर अवलम्बित है। श्रृङ्गार के उभय पक्षों का चित्रण कवि ने किया है–

विप्रलम्भ श्रृङ्गार– महाकवि ने विप्रलम्भ श्रृङ्गार का वर्णन आठवें, नवें सर्ग में किया है। आठवें सर्ग का नाम ही महाकवि ने वियोगवर्णन किया है इस पूरे सर्ग में कवि ने सत्यवती के विरह में राजा शान्तनु की सन्तप्तावस्था का चित्रण किया। कवि ने अभिलाषहेतुक विप्रलम्भ श्रृङ्गार का चित्रण किया है–

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद–3/182–185
2. तत्रैव, परिच्छेद 3/186
3. तत्रैव–3/210

खे खेलन्तं नयनसुभगं पौर्णमासीनिशायां
चन्द्रं दृष्ट्वा नृपनयनयोरागतं वल्लभास्यम्।
स्मारं स्मारं तदतिललितं दुर्लभं चानुचिन्त्य
स्वैरं स्वैरं बत नरपतेः श्वासवेगो विवृद्धः।।[1]

प्रस्तुत पद्य में प्रियतमा (सत्यवती) आलम्बन विभाव है, उसके मनोरम मुखड़े का स्मरण उद्दीपन विभाव है। इच्छा अनुभाव है उसके व्यञ्जय जो उत्कण्ठा वह व्यभिचारिभाव है। रति स्थायीभाव होकर विप्रलम्भ शृङ्गार रस को पुष्ट कराने वाली है।

नवें सर्ग में कवि ने शान्तनु के विरह में सत्यवती की विरहावस्था का निरूपण किया है। कई स्थल अवलोकनीय है—

सरः सपद्मं च नभः सतारकं
सुमं सभृङ्ग च लतां सभूरुहाम्।
विलोकयामास चिरं सदाशया
प्रियं च सस्मार निजं महीपतिम्।।[2]

प्रस्तुत पद्य में सत्यवती की भाव विह्वलता तथा स्मरण से विप्रलम्भ शृङ्गार की पुष्टि हो रही है।

साहित्य शास्त्र में पहले नारी के अनुराग का वर्णन उचित माना गया है (पूर्वे रक्ता भवेन्नारी पुमान् पश्चात्तदिङ्गितैः) इसी को पूर्वराग कहा गया है। शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार स्त्री—पुरुष के वैवाहिक सम्बन्ध के सम्पन्न होने के पूर्व तक अभिलाषारूपी पूर्वराग को ही दशा मानी जाती है। कवि ने महाकाव्य में पहले शान्तनु के प्रेम को समुपस्थापित किया है। सत्यवती को देखकर अनुरक्त हुए राजा शान्तनु की उक्ति है—

मनसि तां सुविचार्य निजोचितां
सहचरीं सुखदां सहधर्मिणीम्।
प्रणयपूर्वमवोचदमूं नृपो
भव शुभे! मम जीवनसङ्गिनी।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्—8/10
2. तत्रैव—9/12
3. तत्रैव—7/48

प्रस्तुत पद्य में कवि ने शान्तनु और सत्यवती के अनुराग को चित्रित किया है। यही अनुराग विप्रलम्भ श्रृङ्गार की स्पष्ट प्रतीति करता है।

सम्भोग श्रृङ्गार– राज शान्तनु और सत्यवती के विवाहोपरान्त संयोग श्रृङ्गार का चित्रण कवि ने किया है। श्रृङ्गार का चित्रण कामसूत्र पर आधारित है–यथा–

ऊरुपगूहं जघनोपगूहं
स्तनोपगूहं च ललाटिकां च।
आलिङ्गनान्यन्यविधानि चापि
शास्त्रीयरीत्यानुबभूवतुस्तौ।।

ललाटदेशे च कपोलपाल्यां
सुधाधरे चाप्यधरे च कण्ठे।
वक्षोजमध्ये रससागरे च
चुचुम्बतुस्तौ रभसा सरागौ।।

बालेन्दुवक्रं कलकण्ठमूले
मयूरपादं परितः स्तनाग्रम्।
नाभिं ह्यधोऽधश्च नितम्बगर्त्ते
मनोहरं मण्डलनामधेयम्।।

का्चीपथे चोत्पलपत्रसंज्ञं
जङ्घाप्रदेशे यवकोशरुपम्।
पृष्ठे प्रियायाश्च तरङ्गमालं
नखक्षतं चारु चकार राजा।।[1]

प्रस्तुत पद्यों में राजा शान्तनु द्वारा प्रियतमा सत्यवती को आलिङ्गन व चुम्बन करना तथा एक दूसरे के शरीर पर नखक्षत तथा दन्तक्षत आदि क्रियाएँ करना रतिभाव को पुष्ट कर संभोग श्रृङ्गार की अभिव्यक्ति कराने वाली है। कवि कृत् यह वर्णन अमर्यादित है। कवि ने अनधिकृत ऐसा वर्णन किया है।

बाहरवें सर्ग में विचित्रवीर्य के साथ अम्बिका, अम्बालिका के विवाहोपरान्त भी इसी प्रकार की रतिक्रिया देखने को मिलती है।

---

1. भीष्मचरितम्–10/30,33,35,36

अद्भुत रस

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः।।
पीतवर्णो, वस्तु लोकातिगमालम्बनंमतम्।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः।।
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद् गदस्वरसंभ्रमाः।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।।
वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः।[1]

अद्भुत रस का स्थायीभाव विस्मय, देवता गन्धर्व और वर्ण पीत है। अलौकिक वस्तु इसका आलम्बन और उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन होता है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गदस्वर, सम्भ्रम और नेत्रविकास आदि इसके अनुभाव होते हैं। वितर्क, आवेग, भ्रान्ति, हर्ष आदि इसके व्यभिचारी होते हैं।

महाकाव्य में महाकवि ने भीष्म पितामह के माध्यम से अलौकिक कृत्यों द्वारा अद्भुत दर्शन का आस्वाद पाठकों को कराया है–

सुरा बभूवुर्विवृताननास्तदा
सुराङ्गनानामपि विस्मयोऽभवत्।
प्रसूनवृष्टिं च विधाय तत्र ताः
बभाषिरे "राजसुतोऽयमद्भुतः"।।[2]

इस श्लोक में देवव्रत द्वारा भीष्म प्रतिज्ञा करने पर देवताओं के मुँह खुले रहने से तथा अप्सराओं के विस्मयरूपी स्थायीभाव वाले अद्भूत रस की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो रही है।

बीसवें सर्ग में भी कवि ने अद्भुत रस की संयोजना की है। भीष्म पितामह के देहत्याग के अवसर पर अद्भुत रस का नियोजन संदर्शनीय है–

न कोऽपि बाणो नहि कोऽपि च व्रणः
तस्मिन् क्षणे तस्य वपुष्यदृश्यत।
विलोक्य चेदं समुपस्थिता जनाः
विस्फार्य चक्षूंषि तमालुलोकिरे।।[3]

प्रस्तुत पद्य में पितामह भीष्म के शरीर पर घाव और बाण का लगा हुआ न दिखायी देना और उपस्थित लोगों द्वारा आँखें फैला–फैलाकर देखने से विस्मय रूप स्थायीभाव वाले उद्भुत रस की अभिव्यञ्जना हो रही है।

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद 3/241–244
2. भीष्मचरितम्–9/67
3. तत्रैव–20/46

हास्य रस

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेः प्रमथदैवतः।।
विकृताकारवाक्चेष्टं यमलोक्य हसेज्जनः।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।
अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः।
निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः।।[1]

विकृत आकार, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि के नाट्य से हास्य रस का आविर्भाव होता है। इसका स्थायीभाव 'हास' है। वर्ण शुक्ल और अधिष्ठातृ देवता प्रमथ (शिवगण) है। जिसकी विकृत आकृति,वाणी, चेष्टा आदि को देखकर लोगों का हंसना आलम्बन और उसकी चेष्टा उद्दीपनविभाव हैं। नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना अनुभाव है और निद्रा, आलस्य संचारीभाव है।

कवि ने षष्ठ सर्ग में हास्य रस का भी सन्निवेश किया है भीष्म की शिक्षा जब पूर्ण हो जाती है तब उनके हस्तिनापुर आगमन पर उनके स्वागत व दर्शन के लिए आतुर महिलाओं के चित्रण में कवि ने हास्य रस को उकेरा है–

विधाय कण्ठे रशनां ससम्भ्रमा
स्त्रजं च काचिद् दधती कटीतटे।
समाप्य शृङ्गारविधिं समागता
बभूव लोकस्मितभाजनं तदा।।

तथैव काचित्कचपाशजालके
दधार स्वीयं तिलकं त्वरावती।
चकार चूडामणिमाशु मस्तके
दधाव वातायनसम्मुखी च सा।।[2]

प्रस्तुत पद्यों में स्त्रियों द्वारा किया गया विकृत शृङ्गार आलम्बन है। इनकी चेष्टाएँ उद्दीपन है। स्त्रियों द्वारा कृत विकृत शृङ्गार से उद्दीप्त लोगों के मुस्कुराहट से हास्य रूपी स्थायीभाव वाले हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

वात्सल्य रस

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।।

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद 3/214–216
2. भीष्मचरितम्–6/30,31

उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः।
आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम्।।
पुलकानन्दबाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
संचारिणोऽनिष्टशङ्काहर्षगर्वादयो मताः।।
पद्मगर्भच्छविर्वर्णो दैवतं लोकमातरः।[1]

प्रकट चमत्कारक होने के कारण कोई–कोई वत्सलरस भी मानते हैं। इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि इसका आलम्बन और उसकी चेष्टा तथा विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। आलिंगन, अंगस्पर्श, सिर चूमना, देखना रोमांच, आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारीभाव होते हैं। इसका वर्ण कमलगर्भ के समान और ब्राह्मी आदिक मातायें इसकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं।

द्वितीय सर्ग में महाकवि सृजित बाललीलाओं में वात्सल्य रस भी दृष्टिगत होता है–

मणिविनिर्मितकुटिटमदर्पणे
निपतितं प्रतिबिम्बमसौ निजम्।
परिजिघृक्षुरनीश्वरतां व्रजन्
परममोदकरोऽभवदर्भकः।।[2]

भवनपालितहंसगणेन सः,
बहुविधं रमते स्म यदा कदा।
न रुदितं न हठं च चकार सः,
परिजनानखिलान्समतोषयत्।।[3]

प्रस्तुत पद्यों में राजकुमार की बाल चेष्टाएँ वात्सल्य रस की पोषक है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर अनायास पहुँच सकते हैं कि कवि ने लगभग सभी रसों यथा–शान्त, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, श‍ृङ्गार, अद्‍भूत, हास्य व वात्सल्य आदि की अभिव्यक्ति में अपनी कुशलता का प्रदर्शन किया है। वीभत्स रस का प्रयोग महाकाव्य में दृष्टिगत नहीं होता है। रसों के परिपाक में प्राचीन महाकवियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है लेकिन कवि की अपनी भावाभिव्यञ्जना भी इसके निरूपण में प्रशंसनीय है।

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथकविराज कृत–परिच्छेद 3/251–253
2. भीष्मचरितम्–2/17
3. तत्रैव–2/19

अलंकार

अलंकार शब्द की उत्पत्ति अलम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से हुई है जिसका अभिप्राय है सजाने का उपकरण जैसे स्त्री या पुरुष अपने शरीर को सुसज्जित करने के लिए अलंकार धारण करते हैं और उनसे शरीर की शोभावृद्धि होती है वैसे ही अलंकारों के प्रयोग से काव्य या नाटक के शोभा की वृद्धि होती है। अलंकारों का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। भरतमुनि ने केवल चार अलंकारों उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक की चर्चा की है। दण्डी के शब्दों में **"काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचवते।"** काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते है। काव्य में अलंकारों की स्थिति अपरिहार्य नहीं है। यदि अलंकार है तो वे काव्य के उत्कर्षादायक होगें यदि नहीं है तो भी काव्य की कोई हानि नहीं होगी। इसलिए मम्मट ने **"अनलङ्कृति पुनः क्वापि"** लिखकर अलंकार रहित को काव्य माना है। मम्मट अलंकार का लक्षण करते हुए लिखते हैं–

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलंकारस्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[1]

जैसे हार आदि गले का आभूषण अङ्गो के सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं वैसे ही अनुप्रास उपमा आदि अलंकार शब्द और अर्थ के सौन्दर्यवर्धक हुआ करते है।

ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने अलंकार को युक्तिपूर्ण ढंग से काव्य शरीर पर आश्रित माना है और आत्मभूत रस के उत्कर्षक होने पर उसे उपादेय सिद्ध किया है उनका दृष्टान्त बड़ा स्पष्ट है कि गले में होने वाला हार जिस प्रकार गलदेश को भूषित करता हुआ सुन्दरी के समग्र व्यक्तित्व को सुशोभित कर देता है उसी प्रकार शब्द या अर्थ में होने वाला अलंकार काव्य के मुख्यार्थ अर्थात् रस को सुशोभित करता है–

तमर्धमवलम्बते येऽङ्गिन ते गुणाः स्मृताः।

अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत्।।[2]

काव्यगत अलंकारों के द्वारा ही काव्यगत रस सुशोभित होता है जहाँ शब्दों के माध्यम से काव्य की शोभावृद्धि होती है वहाँ शब्दालंकार और जहाँ अर्थो के माध्यम से काव्य की शोभावृद्धि होती है वहाँ अर्थालंकार होता है।

1. काव्यप्रकाश–मम्मट–8/67
2. ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन–2/6

काव्य में कवि को वर्णन का प्रचूर अवसर मिलता है अतः कवि अपने काव्य के मध्य–मध्य में सर्वत्र अलंकारों की विवेचना करता है जिसे की उसका काव्य शोभादायक हो सके। प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि ने शृङ्गार, करुण, वीर, हास्य, भयानक, अद्‌भुत, वात्सल्य, शान्त आदि रसों का प्रयोग किया है इन रसों के चित्रण में कवि ने विविध अलंकारों का प्रयोग स्थान–स्थान पर किया है जिनका विवरण निम्नवत् है।

1. शब्दालंकार

अनुप्रास–"वर्णसाम्यमनुप्रासः।"[1]

आचार्य मम्मट के अनुसार जहाँ वर्णो की समानता हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।

"भीष्मचरितम्" महाकाव्य में अनेक ऐसे पद्य है जहाँ शब्दों की समानता होने के कारण अनुप्रास अलंकार दृष्टिगत होता है।

उदाहरण –

दिने दिने दिव्यशरानवाप्नुवन्
परां मुदं प्राप नरेन्द्रनन्दनः।
तथा तदीया गुरुपादपद्‌मयोः
क्षणे क्षणे भक्तिरभूद्‌द्रढीयसी।।[2]

इस पद्य में दिने–दिने तथा क्षणे–क्षणे के साथ–साथ 'गुरुपादपद्' में 'प' और 'द' आदि वर्णों की आवृत्ति होने के कारण अनुप्रास अलंकार है।

उदाहरण –

निजे निजे कर्मणि सर्वमानवाः
तदा प्रवृता अभवन्मुदान्विताः।
समस्तदेशे धनधान्यसम्पदो
निरन्तरं चात्र विकासमाययुः।।[3]

प्रस्तुत श्लोक में 'निजे निजे' में 'न' और 'ज' की तथा 'धनधान्यसम्पदो' में 'ध' और 'न' की उसी क्रम से एक बार आवृत्ति हुई है, अतः यह अनुप्रास का उत्कृष्ट उदाहरण है।

---

1. काव्यप्रकाश–मम्मट–9/104
2. भीष्मचरितम्–5/12
3. तत्रैव–1/29

उदाहरण–

तत्पालनीयान् परिपालयन्नृपः
दण्ड्यानशेषानपि दण्डयंस्तथा।
कल्याणकार्याण्यखिलप्रजाकृते
नयेन कुर्वन् भवति प्रभाववान्।।[1]

उपर्युक्त पद्य में दण्डय–दण्डयन् में व्यञ्जन समूह की सकृत आवृति होने से अनुप्रास अलंकार दृष्टिगत होता है।

यमक – 'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।।'[2]

भिन्न–भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय की पूर्वक्रम से ही आवृत्ति होने के कारण 'यमक अलंकार' होता है।

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य के कुछ पद्यों को महाकवि ने यमक अलंकार से निबद्धित किया है।

उदाहरण –

सुरासुराणामपि वन्द्यतां गतं
मखाग्निधूमेन सदा सुगन्धितम्।
रतं च पुण्येषु मनुष्यतावृतं
विशालराष्ट्रं मम भाति भारतम्।।[3]

इस पद्य के प्रथम चरण में 'सुरा सुरा' की आवृत्ति हुई है जिसमें प्रथम 'सुरा' का अर्थ है 'देवता' तथा दूसरा 'सुरा' का अर्थ दानव से है अतः यहाँ पर यमक अलंकार स्पष्टित होता है।

उदाहरण –

विनयिना नयिना भवता वयं
बहुसमादरभूमिमवापिताः।
भवदभीप्सितकर्म हि कुर्महे
जगति नैव तपन्ति गुणप्रिया।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–17/49
2. काव्यप्रकाश–मम्मट'9/83
3. भीष्मचरितम्–1/12
4. तत्रैव––2/36

इस पद्य के प्रथम चरण में **'नयिना नयिना'** की आवृति हुई है जिसमें प्रथम **नयिना** का अर्थ है 'विन्रम' तथा दूसरे 'नयिना' का अर्थ 'नीतिमान्' है अतः इस पद्य में यमक अलंकार दृष्टिगत होता है।

उदाहरण –

पतिमनोरमणी रमणीमणी
रतिसमा पतिभक्तिपरायणा।
प्रियतमा यमराजवियोजिता
नृपतिपार्श्वगतेव तदाभवत्।।[1]

यहाँ रमणी–रमणी में अर्थ भिन्न होने के कारण यमक अलंकार है जैसे प्रथम रमणी का अर्थ–आनन्ददायिनी और द्वितीय रमणी का अर्थ सुन्दरी है।

तथा–

भीमेन भीमेन बलाद् रणे कृतैः
गदाप्रहारैः पविपातसन्निभैः।
सर्वाणि मर्माण्यपि निन्द्यकर्मणः,
तदा बभूवुः सुतरां गतासुवत्।।[2]

इस श्लोक के प्रथम चरण में भीमेन–भीमेन का अर्थ भिन्न होने के कारण यमक अलंकार स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। प्रथम भीमेन का अर्थ–भयंकर और द्वितीय भीमेन का भीमसेन है।

श्लेष – श्लिटैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।[3]

श्लिष्ट पदों से अनेक अर्थों का अभिधान होने पर श्लेषालङ्कार होता है।

उदाहरण –

नमामि देवीं वरदायिनीं शुभां
परायणां भक्तजनार्त्तिनाशने।
शरीररक्षां विदधाति मामकीं
दयावत्ती स्नेहवती च सा तदा।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–7/24
2. तत्रैव–15/44
3. साहित्यदर्पण–विश्वनाथ– 10/11
4. भीष्मचरितम्–1/1

प्रस्तुत पद्य में कवि ने स्वयं महाकाव्य के मङ्गलाचरण में सब कुछ देने में समर्थ सरस्वती देवी मेरी (महाकवि) रक्षा करती है जो वरदान देने वाली, भक्तजनों के दुःखों को दूर करने वाली तथा दया व स्नेह से परिपूर्ण है।

उदाहरण –

उमापतिं स्तोतृजनार्तिहारकं
सदाशुतोष विधिविष्णुवन्दितम्।
महाधिदेवं शिवरात्रिपूजितं
नमामि शम्भु कविबुद्ध्यवाप्तये।।[1]

उक्त उदाहरण में कवि स्वयं कवि बुद्धि के लिए भगवान् शंकर को प्रणाम कर रहे हैं कि जो कष्टों को दूर करने वाले, शीघ्र प्रसन्न होने वाले, ब्रह्मा व विष्णु द्वारा अभिवन्दित, शिवरात्रि में पूजे जाने वाले, पार्वती के पति आदि अनेक अर्थों का अभिधान होने के कारण उक्त श्लोक में श्लेषालङ्कार अभिव्यक्त होता है।

यथा –

प्रतप्य पूर्णं दिवसं स लोकान्
अदीर्धरश्मिर्बत रक्तदेहः।
भास्वानिवासावपराम्बुराशौ
नाराचविद्धो निपतात युद्धे।।[2]

चतुर्दश सर्ग में महाकवि ने युद्धभूमि में भीष्म के पतन का वर्णन करते हुए उपर्युक्त श्लोक में श्लेषालंकार को चित्रित किया है। भीष्म पितामह सांयकाल में अर्जुन के बाणों से विंधकर, रक्त से लथपथ होकर उसी प्रकार गिर गए, जिस प्रकार सूर्य, सारे दिन लोगों को अपने तेज से सन्तप्त करके सन्ध्या–समय छोटी किरणों से युक्त होकर और लाल देह वाला बनकर पश्चिमी समुद्र में गिर जाना आदि अनेक अर्थो का अभिधान होने से उक्त श्लोक में श्लेषालंकार दृष्टिगत होता है।

2. अर्थालङ्कार

उपमा – साधर्म्यमुपमा भेदे।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–1/2
2. तत्रैव–14/53
3. काव्यप्रकाश–मम्मट 10/1

उपमा तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य वर्णन को ही उपमा कहा जाता है। अप्पयदीक्षित ने इसे शैलूषी कहकर सादृश्यमूलक सारे अलंकारों का आधार माना है।

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में कवि ने अनेक स्थलों पर उपमा अलंकार का सुन्दर चित्रण किया है।

उदाहरण –

विधिवशाज्जननीसुखवञ्चितः
नृपतिना विधिना परिपालितः।
द्रुतमवर्धत राजसुतोऽप्सौ
धवलपक्षभवो हि यथा शशी।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में राजकुमार देवव्रत के शारीरिक विकास की तुलना शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के बढ़ने से की है। अतः यहाँ शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा का बढ़ना उपमान तथा राजकुमार का शारीरिक विकास उपमेय है तथा यहाँ 'यथा' शब्द उपमाद्योतक है। साधारणधर्म **वर्धत** है इस कारण से उपमा अलङ्कार है।

उदाहरण –

नृपकुमारमनोहरचेष्टितैः
सकलराजगृहं च शनैः शनैः।
पुनरभूत्सुखितं च दिदेव तत्
लषति चन्द्रमसा गगनं यथा।।[2]

यहाँ पर राजकुमार का चमकना उपमेय और चन्द्रमा से आकाश का चमकना उपमान है। साधारण धर्म **चमकना** है **'यथा'** उपमावाचक शब्द है। अतः यहाँ पर उपमा अलंकार द्योतित होता है।

यथा –

प्रतीपकाष्ठाचलिते जवेन
स्वमार्गलाभाय यथा प्रझञ्झे।
सेने उभे यत्नयुते अभूतां
स्वलक्ष्यलाभाय परस्परं ते।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–2/14
2. तत्रैव–2/16
3. तत्रैव–14/40

उक्त उदाहरण में युद्धरत कौरव–पाण्डव सेना जैसे वेगपूर्वक चली हुई दो आंधियाँ अपना रास्ता बनाने का प्रयास कर रही हों, दोनों सेना अपने लक्ष्य की कोशिश कर रही थी। अतः यहाँ विपरीत दिशा से वेगपूर्वक चली दो आंधियाँ उपमान है तथा कौरव और पाण्डवों की सेनाएँ उपमेय है तथा 'यथा' शब्द उपमाद्योतक है। साधारण धर्म यत्नयुते (प्रयासरत) है। इस कारण से यहाँ उपमा अलंकार परिलक्षित होता है।

अर्थान्तरन्यास

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।[1]

जहाँ सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाएँ, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। कवि ने महाकाव्य के अनेक स्थलों पर सामान्य का विशेष से समर्थन किया है।

उदाहरण –

देशेषु तीर्थेषु मठेषु धामसु
नदीषु भूभृत्सु वनेषु पर्वसु।
श्रद्धां दधीरन्नखिलाः प्रजाजनाः
देशात्मवासोऽत्र मतो महर्षिभिः।।[2]

इस पद्य में प्रजाजनों को अपने देश के त्यौहारों, तीर्थ–स्थानों, देवालयों आदि पर श्रद्धा रखनी चाहिए। ऋषियों, मुनियों और विद्वानों ने इनमें देश की आत्मा का निवास माना है। यहाँ पर पूर्वार्ध सामान्य का उत्तरार्ध विशेष से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

उदाहरण –

गृहमयूरगणो निजनर्तनैः
नृपकुमारमनोऽरमयद् यदा।
शिवसुतस्मरणं विदधे नवं
मतिमतां हि मतौ स सुतस्तदा।।[3]

1. काव्यप्रकाश–मम्मट–10/23
2. भीष्मचरितम्–18/37
3. तत्रैव–2/18

प्रस्तुत श्लोक में पालतू मोंर के नृत्य से राजकुमार का मनोरञ्जन इस सामान्य कथन से विशेष कथन विद्वानों के मन में राजकुमार भगवान् शंकर के पुत्र कार्तिकेय की याद ताजा कर देता है का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

उदाहरण –

अकिञ्चनो हीनमतिर्भवन्नपि
करोमि काव्यं भगवत्कृपाश्रितः।
उपानदाच्छादितपादमानवो
न याति किं कटकिते धरातले?।।[1]

अर्थात् अकिञ्चन और अल्पबुद्धि होता हुआ भी मैं भगवत्कृपा का आश्रय लेकर काव्य रचना कर रहा हूँ इस सामान्य कथन से विशेष कथन जूतों से अपने पैरों को ढँक लेने वाला मनुष्य क्या काँटों से भरे रास्ते पर नहीं चला करता? का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

उदाहरण –

सिषेविरे तामथ राजवैद्याः
यथा न दोषो भवतात्प्रसूतौ।
दुग्धेन दग्धो धयतीह तक्रं
फूत्कारपूर्वं मतिमान्मनुष्यः।।[2]

इस पद्य में सत्यवती–गर्भावस्था–वर्णन प्रसंग में अर्थान्तरन्यास अलंकार चमत्कारोत्पादक है। राजवैद्य सत्यवती की प्रसव–प्रक्रिया की देखभाल में लग गये ताकि कोई गड़बड़ी नहीं हो। दूध का जला समझदार मनुष्य मट्ठे को भी फूँककर पीता है। यहाँ पूर्वार्ध पद सामान्य का उतरार्ध पद विशेष से समर्थन किया गया है जिस कारण से अर्थान्तरन्यास अलंकार स्पष्टित होता है।

उत्प्रेक्षा – संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।[3]

जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाए, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

1. भीष्मचरितम्–1/8
2. तत्रैव–11/8
3. काव्यप्रकाश–मम्मट–10/13

भीष्मचरितम् महाकाव्य में कवि ने विविध स्थानों पर उत्प्रेक्षा अलंकार युक्त पद्यों का वर्णन किया है।

उदाहरण –

गवाक्षदेशेषु मुखानि योषितां
विलोक्यमानानि सितासितान्यहो।
सितासिताब्जस्तबकानि केनचित्
नियोजितानीव विरेजिरे तदा।।[1]

प्रस्तुत पद्य में उपमेय स्त्रियों के गोरे और साँवले मुखड़े की उपमान श्वेत और नील कमल के गुच्छों के साथ (उत्कृष्ट कोटि सन्देह) सम्भावना व्यक्त की गयी है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उदाहरण –

अमूश्च ता हर्म्यगता नराङ्गनाः
कुमारमालोकयिंतु धराननाः।
दिवोऽवतीर्णा इव निर्जनाङ्गनाः
प्रतीयमाना अभवन्वराङ्गनाः।।[2]

प्रस्तुत श्लोक में वर्ण्यविषय उपमेय सुन्दर स्त्रियों की उपमान अप्सराओं के साथ (उत्कृष्टक कोटि सन्देह) सम्भावना व्यक्त की गयी है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

यथा –

विलोकयन्भारतभूमिंभागान्
हृदा प्रशंसंश्च तदीयलक्ष्मीम्।
स्वाभीष्टसिद्धेरिव मूलदेशं
महेन्द्रसंज्ञं गिरिमाससाद।।[3]

इस पद्य में राजकुमार देवव्रत द्वारा महेन्द्र पर्वत के समीप जाना उपमेय तथा वह अपनी अभिष्ट सिद्धि की जड़ पर पहुँच गए हों उपमान की सम्भावना की जाती है इस कारण यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार द्योतित होता है।

---

1. भीष्मचरितम्–6/37
2. तत्रैव–6/38
3. तत्रैव–4/30

तथा –

स्त्रोतोवहैका तदुपत्यकायाम्

आसीद् वहन्ती सुजला सुरम्या।

विहंगमानां कलकूजनैः सा

प्रत्युद्व्रजन्तीव बभौ कुमारम्।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में नदी के किनारे पक्षियों की चहचहाहट उपमेय से राजकुमार का स्वागत करना उपमान से सम्भावित होना ही उत्प्रेक्षा अलंकार प्रतीत होता है।

अतिश्योक्ति – सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।।[2]

जहाँ प्रस्तुत का बढ़ा–चढ़ाकर लोक मर्यादा के विरुद्ध वर्णन किया जाए, वहाँ अतिश्योक्ति अलङ्कार होता है।

कवि ने **'भीष्मचरितम्'** महाकाव्य के अनेक श्लोकों में अतिश्योक्ति अलंकार की निबद्धता दृष्टिगत की है।

उदाहरण –

तदोत्थितो राजसुतेन्दुवेल्लितः।

प्रधानभूपाध्वनि लोकसागरः।

कृतान्तरालश्च नरेन्द्रसूनवे

दधार रामेश्वरसेतुयुक्तताम्।।[3]

प्रस्तुत श्लोक में उपमान रामेश्वर पुल के द्वारा उपमेय जन समुद्र के अभेद का निश्चय करना (कल्पित अभेद) को बताने से अतिश्योक्ति अलंकार है।

उदाहरण –

लब्धप्रियौ तावतिचण्डवेगौ

समानजाती समचित्तवृत्ती।

उमामहेशाविव बद्धरागौ

विस्मृत्य सर्व स्म सदा रमेते।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–4 / 31
2. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ–10 / 46
3. भीष्मचरितम्–6 / 42
4. तत्रैव–10 / 40

उक्त पद्य में महाकवि ने सत्यवती व शान्तनु के रमण की तुलना पार्वती व भगवान् शंकर के रमण से की है अर्थात् सत्यवती व शान्तनु उपमेय और पार्वती व शंकर उपमान वाचक है अतः साधारण धर्म रमण करने से होने के कारण अतिश्योक्ति अलंकार है।

भाविक – प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः। तद्भाविकम्।[1]

जहाँ भूत या भविष्य के अर्थ का वर्णन वर्तमान में किया जाए, वहाँ भाविक अलंकार होता है।

उदाहरण –

भूमौ नराणां गगने दिवोकसां
समुत्थिता भीष्मकृते गिरः शुभाः।
महाप्रयाणं च पितामहस्य तत्
मन्येऽहमद्याप्युपमानवर्जितम्।।[2]

इस श्लोक में भीष्म पितामह का महाप्रयाण भूतकालीन होकर भी कवि ने स्वयं की दृष्टि में वह दृश्य आज भी अनुपमेय बताया है जिससे यह दृष्टिगत होता है कि भूतकालीन वर्णन को कवि ने इस पद्य के माध्यम से वर्तमानकालीन वर्णन की अनुभूति करायी है, जिसे यहाँ पर भाविक अलङ्कार दृष्टिगत होता है।

विभावना – क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिविभावना।।[3]

यदि बिना कारण के भी कार्य का होना वर्णित होता है तो वहाँ पर विभावना अलङ्कार होता है।

उदाहरण –

तवाद्य लोकोत्तरदानकर्म्मणा
प्रभावितोऽहं वितरामि ते वरम्।
विना विवाहं च विनापि सन्ततिं
सुपुत्रिणां लोकसुखानि लप्स्यसे।।[4]

प्रस्तुत पद्य में भीष्म पितामह को बिना विवाह व बिना सन्तान उत्पन्न किए (कारण) ब्रह्माजी द्वारा वरदान रूप में सत्पुत्रवानों को प्राप्त होने (कार्य) का वर्णन कवि ने किया है अतः यहाँ पर विभावना अलंकार दृष्टिगत होता है।

---

1. काव्यप्रकाश–मम्मट 10/49
2. भीष्मचरितम्–20/49
3. काव्यप्रकाश–मम्मट 10/21
4. भीष्मचरितम्–9/70

विशेषोक्ति – सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।।[1]

यदि हेतु (कारण) के रहते हुए भी फल (कार्य) के न होने पर विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।

कवि ने दसवें व चौहदवें सर्ग में विशेषोक्ति अलङ्कार युक्त पद्यों को महाकाव्य वर्णित किया है।

उदाहरण –

कामेन भोगे मनसः प्रवृत्तिः
भोगेन कामान्न मनोनिवृत्तिः
बम्भ्रम्यते प्राणिषु चक्रमेतत्
सर्गस्थितिश्चापि तयोश्चकास्ति।।[2]

प्रस्तुत उदाहरण के वर्ण्यविषय में संभोग करने से मन (कारण) कामवासना की ओर से विमुख न होना (कार्य) ही लक्षित होता है इस कारण से यहाँ पर विशेषोक्ति अलङ्कार है।

उदाहरण –

भङ्क्तुं समर्थोऽपि किरीटिबाणान्
बभञ्ज भीष्मो नहि मर्त्तुकामः।
विद्वश्च तैर्मर्मसु देहलग्नैः
पितामहो भूमितले पपात।।[3]

उक्त श्लोक में भीष्म पितामह अर्जुन के बाणों को काट गिराने में समर्थ होने के बावजूद (कारण) उन बाणों को नहीं काटा (कार्य) के होने के कारण यहाँ पर विशेषोक्ति अलङ्कार की छटा दर्शनीय है।

यथा –

रुच्याधारं पचनकुशलैर्निर्मितं प्रीतिपूर्वं
काले काले प्रियपरिजनैरर्पितं श्रद्धयापि।
भोज्यं पेयं रसरसयुतं पोषकं चेन्द्रियाणां
तृप्तिं स्वल्पामपि वसुमतीजानये नादिषाताम्।।[4]

---

1. साहित्यदर्पण–विश्वनाथ–10/67
2. भीष्मचरितम्–10/45
3. तत्रैव–14/52
4. तत्रैव–8/8

इस पद्य में पाकक्रिया में कुशल लोगों द्वारा बनाया गया स्वादिष्ट भोजन (कारण) भोज्य और पेय पदार्थ उन्हें तृप्ति न करना (कार्य) अर्थात् कारण के होते हुए भी कार्य की पूर्ति न होना ही विशेषोक्ति अलंकार की पुष्टि कराता है।

तथा –

बहुविधाः कुसुमसतबकस्तनाः
हरितपत्रमनोहरशाटिकाः।
मलयवातचला वनवीरुधोऽ–
पि ददतिस्म न शान्तनवे मुदम्।। [1]

प्रस्तुत श्लोक में पुष्पगुच्छ रूपी स्तनोवाली, हरितपत्र रूपी सुन्दर साड़ीवाली लताओं ने (कारण) राजा शान्तनु को प्रसन्नता नहीं देना (कार्य) अर्थात् कारण के रहते हुए भी कार्य का सम्पन्न न होना ही विशेषोक्ति अलंकार को निरूपित करता है।

भ्रान्तिमान्– साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः।[2]

सादृश्य के कारण अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को यदि वह कवि की प्रतिभा से उद्घाटित हो उसे भ्रान्तिमान अलङ्कार कहते है।

उदाहरण –

विदधतः कुसुमेषु च गुञ्जनं
मधुकरानवलोक्य स कोपभाक्।
कुलसुतापरिपीडकलम्पटा–
निव च शासितुमैच्छदहो! स तान्।।[3]

प्रस्तुत पद्य में लताओं के फूलों पर भँवरों को देखकर राजा शान्तनु क्रोधित हो गये। उन्होंने कुलीन कन्याओं के साथ गुण्डो (भँवरो) को दण्डित करना चाहा। अतः यहाँ पर पूर्वपद की उत्तरपद से सादृश्यता होने के कारण भ्रान्तिमान् अलंकार है।

सन्देह – संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–7 / 18
2. साहित्यदर्पण–विश्वनाथ–10 / 36
3. भीष्मचरितम्–7 / 16
4. साहित्यदर्पण–विश्वनाथ–शालिग्राम शास्त्री 10 / 35

उपमेय में उपमान के संशय को संदेहालङ्कार कहते है, परन्तु उस संशय को कवि की प्रतिभा से उत्थित होना चाहिए।

उदाहरण –

सुरभितामथ मण्टकितां शुभां
सुपरिपक्वफलां पुरतः स्थिताम्।
विहगवाचमवेक्ष्य स दाडिमीं
निजकलत्रमना अभवच्चिरम्।।[1]

इस श्लोक में कवि ने कल्पनाप्रसूत वर्णन किया है कि पके हुए फलों वाली और पक्षियों की भाषा बोलने वाली दाडिमी (उपमेय) को देखकर राजा शान्तनु का मन का प्रियतमा (उपमान) में लगना ही संशय होने के कारण सन्देहालङ्कार की प्रतीति होती है।

दृष्टान्त – दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।[2]

दो वाक्यों में धर्म सहित उपमानोपमेय के प्रतिबिम्बन को दृष्टान्ताऽङ्कार कहते हैं।

उदाहरण –

विलोक्य शिष्यस्य तथा प्रवीणतां
मनो गुरोश्चापि जहर्ष भूयसा।
प्रफुल्लमुद्यानमवेक्ष्य सर्वतो
मनो मुदं याति सदैव मालिनः।।[3]

इस पद्य में अपने शिष्य राजकुमार देवव्रत की पढ़ने की अद्‌भुत प्रवीणता को देखकर गुरु परशुराम जी का मन अत्यधिक प्रसन्न रहता था (उपमेय)। अपने बगीचे को फूलों से भरा देखकर माली का मन हमेशा खुश होता है (उपमान)। यहाँ पर उपमानोपमेय का प्रतिबिम्ब होने के कारण दृष्टान्त अलंकार परिलक्षित होता है।

यथा –

सा रत्नगर्भाभरणानि मेने
भारायमाणानि निरर्थकानि।
उदेष्यति द्यौर्दिननाथरत्ने
जहाति ताराभरणानि नूनम्।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–7/23
2. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ–परिच्छेद 10/50
3. भीष्मचरितम्–5/25
4. तत्रैव–11/3

एकादश सर्ग के उपर्युक्त श्लोक में कवि के कल्पना प्रसूत वर्णन से दृष्टान्त अलंकार की छटा दर्शनीय है। सत्यवती की कोख में बहुमूल्य रत्न होने के कारण सम्पूर्ण शारीरिक आभूषणों को बोझ समझकर त्यागना (उपमेय) और सूर्य जब निकलने वाला होता है तो आकाश की देवी अपने तारारूपी आभूषणों को त्याग देती है (उपमान) का प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार की अनुभूति होती है।

तथा –

सामान्यकालेऽप्युभयोः समन्वयं
श्रयन्नृपो लोकमनांसि साधयेत्।
न रोटिकापाककृते स्वचूल्दके
सूदो मृदुं वा कुरुतेऽनलं खरम्।।[1]

अर्थात् राजा कोमलता और कठोरता का समन्वय रखते हुए प्रजा के चित्त को नियन्त्रित करना (उपमेय) का खाना बनाने वाला व्यक्ति रोटियाँ सेंकने के लिए चूल्हे की आग को न अधिक और न मन्द रखता है (उपमान) से प्रतिबिम्ब होने से दृष्टान्त अलंकार स्पष्टित होता है।

कवि के महाकाव्य में अनेक स्थलों पर दृष्टान्त अलंकार प्रतीत होता है।

समासोक्ति

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।।[2]
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।

जिस वाक्य में 'सम' अर्थात् प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित होने वाले कार्य, लिंग और विशेषणों से प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप किया जाए वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।

महाकवि दीक्षित जी ने महेन्द्र पर्वत वर्णन प्रसंग में समासोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है–

उदाहरण–

पुष्पाननाः कोमलपत्रवस्त्राः
फलस्तना भृङ्गकचा लताश्च।
नम्रीकृतास्तत्र समीरणेन
नेमुर्गृहे तं परिचारिकावत्।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–17/15
2. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ–परिच्छेद 10/56
3. भीष्मचरितम्–4/37

उक्त पद्य में पुष्परूपी मुखवाली, फलरूपी स्तनों वाली, भ्रमररूपी बालों वाली, वायु द्वारा झुकाई गई और कोमल पतों रूपी साड़ी धारण करने वाली लताओं ने (प्रस्तुत वृतान्त स्त्रीलिंग) वहाँ राजमहल की सेविकाओं की भाँति (अप्रस्तुत वृतान्त स्त्रीलिंग) राजकुमार को प्रणाम किया। यहाँ पर समान लिंग द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप प्रतीत होने से समासोक्ति अलंकार स्पष्ट रूप से द्योतित होता है।

व्यतिरेक – आधिकयमुपमेयस्योपामानान्न्यूनताथवा।।[1]

उपमान में उपमेय का आधिक्य अथवा उपमान में उपमेय की न्यूनता वर्णन करने में व्यतिरेक अलंकार होता है।

द्वितीय सर्ग में राजकुमार देवव्रत की बाललीलाओं के वर्णन में कवि ने व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग किया है–

कतिपयैर्दिवसैश्च नृपात्मजः
स्वमुखकान्तितिरस्कृतवारिजः।
स हसितुं स्मयितुं चलितुं तथा
प्रभुरभूदतिरम्यवपुर्वहन्।।[2]

उपर्युक्त पद्य में मुख की शोभा से कमल की शोभा को जीतना अर्थात् मुख रूप (उपमेय) का कमल रूप (उपमान) से आधिक्य वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार परिलक्षित होता है।

उल्लेख – क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित्।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः, स उल्लेख उच्यते।।[3]

'उल्लेख' वह अलंकार है जहाँ ज्ञाताओं के भेद से या विषयभेद से एक वस्तु का अनेक प्रकार से उल्लेख (वर्णन या ज्ञान) करना।

महाकवि दीक्षित जी ने प्रस्तुत महाकाव्य के मंगलाचरण में इस अलंकार का निबन्धन किया है–

नमामि देवीं वरदायिनीं शुभां
परायणां भक्तजनात्तिनाशने।
शरीररक्षां विदधाति मामकीं
दयावती स्नेहवती च सा सदा।।[4]

---

1. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ–परिच्छेद 10/52
2. भीष्मचरितम्–2/15
3. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ–परिच्छेद 10/37
4. भीष्मचरितम्–1/1

इस श्लोक में कवि ने वरदान देने वाली, मंगल करने वाली और भक्तजनों के दुःखों को दूर करने वाली आदि अनेक प्रकार से देवी का वर्णन करने के कारण उल्लेख अलंकार स्पष्टित होता है।

यथा –

उमापतिं स्तोतृजनार्तिहारकं
सदाशुतोषं विधिविष्णुवन्दितम्।
मदाधिदेवं शिवरात्रिपूजितं
नमामि शम्भुं कविबुद्ध्यवाप्तये।।[1]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने देवाधिदेव शंकर का अनेक प्रकार से वर्णन किया है जैसे–पार्वती के पति, कष्टहर्ता, शिवरात्रि में पूजित, शीघ्र प्रसन्न होने वाले, ब्रह्मा और विष्णु से अभिवन्दित आदि। भगवान् शंकर का अनेक प्रकार से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार की अनुभूति होती है।

यथा –

उमासुतं विघ्नविनाशकर्मठं
गणेशनाम्ना प्रथितं महीतले।
दयानिधिं बन्धुवरं विनायकं
नमामि भक्त्या कविकर्मपूत्तये।।[2]

उक्त श्लोक में कवि ने गणेश जी को अनेक प्रकार से चित्रित किया है जिससे उल्लेख अलंकार स्पष्टित होता है। जैसे– विघ्नों के विनाश में निपुण, दया के सागर, श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक, भ्रातृ–प्रवर, पार्वती पुत्र आदि।

उपमेयोपमा – पर्यायेण द्वयोरेतदुपमेयोपमा मता।[3]

दो पदार्थों की जहाँ उपमानोपमेयता क्रम से हो अर्थात् एक वाक्य में जो उपमान है वह अगले में उपमेय हो जाए तथा पहले में जो उपमेय था वह दूसरे में उपमान बन जाए तो वहाँ उपमेयोपमा नामक अलंकार होता है।

---

1. भीष्मचरितम्–1/2
2. तत्रैव–1/4
3. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ–परिच्छेद 10/27/पृ. 303

महाकवि ने द्वादश सर्ग में भीष्म की दृढप्रतिज्ञा के प्रसंग में उपमेयोपमा अलंकार का प्रयोग किया है–

निशाकरो नाम दिवाकरायतां
दिवाकरो नाम निशाकरायताम्।
जगद्विपर्यासमवाप्नुयाद् वरं
न मे प्रतिज्ञा ह्यनृता भविष्यति।।[1]

उपर्युक्त पद्य में चन्द्रमा (उपमेय) चाहे सूर्य (उपमान) बन जाए, सूर्य (उपमेय) चाहे चन्द्रमा (उपमान) बन जाए। अर्थात् एक वाक्य में जो सूर्य (उपमेय) है वह अगले में सूर्य (उपमान) हो गया तथा पहले में जो चन्द्रमा (उपमेय) था वह दूसरे में चन्द्रमा (उपमान) होने के कारण उपमेयोपमा अलंकार की स्पष्ट प्रतीति होती है।

उपर्युक्त अलंकारों के विवेचन से स्पष्ट है कि भीष्मचरित महाकाव्य में अनुप्रास अलंकार का पदलालित्य, उपमानों की विविधता, उत्प्रेक्षओं की अपूर्व छटा, नवीन कल्पनाओं की उद्भावना मानव मन को मुग्ध कर देती है। इसी कारण से अनुप्रास और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का अधिक प्रयोग औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है। अलंकारों का प्रयोग सायासपूर्ण नहीं है अपितु स्वाभाविक है।

गुण

गुणों की चर्चा भी सर्वप्रथम आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में की है। काव्य में गुणों की स्थिति भी अपरिहार्य है जिस प्रकार काव्य शरीर (शब्द और अर्थ) के धर्म अलंकार होते है, उसी प्रकार काव्य की आत्मा (रस) के धर्म गुण होते है। अलंकारों को (शब्द एवं अर्थ) काव्य शरीर का अस्थिर धर्म तथा गुणों को काव्य की आत्मा रस का स्थिर धर्म (अचल स्थिति वाला धर्म) माना गया है। गुण नित्य है, काव्य की आत्मा रस के धर्म होने के कारण परन्तु अलंकार अनित्य है काव्य शरीर के धर्म होने के कारण।

गुण एवं अलंकार के विषय में मम्मट से पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों में मतैक्य नहीं है। काव्यालंकार सूत्र के प्रणेता वामन ने गुण एवं अलंकार दोनों में भेद माना है उनके अनुसार–

"काव्यशोभायाः कर्तारो धर्म गुणास्तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।"[2]

अर्थात् काव्य शोभा को उत्पन्न करने वाले धर्म गुण कहलाते है और गुण उत्पन्न की गई शोभा को बढ़ाने वाले धर्म अलंकार होते है। इस प्रकार आचार्य वामन की मान्यता है कि काव्य में

1. भीष्मचरितम्–12/22
2. काव्यालंकार–वामन 3/1/1/2

गुण ही आधारभूत शोभाकारक तत्त्व है। और अलंकार उसी शोभा को बढ़ाने वाले उपकरण (शोभादायक तत्त्व) है। गुणों के बिना शोभा की उत्पत्ति संभव नहीं है, परन्तु अलंकारों के अभाव में भी शोभा का अस्तित्व संभव है।

गुण तथा अलंकार के विषय में ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का मत वामन से भिन्न है उनके शब्दों में–

तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणा स्मृताः।

अङ्गाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्या कटकादिवत्।।[1]

जो काव्य के प्रधानभूत रस (अंगी) के आश्रित रहने वाले (माधुर्य आदि) हैं उनको गुण कहते हैं और जो काव्य के शरीर (अंग) शब्द तथा अर्थ के आश्रित रहने वाले है उनको फटकादि के समान अलंकार कहते है तात्पर्य यह है कि गुण काव्य के आत्मभूत रस के धर्म होते है, जबकि अलंकार काव्य के अंगभूत (शरीरभूत) शब्द और अर्थ के धर्म होते है।

लेकिन आचार्य मम्मट ने दोनों मतों का विवेचन करते हुए ध्वनिवादी सिद्धान्त का भी युक्तिपूर्ण समर्थन प्रस्तुत किया है उनके शब्दों में–

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।[2]

अर्थात् जिस प्रकार शौर्य औदार्य आदि धर्म आत्मा के उत्कर्ष करने वाले होते हैं और उन्हें लोक में गुण शब्द से व्यवहार किया जाता है उसी प्रकार काव्य की आत्मा रस के उत्कर्ष करने वाले धर्म (ओज, प्रसादादि) को गुण कहते हैं तथा यह गुण काव्य में अचल स्थिति में रहते है।

निष्कर्षतः ध्वनिवादियों का गुण रस के सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि गुण रस के धर्म है, उत्कर्ष है तथा रस के साथ नियतरूप से रहने वाले है। यद्यपि गुणों के व्यञ्जक के रूप में वर्णों को निश्चित किया गया है फिर भी आचार्यों ने यह स्पष्ट किया है कि निश्चित वर्णों का होना अपरिहार्य नहीं है। आकार में महत्त्व के न रहने पर भी जिस प्रकार मनुष्य में वीरता देखी जाती है, उसी प्रकार समुचित वर्णों के न रहने पर भी माधुर्यादि गुण अभिव्यक्त होते हैं, इसके साथ ही ध्वनिवादियों ने इन्हीं युक्तियों के आधार पर वामन के द्वारा प्रोक्त दश शब्द गुण और दश अर्थ गुणों का निषेध किया है और केवल माधुर्य, ओज और प्रसाद के रूप में तीन ही गुण स्वीकार

1. ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन 2/6
2. काव्याप्रकाश–मम्मट 8/66

किया है। ध्वनिवादी आचार्यों के अनुसार शृङ्गार, करुण और शान्त में माधुर्य, वीर, वीभत्स और रौद्र में ओज तथा शेष रसों में प्रसाद गुण होता है।

गुण के प्रसङ्ग में इसी सैद्धान्तिक पृष्टभूमि पर किसी भी साहित्यिक कृति में गुणों का विवेचन कैसे किया जाय यह प्रश्न उपस्थित होता है। पूर्वोक्त विवेचन की पृष्टभूमि में यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि इसके स्वरूप के आधार पर ही गुणों का निश्चय करना पड़ता है अर्थात् रस शृङ्गार है तो माधुर्य गुण अवश्य ही होगा। इसी प्रकार वीर, वीभत्स आदि रसों में ओज गुण अवश्य ही होगा। यह भी ध्यातव्य है कि कहीं भी अकेले माधुर्य या ओज गुण की स्थिति नहीं होती। प्रसाद को सर्वत्र रहने वाला गुण माना है। अतः गुणों की स्थिति सर्वदा माधुर्य+प्रसाद तथा ओज+प्रसाद होती है। जहाँ तक गुणों के लिए निश्चित व्यञ्जक वर्णों का प्रश्न है यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि महाकवि परम्परा में इन नियमों का पालन नहीं किया गया है। अतः उनका अनुसन्धान कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता है।

महाकाव्य शान्त रस प्रधान है अतः इसमें सर्वत्र माधुर्य+प्रसाद गुण की स्थिति विद्यमान है। रसाभिव्यञ्जन के प्रसंग में शृङ्गार रस के बहुत से उदाहरण दिये गये है जो कि मार्धुय गुण युक्त है।

माधुर्य गुण – आह्लदकत्वं माधुर्य शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।[1]

चित्त के द्रवीभाव का कारण और शृङ्गार में रहने वाला जो आह्लदस्वरूपत्व है वह माधुर्य नामक गुण कहलाता है। शृङ्गार आदि रस आह्लादजनक नहीं अपितु आह्लादस्वरूप होते है। शृङ्गार में जो आह्लदकत्व है वह माधुर्य गुण कहलाता है। माधुर्य गुण सामान्यतः सम्भोग शृङ्गार में रहता है परन्तु करुण, विप्रलम्भ तथा शान्त रस में वह अधिक चमत्कारजनक होता है।

सत्यवती और राजा शान्तनु के विवाह पश्चात् दोनों के संभोग शृङ्गार रस की स्पष्ट प्रतीति होती है जो माधुर्य एवं प्रसाद गुण से युक्त है।

उदाहरण–

रोमाञ्चपूर्वं रतिदीपकैश्च
दन्तक्षतैरन्यविधैरनेकैः।
अन्यानि चाङ्गानि निजप्रियायाः
विभूषयामास रसेन भूपः।।[2]

प्रस्तुत पद्य में शृङ्गार रस से परिपूर्ण संयुक्त वर्ण जैसे रोमाञ्च, दन्त, चाङ्गानि आदि वर्ग के अन्त्य वर्णो से मिलकर माधुर्य के भाव का संचार कर रहे है अतः मधुर पदों में माधुर्य युक्त गुण की अनुभूति होती है। प्रस्तुत श्लोक माधुर्य गुण का उदाहरण है।

1. काव्याप्रकाश–मम्मट–8/68
2. भीष्मचरितम्–10/38

रानी सत्यवती के दाम्पत्य जीवन के प्रसंग में शृङ्गार रस स्पष्ट रूप से द्योतित होता है जो माधुर्य व प्रसाद गुण से युक्त है यथा–

इत्थं च दाम्पत्यरसं पिबन्ती
स्नातैकदा शान्तनुना मिलन्ती।
वसन्तरात्रौ रतिमाचरन्ती
गर्भं दधौ सत्यवती द्वितीयम्।।[1]

उपर्युक्त श्लोक शृङ्गार रस से युक्त है इसमें संयुक्त वर्ण जैसे दाम्पत्य, मिलन्ती, वसन्त, चरन्ती आदि वर्ग के अन्त्य वर्णों से मिलकर श्रुति माधुर्य का संचार कर रहे है। अतः यह पदावली माधुर्य गुण का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इसी प्रकार षष्ठ सर्ग में राजकुमार देवव्रत के आगमन की सूचना पाकर हस्तिनापुर की स्त्रियाँ उनके दर्शन को उत्सुक हो जाती है, वहाँ उनकी उत्सुकता वर्णन में कवि ने माधुर्य गुण की सृष्टि की है–

विहाय लाक्षारसरञ्जनां तदा
गवाक्षदेशाय च धावमानया।
कयाचिदासीद् रचिताच्छकुट्टिमे
सरोजपङ्क्ती रमणीयदर्शना।।[2]

उपर्युक्त पद्य में 'रञ्जना' वर्ग के अन्त्य वर्ण से मिलकर बना है और 'रमणीय– 'र' और ण अक्षरों के बीच में ह्रस्व अक्षर का व्यवधान होने के कारण माधुर्य गुण परिलक्षित होता है।

सोहलवें सर्ग में भीष्म पितामह के शरीर पर प्रहार करने के पश्चाताप से युधिष्ठिर द्वारा ग्लानि का अनुभव करते हुए राजधर्म से विमुख होना ही शान्त रस का परिचायक है जो माधुर्य गुण से युक्त है–

पौत्रास्तवैतेऽपि युधिष्ठिरादयः
प्रकामयन्ते भवतः शुभाशिषः।
भवच्छरीरे विषयाप्तिवांछया
प्रहृत्य चैतेऽनुभवन्ति वेदनाम्।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–11/30
2. तत्रैव–6/32
3. तत्रैव–16/40

उक्त पद्य में संयुक्त वर्ण जैसे प्रकामयन्ते, वाञ्छया, भवन्ति आदि वर्ग के अन्त्य वर्णों से मिलकर माधुर्य का संचार कर रहे हैं।

ओजगुण – दीप्यात्मविस्तृते र्हेतुरोजो वीर रस स्थिति।[1]

चित्त के विस्तार की हेतुभूत दीप्ति ओज कहलाती है। यह ओज सामान्यतः वीर रस में रहता है परन्तु वीभत्स और रौद्र रसों में क्रमशः इसका आधिक्य रहता है।

भीष्म पितामह द्वारा भीष्मप्रतिज्ञा करने में भी वीर रस की स्पष्ट अनुभूति होती है यथा–

समक्षमेषामहमद्य भीषणाम्
इमां प्रतिज्ञां विदधे सचेतनः।
सदोर्ध्वरेता इह जीवने वसन्
व्रतं चरिष्यामि विखानसो भवन्।।[2]

महाकवि ने महाकाव्य में अनेक वीर रसयुक्त पद्यों की रचना की है। महाकाव्य के तेहरवें, चौहदवें व पन्द्रहवें सर्गों के अनेक स्थलों पर वीररस का प्रयोग कवि ने किया है जो कि ओज एवं प्रसाद गुण से युक्त है–

दुःशासनस्य रुधिरं
पातुं, भङक्तुं दुर्योधनजङ्घे।
भीमश्चक्रे भीमां
कोपारुणनयनः प्रतिज्ञाम्।।[3]

प्रस्तुत पद्य में भीमसेन द्वारा दुःशासन का खून पीने व दुर्योधन की जाँघे तोड़ने की प्रतिज्ञा करना ही ओज गुण की स्पष्टता दिखायी देती है।

महाभारतयुद्ध में भीष्म पितामह ने पाण्डवसेना को बुरी तरह पीड़ित किया। यथा–

विव्याध भीष्मोऽपि शिखण्डिवर्जं
चमूमशेषामपि पाण्डवानाम्।
शिखण्डिपातारमथार्जुनं च
प्रपीडयामास शरैरनेकैः।।[4]

---

1. काव्यप्रकाश–मम्मट–8/66
2. भीष्मचरितम्–9/62
3. तत्रैव–13/58
4. तत्रैव–14/48

उक्त श्लोक में भीष्म पितामह द्वारा पाण्डवसेना को परास्त करने से वीर रस की स्पष्ट पुष्टि होती है। इसमें संयुक्त रेफ, ड वर्ण तथा शकार व षकार आदि से सम्बन्धित विकट पद रचना ओज गुण के अभिव्यञ्जक है।

इसी प्रकार भीष्म के कौरव सेनापतित्व में युद्ध वर्णन प्रसंग में ओज–गुण का सन्निवेश है–

पार्थोऽपि तं तीक्ष्णशरैस्तदानीं
विव्याध चिच्छेद धनुश्च तस्य।
अवेक्ष्य भीष्मः कुपितं च पार्थं
चक्रे सहर्ष समितिं मुमूर्षुः।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में भीष्म पितामह द्वारा प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करने में वीर रस द्योतित होता है। इसमें पार्थ में प्रथम वर्ग से द्वितीय वर्ग के वर्ण का योग और षकार आदि से विकट पद रचना ओज गुण के अभिव्यंजक वर्ण है।

काशिराज की पुत्रियों के स्वयंवर के प्रसंग में भीष्म के शौर्य वर्णन में वीर रस स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है जो ओजगुण का परिचायक है–

परन्तु दिव्यास्त्रबलेन सत्वरं
रणे स सर्वानजयन्महीभृतः।
दिनैश्च कैश्चित्कुशली सकन्यको
विवेश मातुर्भवनं परन्तपः।।[2]

प्रसाद गुण

शुष्केन्धनाग्वित् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितः।।[3]

सुखे ईधन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ (धुले हुए वस्त्र में) जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है वह सब रसों में रहने वाला प्रसाद गुण कहलाता है।

इस गुण की व्याप्ति सभी रसों में मानी जाती है अतः सभी प्रकार की स्वच्छ और स्पष्ट रचनाओं को प्रसाद गुण युक्त कहा जाता है।

---

1. भीष्मचरितम्–14/49
2. तत्रैव–12/45
3. काव्यप्रकाश–मम्मट–8/800

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में सर्वत्र प्रसादगुण समन्वित पद्यों की छटा दिखलाई पड़ती है। महाकवि ने राजकुमार के अध्ययन की अद्भुत प्रवीणता का अत्यन्त सहजता से मनोहारी वर्णन किया है।

उदाहरण–

विलोक्य शिष्यस्य तथा प्रवीणतां
मनो गुरोश्चापि जहर्ष भूयसा।
प्रफुल्ल मुद्यान मवेक्ष्य सर्वतो
मनो मुदं याति सदैव मालिनः।।
गुरोर्गुणान्वीक्ष्य वंशवदस्तदा
विलोकय शिष्यस्य गुणान्गुरुस्तथा
परस्परं तौ प्रशशंसतुर्हृदा
गुणी विजानाति गुणान्न निर्गुणः।।[1]

राजकुमार की अद्भुत प्रवीणता को देखकर गुरु परशुराम का मन प्रसन्न रहता था जिस तरह बगीचे को फूलों से भरा देखकर माली का रहता है। प्रस्तुत श्लोकों में प्रसाद गुण का सौन्दर्य दर्शनीय है।

अन्यत्र तृतीय सर्ग में शिक्षक गौरव वर्णन में प्रसाद गुण का सहज सन्निवेश उपलब्ध होता है। यथा–

सूर्यो बाह्यं तमो हन्ति
हृदयस्थं च शिक्षकः।
सूर्य–शिक्षकयोर्लोके
को महानत्र संशयः।।[2]

सम्पूर्ण तृतीय सर्ग में प्रसाद गुण की झलक स्पष्टतया परिलक्षित होती है जिसका एक अन्य उदाहरण द्रष्ट्रव्य है–

दीने जने दया कार्या
नम्रता दानकर्मणि।
भद्रता महिलावर्गे
विधातव्या विशेषतः।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–5 / 25–26
2. तत्रैव–3 / 17
3. तत्रैव–3 / 38

कवि ने महेन्द्र पर्वत के वर्णन प्रसंग में सरल शब्दों से प्रसाद गुण की अति सुन्दर योजना की है–

शाखाविहीनो नहि कोऽपि वृक्षो

न कापि शाखा कुसुमैर्विहीना।

सुमं न किञ्चित्फलहीनमासीत्

फलं न किञ्चिद् रसहीनमासीत्।।[1]

त्रयोदश सर्ग में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के प्रसंग में प्रसाद गुण युक्त कोमलकान्त पदावली का प्रयोग दृष्टिगत होता है–

पाण्डवेभ्यो निर्जनं

खाण्डवप्रस्थं काननं प्रादात्।

चक्रे च यौधिष्ठिरं

तद्–भागे राज्याभिषेकम्।।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों में सर्वत्र अर्थ की निर्बाध प्रतीति प्रसादगुण युक्त भाव से संचारित हो रही है। कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य में प्रसाद गुण की सुन्दर योजना की है। जिससे इस कृति की चारुता में वृद्धि हो गयी है।

कवि ने कथा को रसपेशल बनाने हेतु अवसरानुकूल प्रसाद गुण का प्रयोग किया है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि महाकाव्य में कवि ने विविध रस के प्रसंगों में विविध गुणों की संयोजना की है।

---

1. भीष्मचरितम्–4 / 38
2. तत्रैव–13 / 43

(V) छन्द योजना

संस्कृत साहित्य में वैदिककाल से ही छन्दों का प्रयोग होता आया है। वैदिक छन्दों के प्रयोग के साथ लौकिक छन्दों का प्रयोग वाल्मीकि से उद्भूत हुआ जो बाद में चलकर विस्तार को प्राप्त हुआ। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से महाकाव्य की रचना छन्दोबद्ध की जाती है। महाकाव्य के लक्षणानुसार महाकाव्य का छन्दोबद्ध होना अनिवार्य है। छन्दोबद्धता के विषय में भी काव्यशास्त्रियों ने नियम बनाये है कि महाकाव्य में प्रयुक्त छन्द सर्गान्त में परिवर्तित होना चाहिए। कथावस्तु के सूच्यांश की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक होता है।

महाकवि ने भी अपने भावों की अभिव्यञ्जना के लिए महाकाव्य में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। महाकवि हरिनारायण दीखित जी ने अपने महाकाव्य में मात्रिक, समवृत, अर्धसमवृत एवं विषमवृत छन्दों का प्रयोग किया है। सर्गानुसार जिनका विवरण निम्नवत् है–

प्रथम सर्ग "जननीवियोग" के आरम्भ में महाकवि ने वंशस्थ छन्द का प्रयोग करते हुए सर्गान्त के दो श्लोकों में वियोगिनी छन्द का प्रयोग किया है।

"विद्याप्राप्ति" नामक **द्वितीय सर्ग** के पद्यों को द्रुतविलम्बित छन्द से निबद्ध करते हुए अन्तिम दो पद्यों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग महाकवि ने किया है।

"दीक्षान्त समारोह" नामक **तृतीय स**र्ग के प्रारम्भ में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग कर महाकवि ने सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन करते हुए अन्तिम दो श्लोकों में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है।

चतुर्थ सर्ग "विशिष्टगुरुप्राप्ति" के पूर्व में महाकवि ने उपजाति छन्द की अभिव्यक्ति करवाकर सर्गान्त के दो पद्यों में शार्दूलविक्रिडित छन्द का प्रणयन किया है।

महाकवि ने "दिव्यास्त्रप्राप्ति" नामक **पञ्चम सर्ग** के पूर्व पद्यों में वंशस्थ नामक छन्द की गेयता का आस्वाद करवाकर सर्गान्त के एक श्लोक में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है।

षष्ठ सर्ग– "धनुर्विद्याप्राप्ति" के आरम्भ में वंशस्थ छन्द की छठा दृष्टिगत होती है और अन्तिम एक पद्य में छन्द परिवर्तन करते हुए मालिनी छन्द का प्रयोग महाकवि ने किया है।

"वनविहार" नामक **सप्तम सर्ग** पूर्व में द्रुतविलम्बित नामक छन्द की छटा दर्शनीय है और अन्तिम एक श्लोक में मालिनी छन्द की।

महाकवि ने **अष्टम सर्ग** "वियोगवर्णन" नामक में 1 से 41 श्लोक तक मन्दाक्रान्ता नामक छन्द का प्रयोग किया है और सर्गान्त के एक पद्य में शार्दुलविक्रीडित नामक छन्द का।

महाकाव्य के **नवम सर्ग** 'भीष्मप्रतिज्ञावर्णन' नामक में वंशस्थ छन्द का प्रणयन कर अन्तिम एक श्लोक में मालिनी छन्द का महाकवि ने प्रयोग किया है।

दशम सर्ग "विमातृलाभवर्णन" नामक सर्ग के प्रारम्भ में उपजाति छन्द का महाकवि ने प्रयोग करते हुए अन्त में मालिनी छन्द से युक्त एक पद्य दृष्टिगत किया है।

'अनुजद्वयलाभवर्णन' नामक **एकादश सर्ग** के पूर्व में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है और अन्तिम एक पद्य में मालिनी छन्द का।

महाकवि ने **द्वादश सर्ग** "विचित्रवीर्यविवाहवर्णन" नामक में वंशस्थ छन्द का प्रयोग कर अन्त में छन्द परिवर्तन करते हुए एक श्लोक में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है।

"कौरवपाण्डवकलहकारणवर्णन" नामक **त्रयोदश सर्ग** के आरम्भ में आर्या छन्द की और सर्गान्त के एक पद्य में शार्दुलविक्रिडित नामक छन्द की छटा दर्शनीय है।

चतुर्दश सर्ग "भीष्मशरशय्यावर्णन" नामक में महाकवि द्वारा पूर्व में उपजाति नामक छन्द को निरुपित करते हुए सर्गान्त में छन्द परिवर्तन कर एक श्लोक को मालिनी छन्द से निबद्ध किया है।

महाकवि ने **पंचदश सर्ग** "महाभारतयुद्धवर्णन" नामक के आरम्भ में वंशस्थ उसके बाद मिश्रित छन्द वंशस्थ+इन्द्रवंशा का प्रयोग कर सर्गान्त में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है।

महाकाव्य के "खेदनिरासवर्णन" नामक **षोडश सर्ग** के प्रारम्भ में मिश्रित छन्द इन्द्रवंशा+वंशस्थ का प्रणयन कर सर्गान्त के एक पद्य को मालिनी छन्द से निबद्ध किया है।

महाकवि ने अपने महाकाव्य के "राजधर्मवर्णन" नामक **सप्तदश सर्ग** में वंशस्थ नामक छन्द का प्रयोग कर अन्तिम एक श्लोक को वसन्ततिलका नामक छन्द से प्रयुक्त किया है।

अष्टादश नामक सर्ग "प्रजाधर्मवर्णन" में महाकवि ने केवल सर्गान्त के एक पद्य को छोड़कर सम्पूर्ण सर्ग में वंशस्थ नामक छन्द का प्रयोग किया है और सर्गान्त में मालिनी छन्द का।

"मोक्षधर्मवर्णन" नामक **एकोनविंश सर्ग** के प्रारम्भ में वंशस्थ नामक छन्द से पद्यों को उदृत करते हुए अन्तिम एक–एक पद्य को मालिनी नामक छन्द से युक्त दृष्टिगत किया है।

विशं सर्ग "महाप्रयाणवर्णन" नामक में महाकवि ने पूर्व श्लोकों को वंशस्थ नामक छन्द से निबद्ध करते हुए अन्त के दो पद्यों को मन्दाक्रान्ता नामक छन्द से निबद्ध किया है।

इस प्रकार महाकाव्य का गहनाध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि महाकवि ने अपने महाकाव्य के सम्पूर्ण सर्गों में छन्द का परिवर्तन किया है जो महाकाव्य लक्षणानुसार सटीक है। महाकवि ने सम्पूर्ण महाकाव्य में एकादश छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें से सर्वाधिक मालिनी नामक छन्द का प्रयोग हुआ है। महाकाव्य में प्रयुक्त छन्द निम्नवत् है–

1. आर्या
2. वंशस्थ
3. द्रुतविलम्बित
4. वसन्ततिलका
5. मालिनी
6. उपजाति
7. शार्दुलविक्रीडित
8. मन्दाक्रान्ता
9. इन्द्रवंशा
10. वियोगिनी
11. अनुष्टुप्

1. मात्रिक छन्द

आर्या – महाकवि ने इस छन्द का प्रयोग केवल तेहरवें सर्ग में किया है यह मात्रिक छन्द है।

लक्षण – यस्याः पादे प्रथमे द्वितीय द्वादशमात्रस्तथातृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थ के पञ्चदश साऽऽर्या।।

गण – प्रथम व तृतीय चरण में 12–12 मात्राएँ
द्वितीय चरण में 18 मात्राएँ
चतुर्थ चरण में 15 मात्राएँ

उदाहरण –

ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ
अस्मिन् सफलो भूत्वा।–12 मात्राएँ
। ।ऽ ।। ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
स भवेन्निजराज्यलाभाधिकारी। – 18 मात्राएँ

ऽ । ऽ । ।ऽऽ
अन्यथा स पुनरेतं – 12 मात्राएँ
। ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ
पणं स्वराज्यार्थ पूरयेत्।।[1] – 15 मात्राएँ

अन्य उदाहरण–

रामकृष्णोपस्थितौ
द्रौपदीपाण्डवविवाहो बभूव।
पाण्डुसुताभ्युदयोऽयं
व्यथयामास ध्रतराष्ट्रसुतान्।।

पाण्डवानामागमं
पांचाल्या सह परिणयं च तेषाम्।
न शशाक दुर्योधनो
हा, द्रष्टुमीर्ष्यानलाकुलः।।[2]

2. समवृत्त छन्द–

जिस पद्य के चारों चरण एक ही प्रकार के हो, उसे छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ लोग समवृत्त छन्द कहते है।

वंशस्थ – वंशस्थ छन्द का प्रयोग महाकवि ने अपने महाकाव्य के प्रथम, पञ्चम, षष्ठ, नवम, द्वादश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश, एकोनविंश तथा विंश सर्ग में किया है।

लक्षण – जतौ तु वंशस्थमुदिरित जरौ।

गण – जगण, तगण, जगण, रगण

उदाहरण– । ऽ । ऽ ऽ।। ऽ। ऽ । ऽ

नमामि देवीवरदायिनी शुभां
परायणा भक्तजनार्तिनाशने।
शरीररक्षां विदधाति मामकीं
दयावती स्नेहवती च सा सदा।।[3]

1. भीष्मचरितम्–13/66
2. तत्रैव–13/35, 41
3. तत्रैव–1/1

अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं–

ततो यमास्त्रं जगदन्तकारकं
कदापि मोघं नहि यस्य चातनम्।
प्रशिक्षयामास स धन्विनां वरो
विधानपूर्वं गुरुधर्मदीक्षितः।।[1]

नरेशलाभोऽत्र महामनीषिभि
धर्मः प्रजानां प्रथमस्तु मन्यते।
यदाश्रितास्ताः सुखशान्तिपूर्वकं
वसन्ति चार्जन्ति पिबन्त्यदन्ति च।।[2]

द्रुतविलम्बित – महाकवि ने अपने महाकाव्य के दूसरे और सातवें सर्ग में इस छन्द का प्रयोग किया है।

लक्षण – द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

गण – नगण, भगण, भगण, रगण

उदाहरण– । । । ऽ। ।ऽ।। ऽ।ऽ

शिशु शरीर परीक्षण हेतवे
प्रतिदिनं शिशुरोगविदागमत्।
निजसमक्षमसौ तमदर्शयत्
तनयवार्तमवेच्चद तदाननात्।।[3]

इसी प्रकार–

पतिमनोरमणी रमणीमणी
रतिसमा पतिभक्तिपरायणा।
प्रियतमा यमराजवियोजिता
नृपतिपार्श्वगतेव तदाभवत्।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–5/19
2. तत्रैव–18/10
3. तत्रैव–2/11
4. तत्रैव–7/24

तदनु सत्यवती कृतसहसा
बहुविधं पितरं समबोधयत्।
परमसौ विजहौ न निजं पणं
न हठिने हितवागपि रोचते।।[1]

वसन्ततिलका – इस छन्द का प्रयोग महाकवि ने दूसरे एवं सत्रहवें सर्ग में किया है।

लक्षण – उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

गण – तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरु

उदाहरण – ऽ ऽ। ऽ । । । ऽ। । ऽ । ऽ।
इत्थं निशम्य वचनानि पितामहस्य
जातं युधिष्ठिरमनो धृतशान्तिभावम्।
अन्येऽपि सभ्यपुरुषाः सुखमन्वभूवन्
सर्वे च तेऽन्यविषयेष्वपि बोद्धमैच्छन्।।[2]

इसी प्रकार –

श्रुत्वा शुभाशयमिमं सुखदं गुरुणमा्
इच्छां निजां च सफलामनुभूय भूपः।
हर्षाम्बुधावनुपमे ह्यवगाहमानः
सर्वं प्रबन्धमकरोत्स्वयमुत्सवस्य।।[3]

सर्वे विचार्य गुरुवो नृपतेः कुमारं
विद्यावि भूषितमशेषविशेषयुक्तम्।
दीक्षासमाप्तिसमये प्रविधीयमानं
भव्यं महोत्सवविधिं निरधारयंस्ते।।[4]

मालिनी – महाकवि ने इस छन्द का प्रयोग तीसरे, पाँचवे, छठे, सातवें, नवें, दशवें, बाहरवे, चौहदवें, पन्द्रहवें, सोहलवें, अठाहरवें तथा उन्नीसवें सर्ग में किया है।

---

1. भीष्मचरितम्–7 / 59
2. तत्रैव–17 / 52
3. तत्रैव–2 / 51
4. तत्रैव–2 / 50

लक्षण – ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकेः।

गण – नगण, नगण, मगण, यगण, यगण

उदाहरण – ।।।।।। ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

तदनुतदनुमत्या पाण्डवाः कृष्णयुक्ताः

सकलजनसमूहाश्चापि धैर्य दधानाः।

अहह जगति नित्यं किञ्चिदप्यत्र नास्ती–

ति मनसि निदधानाः प्रस्थितास्तं प्रणम्य।।[1]

यथा–

तदनु परिचितैका राष्ट्रभक्तिं दधाना

समुदगमदरूपा वाक्यमाला मनोज्ञा।

सपदि तदवसाने प्रीतिभोगे प्रयातुं

सचिवगणगणेशः प्रार्थयामास सर्वान्।।[2]

इतिरतिसुखलीनौ त्यक्तकार्यान्तरौ तौ

नवनवरतरीत्या काममास्वादयन्तौ।

अभिमतरतिपात्रप्राप्तिहर्षेण युक्तौ

निजनिजरतितृष्णाशान्तये प्रायतेताम्।।[3]

उपजाति – महाकवि ने इस छन्द का प्रयोग महाकाव्य के चौथे एवं चौहदवें सर्ग में किया है।

लक्षण – अनन्तरोदितरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयास्ताः।

गण – इन्द्रवज्रा–तगण, तगण, जगण और दो गुरु

उपेन्द्रवज्रा– जगण, तगण, जगण और दो गुरु

उदाहरण – ऽ ऽ । ऽ ऽ ।। ऽ । ऽ ऽ

सौभाग्यनौकामथ पाण्डवानां – इन्द्रवज्रा

ऽ ऽ। ऽ ऽ ।।ऽ । ऽ ऽ

दोलायमानां रिपुसैन्यसिन्धौ। – इन्द्रवज्रा

---

1. भीष्मचरितम्–19/53
2. तत्रैव–3/51
3. तत्रैव–10/47

ऽ ऽ । ऽ ऽ।। ऽ। ऽ ऽ

कृष्णो भवन्सारथिरर्जुनस्य – इन्द्रवज्रा

।ऽ। ऽ ऽ ।।ऽ। ऽ ऽ

नयेन चोद्धर्तुमियेष धीरः।।[1] – उपेन्द्रवज्रा

इसी प्रकार –

अम्बाभिधाना खलु सैव कन्या –इन्द्रवज्रा

मां मन्यमाना च कृतागसं स्वम्। – इन्द्रवज्रा

शिखण्डिरूपे प्रतिशोधकामा – उपेन्द्रवज्रा

जातास्ति, जानासि रहस्यमेतद्।।[2] – इन्द्रवज्रा

स्त्रोतोवहैका तदुपत्यकायाम् – इन्द्रवज्रा

आसीद् वहन्ती सुजला सुरम्या। – इन्द्रवज्रा

विहंगमानां कलकूजनैः सा – उपेन्द्रवज्रा

प्रत्युद्व्रजन्तीव बभौ कुमारम्।।[3]– इन्द्रवज्रा

शार्दुलविक्रीडितम् – प्रस्तुत छन्द का महाकवि ने अपने महाकाव्य के चौथे, आठवें और तेहरवें सर्ग में प्रयोग किया है।

लक्षण – सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

गण – मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण व एक गुरु

उदाहरण – ऽ ऽ ऽ । । ऽ। ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽऽ ।ऽ

जायाप्राप्तिसुखेन यः सुखयितुं तातं स्वकीयं सुतः

वाञ्छस्तुष्टियुतश्चचालमुदितः प्रीत्यैपितुर्भक्तिमान्।

नाजानान्निजभाग्यचक्रचलनं तस्मिन्क्षणे हन्त सः

गूढ मर्मणि हन्ति किन्तु न मनाक् शब्दं विधते विधिः।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–14/4
2. तत्रैव–14/16
3. तत्रैव–4/31
4. तत्रैव–8/92

यथा –

श्रुत्वा भावभ्रतं कुमार–वचनं मोमुद्यमानो मुनिः
पाणिं तस्य निधाय मूर्धनि निजं प्रेम्णा जगादेति तम्।
चिन्तां नैव विधेहि वत्स! लषितं त्वां पाठयिष्याम्यहम्;
जायन्ते मनुजाः सदैव सफलाः कार्येषु निष्ठालवः।।[1]

तथा – **धर्माधर्मयुताः शुभाशुभरताः सत्कर्मदुष्कर्मपाः**
सत्यासत्यपथाश्रिता बलयुता युद्धाय जातस्पृहाः।
पुण्यापुण्यविपश्चितोऽत्र च यथासंख्यं समासोदिताः
वीराः पाण्डवकौरवा बत तदा संग्रामभूमिं गताः।।[2]

मन्दाक्रान्ता – महाकवि ने इस छन्द का प्रयोग अपने महाकाव्य के आठवें एवं विशवें सर्ग में किया है।

लक्षण – मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।

गण – मगण, भगण, नगण, तगण, तगण व दो गुरु

उदाहरण – ऽ ऽ ऽ ऽ ।।। ।। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

श्रद्धापूर्वं तदनु निखिला बान्धवाः शान्तचित्ताः
स्मारं स्मारं च मनसि गुणास्तस्य भक्तायमानाः।
सर्वे वंश्या अथ च सुहृदो धर्मराजेन युक्ताः
तत्संस्कार विभव सहितं शास्त्रशैल्यामकार्षुः।।[3]

यथा–

मन्दं मन्दं रसति जलदे विद्युदाश्लिष्टदेहे
जायाशून्यां रजनिसमये स्वीयशय्यां विलोक्य।
राजा खेदं वहति विधुरो मन्मथायत्तचेताः
वारं वारं व्रजति च तदा तन्मनो दाशकन्याम्।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–4/51
2. तत्रैव–13/84
3. तत्रैव–20/54
4. तत्रैव–8/3

तथा – **त्रेताकाले रघुकुलमणी रामचन्द्रो महात्मा**
तातप्रीत्यै विपिनमगमद् यौवराज्यं विहाय।
तस्यादर्श जगति सुजनाश्चाद्रियन्तेऽधुनपि
सिद्ध्यत्यस्माद् युवनृपपदं त्याज्यमेतन्मयापि।।[1]

इन्द्रवंशा – इस छन्द का प्रयोग महाकवि ने अपने महाकाव्य के पन्द्रहवें व सोहलवें सर्ग में किया है।

लक्षण – स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः।

गण – तगण, तगण, जगण, रगण

उदाहरण – **। ऽ ।ऽ ऽ । । ऽ । ऽ।ऽ**
दिनान्ययुः सप्तदशाद्य भूपते
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ ।ऽ। ऽ
न पाण्डवाः किन्तु वंश तवागताः। – वंशस्थ
ऽऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ। ऽ
पूर्णं प्रयत्याप्यखिला महारथाः
ऽऽ । ऽ ऽ ।। ऽ । ऽ । ऽ
हेतुं न जाता प्रभवः किरीटिनम्।।[2] **– इन्द्रवंशा**

इसी प्रकार –

मत्या च धृत्या च नयेन सेवितो
धर्मो यथा रक्षति रक्षकान्निजान्। – वंशस्थ
तथा कुमत्या कुनयेन चार्जितो
निहन्त्यधर्मस्समये स्वसेवकान्।।[3] **– इन्द्रवंशा**

तथा – **लब्धे च राज्ये स्मृतभीष्मविक्रमाः –इन्द्रवंशा**
अनुस्मरन्तो महतीं च तत्कृपाम्। – वंशस्थ
परं भवन्तोऽपि च दर्शनोत्सुकाः – वंशस्थ
गन्तुं न शेकुर्बत तत्कृतागसः।।[4] **– इन्द्रवंशा**

---

1. भीष्मचरितम्–8/35
2. तत्रैव–15/19
3. तत्रैव–15/24
4. तत्रैव–16/2

जब वंशस्थ और इन्द्रवंशा इन दोनों छन्दों के कतिपय पादों का मिश्रण एक छन्द में हो जाता है तो उसे भी उपजाति छन्द कहते है।

3. अर्धसमवृत – जिस वृत्त का तीसरा चरण पहले के समान तथा दूसरा चरण चौथे के तुल्य हो उसे अर्धसमवृत कहते है।

वियोगिनी – इस छन्द का प्रयोग महाकवि ने पहले सर्ग में किया है।

लक्षण – **विषमें ससजा गुरु समे**

सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।।

गण – प्रथम, तृतीय चरण – सगण, सगण, जगण व एक गुरु।

द्वितीय, चतुर्थ चरण – सगण, भगण, रगण, एक लघु, एक गुरु

उदाहरण – ।। S ।।S । S ।S

अवनीपतिना प्रियाकृती – 10 अक्षर (वर्ण)

।। S S ।। S । S । S

रमणीया दहृशे शिशोस्तनौ। – 11 अक्षर (वर्ण)

पुरुषेण जले निमज्जता – 10 अक्षर (वर्ण)

तरणाशा विहिता तृणेन च।।[1] – 11 अक्षर (वर्ण)

अन्य उदाहरण

अनुभूय दिवंगता प्रियां – 10 वर्ण

करुणाब्धावपतन्नृपोऽवशः। – 11 वर्ण

भवने लहरी विपत्तिजा – 10 वर्ण

परितो व्यापदरुन्तुदा तदा।।[2] – 11 वर्ण

4. विषमवृत्त छन्द – (वक्त्र) –

विषमवृत्त के चारों चरण भिन्न–भिन्न अक्षरों के होते हैं–चारों अनमेल होते हैं।

---

1. भीष्मचरितम्–1/51
2. तत्रैव–1/50

अनुष्टुप् – इस छन्द का प्रयोग महाकवि ने तीसरे सर्ग में किया है।

लक्षण – श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

गण – चारों चरणों का पाँचवाँ अक्षर लघु

दूसरे एवं चौथे चरण का सातवाँ अक्षर लघु

चारों चरणों का छठा अक्षर गुरु

उदाहरण – । ऽ

संगीत लहरी रम्या

। ऽ।

मृदुला कर्णकोमला

। ऽ

रमयन्ती मनांस्यासीत्

। ऽ ।

सभ्यानां शीलशालिनाम्।।[1]

इसी प्रकार–

गुरुतत्वं सदा पूज्यं

वर्त्तते धरणीतले।

यदि न स्यादिदं तत्त्वं

सत्पथो दुर्लभो भवेत्।। [2]

तथा –

अधीताध्ययनं कार्यं

सावधानतया सदा।

शस्त्रं शास्त्रमनभ्यासात्

समय नोपतिष्ठति।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–3/5
2. तत्रैव–3/16
3. तत्रैव–3/33

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पूर्ववर्ती कवियों के सदृश दीक्षित जी ने प्रस्तुत महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की रचना एक छन्द मे न करके सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी किया है। कवि ने अपनी कृति में विभिन्न भावों तथा वर्णनों के अनुरूप छन्द के कमनीय कलेवर को अपनाया है महाकवि ने काव्यशास्त्रीय नियमानुसार मालिनी छन्द का प्रयोग बारह सर्गों के अन्त में किया है। इन छन्दों के प्रयोग से कवि का छन्दशास्त्र के अनुशीलन का परिचय मिलता है। महाकवि ने अपनी निपुण कुशलता से 'भीष्मचरितम्' में छन्द योजना की है। उन्होंने सामान्यतः छन्दों के विनियोग के सम्बन्ध में छन्दशास्त्र द्वारा प्रतिपादित नियमों का पालन किया है। इनकी छन्दयोजना महाकाव्य की परम्परा के अनुसार रसानुकूल तथा विषयानुरूप है। इस प्रकार प्रकृत महाकाव्य में सभी छन्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल होने के कारण भावाभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुआ है।

♦ ♦ ♦ ♦

अध्याय पंचम

महाकवि की रचनाधर्मी प्रतिभा

(i) भाषा–शैली

(ii) कविकृत वर्णन कौशल की वर्तमान में प्रासंगिकता

(iii) पूर्व कवियों का प्रभाव और उत्तरकाल को
कवि की देन

(i) भाषा शैली

भाषा ही भावों को अभिव्यक्त करने का सहज सुन्दर साधन हैं। भावों की अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ के माध्यम से होती हैं। कवि अपनी रचना के निमित्त उत्थित होने वाले भावों को सहृदयगम्य बनाने के लिए शब्दों व भावों का आश्रय लेता हैं जिससे उसके काव्य को काव्य रसिक (सहृदय) अधीतकर आनन्द की प्राप्ति कर सकें। भाषा शैली की संरचना जितनी लालित्यपूर्ण होगी सहृदय (पाठकगण) को वह रचना उतनी ही आकृष्ट कर परमतोष देने वाली होगी।

भाषा कवि की प्रकृति के अनुसार निःसृत होती हैं। कवि सुकुमार प्रकृति का हैं तो उसकी भाषा शैली कोमल पदावली से युक्त माधुर्य गुणोपेत होगी। कवि परुष हृदय हो तो उसकी भाषा शैली कठोर ओज गुण से युक्त होगी। कवि यदि तार्किक प्रकृति का हैं तो उसकी भाषा शैली भी तर्कपूर्ण होगी। कवि किसी दर्शन विशेष से अभिप्रेरित या किसी दर्शन का अनुगामी हैं तो उसकी भाषा शैली उसी दर्शन से सम्पृक्त होगी। कवि की प्रकृति नीरस हैं तो उसकी पदावली भी नीरसता से पूर्ण होगी। ऐसे कवि का काव्य आनन्द की प्राप्ति के स्थान पर बोझिल कर देने वाला होगा।

भाषा काव्य का बाह्य शरीर हैं। शरीर की संरचना का सौन्दर्य कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द व अर्थ के परिपाक पर आश्रित होता हैं। राजशेखर ने काव्य मीमांसा के चतुर्थ अध्याय में कारयित्री प्रतिभा से सम्पन्न तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख किया हैं–1. सारस्वत 2. आभ्यासिक 3. औपदेशिक।[1] पंचम अध्याय में कवियों के भेद का निरूपण करते हुए काव्य कवि के आठ प्रकार के बताये होते हैं– 1. रचनाकवि 2. शब्द कवि 3. अर्थ कवि 4. अलंकार कवि 5. उक्ति कवि 6. रस कवि 7. मार्ग कवि 8. शास्त्रार्थकवि।[2] कवि की प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास, निपुणता पर ही उसका रचना कौशल निर्भर होता हैं।

महाकवि ने अपने महाकाव्य में अपने भावों की अभिव्यञ्जना के द्वारा अठारह पर्वों में निबद्ध महाभारत की कथा को सरल सहज भाषा शैली के माध्यम से 20 सर्गों में निबद्ध किया हैं।

1. काव्यमीमांसा–राजशेखर–चतुर्थ अध्याय–पदवाक्य विवेक– पृ.सं.–29
2. काव्यमीमांसा– राजशेखर, पंचम अध्याय–व्युत्पति काव्यपाकश्च, पृ.सं.–41

भावों के अनुसार सर्वत्र भाषा का गुम्फन स्पष्ट प्रतीत होता हैं। शान्तनु के सुन्दर सुशासन[1] का चित्र अपनी भावप्रवीणता से समुपस्थापित किया हैं–

अलब्ध सर्वत्र स मानमुत्तमं
बभूव सम्राडखिले च भारते।
प्रजा अवात्सुर्बहुवैभवान्विता
वशाश्च भूपा गतशत्रुभीतयः।।[2]

इसी सर्ग में महाकवि ने शान्तनु के राज्य वर्णन के प्रसंग में अत्यधिक सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग किया हैं–

सुरम्यकाशी–कशमीर–चेदिषु
तथाङ्गवङ्गादिषु चान्ध्रभूमिषु।
विदर्भ–कर्णाटक–केरलादिषु
बभौ शुभा शान्तनुराजपद्धतिः।।[3]

महाकवि ने द्वितीय सर्ग में अपनी कल्पनाशक्ति से शान्तनु द्वारा पुत्र के पालन पोषण का सजीव दृश्य उपस्थित किया है। देवव्रत की बालचपलताओं के निरुपण में कवि की कल्पना व कोमल भावनाओं का दर्शन होता हैं। राजकुमार देवव्रत उज्ज्वल मणियों से निर्मित फर्शरूपी दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने की कोशिश करता हैं, किन्तु वह बारम्बर असफल हो जाता हैं, यह दृश्य देखने वालों के हृदय में आनन्द का संचार करता हैं–

मणिविनिर्मितकुट्टिमदर्पणे
निपतितं प्रतिबिम्बमसौ निजम्।
परिजिघृक्षुरनीश्वरतां व्रजन्
परममोदकरोऽभवदर्भकः।।[4]

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने बालक्रीडा का सुन्दर चित्रण किया हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य में बाल सुलभ वर्णन में प्रायः सर्वत्र ही सुकुमार पदावली के दर्शन होते हैं। उदाहरण द्रष्ट्रव्य हैं–

---

1. भीष्मचरितम्–1/20–26
2. तत्रैव–1/33
3. तत्रैव–1/31
4. तत्रैव–2/17

नृपकुमारमनोहरचेष्टितैः
सकलराजगृहं च शनैः शनैः।
पुनरभूत्सुखितं च दिदेव तत्
लषति चन्द्रमसा गगनं यथा।।[1]

अर्थात् राजकुमार की मनोहारिणी बाल–लीलाओं से सम्पूर्ण राजमहल धीरे–धीरे फिर से सुखी हो गया और वह उसी प्रकार चमक उठा जिस प्रकार चन्द्रमा से आकाश चमक उठता हैं।

महाकवि ने द्वितीय सर्ग में देवव्रत की विद्या प्राप्ति, गुरु की महत्ता, तृतीय सर्ग में दीक्षान्त समारोह, चतुर्थ सर्ग में विशिष्ट गुरु प्राप्ति, पञ्चम सर्ग में दीव्यास्त्रों की प्राप्ति, षष्ठ सर्ग में धनुर्विद्या की प्राप्ति आदि के चित्रण में कवि ने देवव्रत के विद्याग्रहण हेतु लगन एवं परिश्रम, सेवाभावी शिष्य, शिष्य गुरु के मनोभावों व सम्बन्धों का बड़ा ही अनूठा चित्रण अपने गहन अध्ययन व चिन्तन के द्वारा सरल व स्वाभाविक भाषाशैली में प्रस्तुत किया हैं। इन वर्णनों में कवि की अद्भुत कल्पनाशक्ति के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए राजकुमार देवव्रत को देखने के लिए प्रधान राजमार्ग पर जो जनसमूह व्याप्त हुआ कवि ने उसकी तुलना भगवान् श्रीरामचन्द्र द्वारा बनाए गये रामेश्वर के पुल से की हैं। यह वर्णन कवि की उच्चकोटि की कल्पनाशक्ति का परिचायक हैं–

तदोत्थितो राजसुतेन्दुवेल्लितः
प्रधानभूपाध्वनि लोकसागरः।
कृतान्तरालश्च नरेन्द्रसूनवे
दधार रामेश्वरसेतुयुक्तताम्।।[2]

महाकवि ने शिक्षक की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसकी (शिक्षक की) तुलना सूर्य से की हैं। कवि द्वारा रचित श्लोक अत्यन्त सरल व सुस्पष्ट हैं–

सूर्यो बाह्यं तमो हन्ति
हृदयस्थं च शिक्षकः।
सूर्य–शिक्षकयोर्लोके
को महानत्र संशयः।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–2/16
2. तत्रैव–6/42
3. तत्रैव–3/17

कवि ने सातवें सर्ग में वनविहार नामक शीर्षक में शान्तनु के विलाप का चित्रण किया हैं। प्रियतमा के वियोग के समक्ष उन्हें प्रकृति का सौन्दर्य प्रीतिकर नहीं वरन् पीड़ादायक प्रतीत होता हैं। प्रकृति के हर सौन्दर्य से उन्हें दुःख की अनुभूति होती हैं। कवि ने शान्तनु के मनोभावों का चित्रण इस छन्द में इस प्रकार किया हैं–

अपरतो वसुधा मधुशोभया
रमयितुं यततेस्म महीपतिम्।
तरुषु नूतनपल्लवलालिमा
परमदर्शि नृपेण वनाग्निवत्।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में वृक्षों पर उगे हुए नवीन किसलयों की लालिमा शान्तनु को जंगल की आग जैसी दिखायी पड़ती हैं।

सातवें व आठवें सर्ग में कवि ने शान्तनु तथा सत्यवती के पूर्वानुराग का चित्रण किया हैं। शान्तनु की वियोगावस्था का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया हैं–

कामस्तृप्तो नहि भवति चेद् भूतले मानवानां
तत्तेभ्यो नो भवति सुलभो मोक्षभावः परत्र।
जायाभावे स जगति निजान्धर्मकामापवर्गान्
मोघान्मत्वा मनसि सततं भूमिपालो रुरोद।।[2]

महाकवि की भाषा में कल्पनाशीलता की उड़ान की झलक भी दृष्टिगत होती हैं। महाकवि ने राजकुमार देवव्रत के स्वागत सत्कार के समय राजमार्ग में चलती हुई स्त्रियों को कमलिनियों के समान बताया हैं जो लोगों के मनोरूपी भ्रमरों को अपनी ओर खींच रहा हैं–

अनाप्य पादस्थितिहेतवे पदं
गवाक्षदेशेषु च हर्म्यभूमिषु।
स्त्रियश्चलन्त्यश्चलपद्मिनीनिभाः
मनोमिलिन्दानहरन् नृपाध्वनिः।।[3]

प्रस्तुत श्लोक में कवि की अद्भुत कल्पनाशक्ति का निदर्शन है।

सातवें सर्ग में शान्तनु और सत्यवती के पूर्वानुराग की स्थिति में कवि ने शृङ्गार रस एवं सुकुमार पदावली का प्रयोग किया हैं–

---

1. भीष्मचरितम्–7/15
2. तत्रैव–8/18
3. तत्रैव–6/39

युवतिरप्यतिरूपवती ह्यसौ
चरणशब्दविवृत्तमुखी सती।
मृगवधूनयना नयने स्वके
नृपमुखे सुमुखी समपातयत्।।[1]

महाकवि की भाषा में द्रुतविलम्बित छन्द युक्त संगीतात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता का पुट भी दिखायी देता हैं जिसके कारण भाषा अत्यन्त प्रभावशाली एवं आनन्ददायिनी हो गई हैं। राजा शान्तनु को वनविहार के समय कोयलों की कूक ने भी सुख न पहुँचाकर दुःखी किया हैं–

युवरसालवने पिककूजनं
श्रवणरन्ध्ररुजामकरोद् भृशम्।
तदिव वारिजसौरभयप्यहो
सुखयतिस्म न तस्य च नासिकाम्।।[2]

अर्थात् आम के तरुण पेड़ों पर बैठी हुई कोयलों की कूक ने राजा के कानों में दर्द पैदा कर दिया और आश्चर्य है कि उसी तरह कमलों की खुशबू ने भी उनकी नासिका को सुख नहीं पहुँचाया।

एक अन्य छन्द में कवि ने काव्यात्मक कल्पना सौष्ठव का सहज चित्रण प्रस्तुत किया हैं। श्रृंगार रस के चित्रांकन में कवि ने अर्थ सौष्ठव के साथ–साथ शब्द सौष्ठव का मञ्जुल समन्वय भी प्रदर्शित किया हैं–

कमलकोशगता भ्रमरा अपि
प्रियतमास्मरणं समवर्धयन्।
न च तरन्ति मरालयुगान्यपि
सरसि भूपतये सुखमार्पयन्।।[3]

महाकवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन के प्रसंग में बादलों की तुलना कामिनी के केशों से की हैं। कामिनी के काले केशों जैसे बादल छायाप्रद हैं। धरती पक्षियों के कलरव से गुञ्जायमान हैं फिर भी शान्तनु को धरती शोभायुक्त प्रतीत नहीं होती हैं–

---

1. भीष्मचरितम –7/33
2. तत्रैव–7/17
3. तत्रैव–7/19

प्रायच्छाया नभसि जलदैः कामिनीकुन्तलाभैः
शस्यश्यामा खगरवकला पुष्पगन्धान्विता च।
देवीयम्भूरपि न रुरुचे दाशकन्यास्वरूपे
नारीरत्ने प्रसितमनसे भूमिपालाय तस्मै।।[1]

ग्याहरवें सर्ग में विचित्रवीर्य के जन्म के अवसर के प्रसंग में प्रसादगुण युक्त भाषा परिलक्षित होती हैं–

शुभे मुहूर्ते नरपालगेहे
तेजस्विनं पुत्रमसूत राज्ञी।
अमन्दमानन्दमवाप भूपः
सर्वत्र मोदप्रसरो बभूव।।[2]

महाकवि ने प्रसंग के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया हैं। पन्द्रहवें सर्ग में युद्ध वर्णनादि के प्रसंगों में समास युक्त समस्त पदावली का प्रयोग किया हैं–

अश्वाधिरुढास्तुरगेषु संस्थितैः
गजाधिरुढा गजपृष्ठशोभितैः।
रथाधिरुढा रथिभिश्च पत्तयः
पदातिभिर्युद्धरता विलोकिताः।।[3]

कवि ने सत्रहवें, अठारहवें और उन्नीसवें सर्ग में उपदेशात्मक शैली का प्रयोग कर राजधर्म, प्रजाधर्म और मोक्षधर्म का सुन्दर चित्रण महाभारत के तुल्य समुपत्थापित किया हैं।

कवि **राजधर्म** का वर्णन करते हुए लिखते हैं– कि वत्स युधिष्ठिर समृद्धि करने के लिए राजा का पहला धर्म तो अपनी प्रजा को प्रसन्न करना हैं। धर्मवेत्ता और सत्यनिष्ठ मनीषियों का मत हैं कि जनता को अनुरंजित करने के कारण ही राजा को राजा कहा जाता हैं–

राजधर्म– **हे वत्स! धर्मं प्रथमं समृद्धये**
मन्ये प्रजारञ्जनमेव भूभृतः।

1. भीष्मचरितम्–8 / 6
2. तत्रैव–11 / 14
3. तत्रैव–15 / 10

मनीषिणां धर्मविदां सतां मते
राजोच्यतेऽयं जनतानुरञ्जनात्।।[1]

अठारहवें सर्ग में पितामह भीष्म युधिष्ठिर को **प्रजाधर्म** का उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रजाजनों को धर्म का आचरण धर्मपूर्वक ही करना चाहिए। उन्हें अर्थोपार्जन भी हमेशा धर्मपूर्वक करना चाहिए। कामदेव की आराधना भी धर्मपूर्वक करनी चाहिए और अधर्मपूर्वक तो मोक्ष की भी कामना नहीं करनी चाहिए–

प्रजाधर्म– **धर्मेण धर्माचरणे रतो भवेत्**
अर्थं च धर्मेण समर्जयेत्सदा।
कामं निषेवेत च धर्मपूर्वकं
न मोक्षमिच्छेच्च जनो ह्यधर्मतः।।[2]

उन्नीसवें सर्ग में भीष्म पितामह **मोक्षधर्म** के विषय में युधिष्ठिर को बताते हुए कहते हैं कि धर्म, अर्थ और काम नामक तीनों पुरुषार्थों की पूर्ण अनुभूति करके सुबुद्धिमान् व्यक्ति को वन में चला जाना चाहिए और अच्छे गुरु की सेवा द्वारा प्रसन्न करके उसका शिष्य बन जाना चाहिए। वहाँ उसे सदैव सदाचरण में प्रवृत रहते हुए अपने शरीर की शुद्धि के लिए तपस्या करते रहना चाहिए–

मोक्षधर्म– **त्रिवर्गमाराध्य वनं व्रजेत्सुधीः**
गुरुं समाराध्य भवेच्च दीक्षितः।
सदा सदाचारपरायणो भवन्
कुर्यात्तपस्यां च शरीरशुद्धये।।[3]

बीसवें सर्ग में भीष्म की कृष्ण से (दोषों को क्षमा करने की) प्रार्थना कवि के क्षमाशील मनोभावों का द्योतक हैं। कवि का कथन हैं कि अपने भक्तों से प्यार करने वाले संसाररूपी जंगल को जलाने में चतुर! हे चक्रधर मेरे सभी दोषों को क्षमा करके मुझे शीघ्र ही इस चिन्ता के समुद्र से निकालिए–

भवाटवीदाहविशारद! प्रभो!
हे कृष्ण! चक्रिन्! निजभक्तवत्सल।

---

1. भीष्मचरितम्–17/5
2. तत्रैव–18/30
3. तत्रैव–19/25

दोषान् क्षमित्वा मम नाथ! चाखिलान्
चिन्तार्णवान्मामचिरं समुद्धर।।[1]

कवि ने अपने महाकाव्य में स्थान–स्थान पर सूक्तियों, लोकोक्तियों व सिद्धान्तों का प्रयोग किया हैं जो निम्न हैं–

1. मनुजता विधिना यदि वञ्चिता, भवति, तर्हि तु पुत्तलिकायते।।[2]

– मनुष्यता यदि विधाता द्वारा उगी जाती हैं तो वह कठपुतली बन जाती हैं।

2. जगति नैव तपन्ति गुणप्रियाः।।[3]

– गुणों का आदर करने वाले लोग संसार में दुःखी नहीं रहते हैं।

3. पूजाऽतिथेर्महत्तमा।।[4]

– अतिथि की पूजा सभी पूजाओं में बड़ी होती हैं।

4. गुणी विजानाति गुणान्न निर्गुणः।।[5]

– गुणों को गुणी ही जानता हैं, न कि गुणहीन।

5. मठस्य दीपो नहि वत्स! शोभते, कदापि लोके गृहदाहकर्मणि।।[6]

– मन्दिर का दीपक घर जलाए, यह तथ्य समाज में कभी अच्छा नहीं माना जाता।

6. मनोरथा नैव वृथा तपस्विनाम्।।[7]

– तपस्वियों की इच्छाएँ व्यर्थ नहीं होती हैं।

7. परिश्रमी यत्फलवान्न सर्वदा।।[8]

– परिश्रम करने वाला व्यक्ति हमेशा सफल नहीं होता हैं।

---

1. भीष्मचरितम–20/27
2. तत्रैव–2/6
3. तत्रैव–2/36
4. तत्रैव–3/37
5. तत्रैव–5/26
6. तत्रैव–5/43
7. तत्रैव–5/46
8. तत्रैव–6/59

8. प्रियतमारहितस्य सुखं कुतः?[1]

– अपनी प्रियतमा से रहित पुरुष को सुख कहाँ?

9. सुखकरी प्रकृतिर्विरहे रिपुर–भवति नात्र मनागपि संशयः।।[2]

– सुख देने वाली प्रकृति भी वियोग के क्षणों में शत्रु (दुःखदायक) बन जाती हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं हैं।

10. भवति कुत्र सतां न समादरः?।।[3]

– सज्जनों का आदर कहाँ नहीं होता?

11. प्रकटिता गुणिनां भवति स्थितिः।।[4]

– गुणवान् लोगों की उपस्थिति प्रकट हो जाती हैं।

12. बलवती नियतं भवितव्यता।।[5]

– होनहार सचमुच ही ताकतवर होती हैं।

13. गुणवतां न चिरं दुखस्थितिः।।[6]

– गुणवान् लोगों की बुरी हालत बहुत दिनों तक नहीं रहती हैं।

14. सुरभितं लषते कनकं न कः?।।[7]

– सुगन्धित सोने को भला कौन नहीं पाना चाहता?

15. न हठिने हितवागपि रोचते।।[8]

– हठी व्यक्ति को हित की बात भी अच्छी नहीं लगती हैं।

16. विधिगतिरतिचित्रा मानवस्तां न वेत्ति।।[9]

---

1. भीष्मचरितम 7/13
2. तत्रैव–7/25
3. तत्रैव–7/28
4. तत्रैव–7/30
5. तत्रैव–7/31
6. तत्रैव–7/46
7. तत्रैव–7/47
8. तत्रैव–7/59
9. तत्रैव–7/61

– विधाता की गति बड़ी विचित्र होती हैं, इंसान उसे नहीं जान पाता हैं।

17. कामाधीनं जगति नियतं खेदयन्तीन्द्रियाणि।[1]

– संसार में कामाधीन व्यक्ति को इन्द्रियाँ अवश्य ही सताती हैं।

18. न लोभिनां चित्तगतिर्व्यवस्थिता।।[2]

– लोभी मनुष्यों के चित्त की गति स्थिर नहीं होती हैं।

19. दग्धेन दग्धो धयतीह तक्रं, फूत्कारपूर्वं मतिमान्मनुष्यः।।[3]

– दूध का जला समझदार मनुष्य मट्ठे को भी फूँककर पीता हैं।

20. धृताहुतीः प्राप्य तनूनपातो, ज्वाला वरीवर्धि निसर्ग एषः।।[4]

– आग की ज्वाला घी की आहुति पाकर और भी अधिक बढ़ती हैं, यह उसका स्वभाव हैं।

21. मनस्विनो विरमन्ति, प्रणपथतो न महाविपद्यपि।।[5]

– मनस्वी पुरुष महाविपत्ति में भी अपने प्रण को नहीं त्यागते हैं।

22. औद्धत्यं महोक्षस्य, नोपेक्षते चिरं गजेन्द्रः।।[6]

– कोई भी गजराज किसी बैल की उद्दण्डता को बहुत देर तक बर्दाश्त नहीं करता हैं।

23. बलिष्ठं नूनं कर्मफलम्।।[7]

– कर्मफल निश्चय ही बलिष्ठ होता हैं।

24. विनाशकाले कुमतीयते मतिः।।[8]

– विनाश के समय मनुष्य की बुद्धि, कुबुद्धि बन जाती हैं।

---

1. भीष्मचरितम –8/9
2. तत्रैव–9/50
3. तत्रैव–11/8
4. तत्रैव–10/44
5. तत्रैव–13/14
6. तत्रैव–13/57
7. तत्रैव–13/83
8. तत्रैव–15/3

25. चिन्वन्ति पापं मरणेऽपि पापिनः।।[1]

– पापी लोग मरते समय भी पाप का संचय करते हैं।

26. वदन्ति विद्यासुहृदं श्रमं बुधाः।।[2]

– विद्वानों ने परिश्रम को ज्ञान का मित्र बताया हैं।

27. यतो न वीणा महिषाय वाद्यते।।[3]

– भैंसे के लिए वीणा नहीं बजाई जाती हैं।

28. सूर्यस्य साहाय्यमवाप्य मानवः प्रभातकाले तमसो बिभेति किम्?[4]

– प्रातः काल में सूर्य की सहायता पाकर मनुष्य क्या अन्धकार से डरता हैं? कभी नहीं।

कवि द्वारा प्रयुक्त सिद्धान्त वाक्य इस प्रकार हैं–

1. जीव–जीवय–सिद्धान्तो रक्षणीयस्स्वजीवने।।[5]

– अपने जीवन में 'जिओं और जीने दो' के सिद्धान्त की रक्षा करना।

2. लक्ष्यं च 'येषां पिब खाद भुङ्क्ष्व चेत्येवास्ति' लोके तु मोक्षसाधना।।[6]

– इस संसार में खाओ पीयो और मौज उड़ाओं ही होता हैं, न कि मोक्ष की साधना।

कवि द्वारा प्रयुक्त सिद्धान्त वाक्य, लोकोक्तियाँ व सूक्तियाँ भी उनकी भाषा शैली में प्रवाहमयता, सजीवता एवं सौष्ठवता को प्रदान करने वाले हैं। महाकवि लिट्लकार के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। महाकाव्य में पद–पद में लिट् लकार का प्रयोग किया हैं जैसे बभूव, लेभे ययाचे, ययौ आदि।

छन्द प्रयोग की दृष्टि से भी महाकाव्य अद्वितीय हैं। कवि ने आर्या, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, इन्द्रवंशा, वियोगिनी, अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग किया हैं। छन्दों के प्रयोग द्वारा कवि ने अपने भावों को अभिव्यक्त किया हैं।

---

1. भीष्मचरितम–15/47
2. तत्रैव–18/23
3. तत्रैव–19/7
4. तत्रैव–20/41
5. तत्रैव–3/45
6. तत्रैव–19/5

महाकवि ने महाकाव्य में विविध रसों का सुन्दर सन्निवेश किया हैं। महाकाव्य का अंगीरस **शान्त** हैं, किन्तु कवि ने अवसरानुकूल श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्‌भुत, हास्य, वात्सल्य आदि रसों का भी महाकाव्य में प्रयोग किया हैं।

कवि ने महाकाव्य में वात्सल्य, कारुण्य, शौर्य, क्रोध, शान्त आदि भावों का अनेकत्र चित्रण किया हैं जिनके उदाहरण इस प्रकार हैं–

कारुण्य भाव – कृष्णाकरुणाह्वानं

श्रुत्वा सपदि समाजगाम कृष्णः।
अदर्शयंश्चात्मानं
स तस्याः शाटीमवर्धयत्।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में करुण भाव की अभिव्यंजना कवि ने द्रौपदी के करुण पुकार द्वारा की हैं–

क्रोध भाव – दुः शासनस्य रुधिरं

पातुं, भङ्क्तुं दुर्योधनजङ्घे।
भीमश्चक्रे भीमां
कोपारुणनयनः प्रतिज्ञाम्।।[2]

प्रस्तुत श्लोक में क्रोध भाव की अभिव्यक्ति हुई। क्रोधभाव की अभिव्यक्ति कवि ने भीम के क्रोध द्वारा की हैं।

महाकवि ने शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कारों दोनों का ही प्रयोग किया हैं। अलंकारों का प्रयोग भावप्रवाह में बाधक नहीं हैं। अनुप्रास का बाहुल्य सर्वत्र दृष्टिगत होता हैं। इसके अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का भी यथास्थान स्वाभाविक प्रयोग हुआ हैं। मात्र पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग कवि ने नहीं किया हैं। बल्कि ये अलंकार महाकाव्य के शोभावर्धक भी हैं।

भाषाशैली की दृष्टि से महाकाव्य का गहनाध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता हैं कि कवि की भाषा अत्यन्त जीवन्त, सरल–सुकुमार पदावली से मण्डित हैं। महाकवि ने अवसरानुकूल छन्द, अलंकार, गुण, रीति आदि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया हैं। महाकवि ने नवीन वर्ण्य विषयों को

1. भीष्मचरितम –13/54
2. तत्रैव–13/58

जो समाज में अभिव्याप्त हैं जैसे–भ्रष्टाचार, दहेजप्रथा, प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह, नारी अस्मिता, गुरु की महत्ता, शिक्षा व्यवस्था, नारी की समानता आदि को महाकाव्य में निबद्ध किया हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि की भाषा सर्वत्र परिमार्जित, परिष्कृत तथा प्राञ्जल हैं। उनकी भाषा का सबसे बड़ा गुण हैं विषयानुरुपता एवं भावानुरूपता। कवि ने अपनी भाषा को अभीष्ट भावों की अभिव्यक्ति के सर्वथा उपयुक्त बना लिया हैं। जहाँ भावों की कोमलता हैं, चित्रण मधुर हैं, वहाँ कवि ने भाषा में भी सुकुमार पदों का विन्यास करके भाषा को कोमलकान्त पदावली से मधुर बना दिया हैं। महाकाव्य में सर्वत्र सरल पद्यों की संयोजना होने से अर्थग्रहण में क्लिष्टता का अनुभव नहीं होता हैं। भाषा शैली में दीर्घ समासयुक्त पदों का प्रयोग नहीं हैं। कवि की भाषा प्रसाद गुण युक्त हैं। शृङ्गार के वर्णन में माधुर्य गुण के दर्शन होते हैं।

(II) कविकृत वर्णन कौशल की वर्तमान में प्रासंगिकता

किसी भी काव्य अथवा नाट्य का वर्णन कौशल कवि की कल्पनाशीलता, उसकी कवित्व बीजभूत संस्कार विशेष प्रतिभा तथा विषय से सम्बन्धित लोक अनुभूतियों, प्रचलित दन्त कथाओं, जनसमाज में व्याप्त प्रवृत्तियों, धाराओं, युगबोध (समय की माँग), देश, काल, परिस्थिति, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों के सूक्ष्म पर्यवेक्षण से संश्लिष्ट होता हैं।

कवि ने शान्तनु के राज्य शासन के माध्यम से वर्तमान जगत में व्याप्त समस्याओं, विषमताओं का चित्रण अपने वर्णन कौशल से बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया हैं यथा– 1. गुरु की महत्ता, 2. शिक्षक सम्मान, 3. गुरु के प्रति भक्तिभाव, 4. शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति, 5.नारी अस्मिता, 6. पुत्र–पुत्री की समानता, 7. दहेजप्रथा, 8. प्रेमविवाह, 9. अन्तर्जातीय विवाह, दाम्पत्य सम्बन्ध, 10. भ्रष्टाचार, 11. कृषि को प्रोत्साहन, 12. राजकर व आयकर, 13. राष्ट्रीय भावना, 14. सामाजिक वर्ग की विषमता का अभाव, 15. राजधर्म, 16. दीक्षान्त समारोह, 17, मोक्षधर्म, 18. बालक्रीडा, 19. प्रजाधर्म, 20. विविध दिव्यास्त्र जैसे विषयों पर अपनी नित्यनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से तथा जगत् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन से प्रकाश डाला हैं जो कि कवि के वर्णन कौशल क्षमता के परिचायक हैं। कवि ने अपने वर्णन कौशल में उत्कृष्ट कल्पनाशक्ति की संयोजना की हैं। कवि की वर्णन कुशलता के विविध आयामों का चित्रण इस प्रकार हैं–

1. गुरु की महिमा – गुरु की महिमा का प्रतिपादन प्रत्येक धर्म ग्रन्थों में किया गया हैं। गुरु शब्द दो अक्षरों से मिलकर बना हैं– 'गु' का अर्थ होता हैं अंधकार (अज्ञान) एवं 'रु' का अर्थ होता हैं प्रकाश (ज्ञान)। गुरु हमें अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाते हैं। हमारे जीवन में प्रथम गुरु हमारे माता–पिता होते हैं। अतः माता–पिता का स्थान सर्वोपरि हैं। भावी जीवन का निर्माण गुरु द्वारा होता हैं। गुरु की महिमा तो भगवान् से भी कहीं अधिक हैं–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः।।[1]

शास्त्रों में गुरु के महत्त्व को अनेकत्र प्रतिपादित किया गया हैं। गुरु की कृपा के बिना भगवान की प्राप्ति असंभव हैं। गुरु के मन में सदैव ही यह विचार होता हैं कि उसका शिष्य सर्वश्रेष्ठ हों और उसके गुणों की सर्वसमाज में पूजा हो। गुरु के महत्त्व का वर्णन कबीरदास जी ने अपने दोहे में किया हैं–

---

1. श्रीगुरुगीता–श्रीव्रजवल्लभद्विवेदी–पेज नं. 32/32

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पायं,
बलिहारी गुरु आपणे, जिन गोविन्द दिया बताय।।[1]

गुरु की महिमा का निष्पादन कवि ने अपने महाकाव्य के तीसरे सर्ग में किया हैं। शान्तनु उन गुरुओं के प्रति बड़े ही कृतज्ञ हैं जिन्होंने देवव्रत को सभी विद्याओं में निष्णात किया हैं। कवि का कथन हैं कि इस पृथ्वी पर गुरुजन हमेशा ही पूजनीय होते हैं। यदि संसार में गुरु नहीं हो तो सन्मार्ग ही दुर्लभ हो जाय, क्योंकि सूर्य बाहरी अन्धकार को दूर करता हैं और शिक्षक मन के अन्धकार को दूर करता हैं–

गुरुतत्त्वं सदा पूज्यं
वर्त्तते धरणीतले।
यदि न स्यादिदं तत्त्वं
सत्पथो दुर्लभो भवेत्।।
सूर्यो बाह्यं तमो हन्ति
हृदयस्थं च शिक्षकः।
सूर्य–शिक्षकयोर्लोके
को महानत्र संशयः।।[2]

संसार में माता–पिता तो केवल जन्म देते हैं। सही राह तो बालक को शिक्षक ही प्रदान करता हैं–

शुभाशुभविमर्शं तु
गुरुरेव प्रयच्छति।
शिशवेऽसारसंसारे
पितरौ जन्म केवलम्।।[3]

एक उत्तम भविष्य के निर्माण में आज भी गुरु का विशेष योगदान होता हैं। गुरु के प्रति श्रद्धा को समर्पित करने हेतु 'गुरुपूर्णिमा' का पर्व मनाया जाता हैं। मान्यता हैं कि इस दिन गुरु का पूजन करने से गुरु की दीक्षा का पूरा फल उनके शिष्यों को मिलता हैं। गुरु पूर्णिमा के

1. गुरुदेव के अंग–संत कबीर–5
2. भीष्मचरितम्–3 / 16–17
3. तत्रैव–3 / 18

अवसर पर गुरुओं का सम्मान किया जाता हैं। लेकिन हम वर्तमान में देखते हैं कि कुछ शिष्य गुरुओं के प्रति सम्मान व आदर भाव नहीं रखते हैं।

इस प्रकार दीक्षित ने अपने वर्णन कौशल से महाकाव्य में गुरु की महिमा का प्रतिपादन किया हैं।

2. शिक्षक का सम्मान – हमारे देश में प्राचीनकाल से ही शिक्षक को सम्मान देने की परम्परा रही हैं। इसी परम्परा का निर्वहन महाकवि दीक्षित जी ने अपने महाकाव्य में किया हैं। उनका कथन हैं कि जिन गुरुओं ने देवव्रत को शिक्षा दीक्षा व विद्याओं में प्रवीण बनाया हैं, शान्तनु उन गुरुओं को जीविका देकर सम्मानित करना चाहते हैं–

राष्ट्रस्य कर्णधाराणां
गुरुणां ज्ञानिनामहम्।
सम्मानं च करिष्यामि
जीविकादानपूर्वकम्।।[1]

कवि का कथन हैं कि जिस देश में सम्मान और जीविका प्रदान करके शिक्षकों की पूजा की जाती हैं, वहाँ सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ निवास करती हैं–

शिक्षका यत्र पूज्यन्ते
दत्वा मानं च जीविकाम्।
सर्वाः सम्पत्तयस्तत्र
निवसन्ति न संशयः।।[2]

कवि आगे लिखते हैं कि पूर्ण रूप से सन्तुष्ट शिक्षक ही राष्ट्र का सुन्दर निर्माण करते हैं, इसलिए किसी भी कारण से शिक्षकगण को दुःखी नहीं होना चाहिए–

पूर्णरूपेण सन्तुष्टैः
समृद्धैश्चैव शिक्षकैः।
राष्ट्रस्य निर्मिती रम्या
क्रियतेऽत्र न संशयः।।[3]

---

1. भीष्मचरितम्–3/20
2. तत्रैव–3/21
3. तत्रैव–3/22

इसी संदर्भ में कवि का कथन हैं कि प्रसन्न हुए शिक्षक ही अपने ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा द्वारा राष्ट्र का विकास करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं–

मुदिताः शिक्षका एव
ज्ञानविज्ञानशिक्षया।
राष्ट्रं सृजन्ति–रक्षन्तिः।
राजा रक्षति केवलम्।।[1]

कवि ने उल्लेख किया हैं कि शिक्षकों के अभावग्रस्त होने पर राष्ट्र निश्चय ही विपत्तिग्रस्त हो जाता हैं, और उन्हीं के खुशहाल होने पर खुशहाल हो जाता हैं–

शिक्षकेषु विपन्नेषु
राष्ट्रं नूनं विपद्यते।
सम्पन्नेषु च तेष्वेव
सम्पद्यते न संशयः।।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से कवि ने शिक्षकों की महत्ता, उनके गौरव व सम्मान को विवर्धित करने का उत्तम प्रयास किया हैं।

वर्तमान युग में भी हमारे देश में शिक्षकों को सम्मानित करने के लिए हर वर्ष 5 सितम्बर को भारत में शिक्षक दिवस मनाया जाता हैं। शिक्षक दिवस पर भारत के राष्ट्रपति शिक्षकों को राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित करते हैं। यह पुरस्कार प्रत्येक स्तर पर शिक्षक क्षेत्र में सराहनीय योगदान के लिए उत्कृष्ट शिक्षकों को प्रदान किया जाता हैं। दीक्षित जी ने भी अपने महाकाव्य में शिक्षकों के महत्त्व को अपनी वाक् चातुरी से निष्पादित किया हैं।

3. गुरु के प्रति भक्तिभाव – कवि ने पाँचवें सर्ग में गुरु के प्रति भक्तिभाव का प्रतिपादन देवव्रत के माध्यम से किया हैं। जब देवव्रत परशुरामजी से विभिन्न अस्त्रों की शिक्षा को ग्रहण करते हैं तो उनकी गुरु के चरण कमलों के प्रति भक्ति–भावना हर पल सुदृढ़ होती जाती है–

दिने दिने दिव्यशरानवाप्नुवन्
परां मुदं प्राप नरेन्द्रनन्दनः।

1. भीष्मचरितम्–3/23
2. तत्रैव–3/24

तथा तदीया गुरुपादपद्मयोः

क्षणे क्षणे भक्तिरभूद् द्रढीयसी।।[1]

राजकुमार देवव्रत अपने गुरु की सेवा में दिन–रात संलग्न रहते थे जिससे मुनि परशुराम का मन उन पर सदा ही प्रसन्न रहता था। यही कारण था कि परशुराम जी ने उन्हें दिव्यास्त्रों की शिक्षा देने में तनिक भी संकोच नहीं किया–

विलोक्य सेवां च कुमारकर्तुकां

मुनेर्मनो मोदमवाप नित्यदा।

अतश्च दिव्यास्त्रनिधिप्रबोधने

चकार चिन्तां न मनागसौ तदा।[2]

इस प्रकार दोनों ही एक–दूसरे के प्रति दृढ़ भक्ति–भावना से जुड़े हुए थे।

पाँचवे सर्ग में ही कवि ने आगे चित्रित किया हैं कि शान्तनु के शासनकाल में गुरु के गुणों को देखकर शिष्य और शिष्य के गुणों को देखकर गुरु दोनों ही एक–दूसरे की ह्रदय से प्रशंसा किया करते थे–

गुरोर्गुणान्वीक्ष्य वशंवदस्तदा

विलोक्य शिष्यस्य गुणान्गुरुस्तथा।

परस्परं तौ प्रशशंसतुर्हृदा

गुणी विजानाति गुणान्न निर्गुणः।।[3]

वर्तमान समय में भी उभय स्थिति दृष्टिगोचर होती हैं अर्थात् शिष्य उत्तम अध्यापक के गुणों की प्रशंसा तथा अध्यापक भी योग्य शिष्य की प्रशंसा सहर्ष करते हैं। कवि गुरु के प्रति भक्तिभाव रखने वाले विद्यार्थियों की सफलता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि गुरु के प्रति भक्तिभाव रखने वाले विद्यार्थी विफल नहीं होते हैं–

अवाप सिद्धिं स च तत्र वाञ्छितां

न यान्ति मोहं गुरुभक्तसाधकाः।।[4]

---

1. भीष्मचरितम –5 / 12
2. तत्रैव–5 / 15
3. तत्रैव–5 / 26
4. तत्रैव–5 / 27

देवव्रत की गुरुसेवा से प्रसन्न होकर परशुरामजी कहते हैं कि पढ़ने में कुशल और गुरु की सेवा करने वाले विद्यार्थी इस पृथ्वी पर बहुत ही कम होते हैं–

अधीतिदक्षा गुरुसेविनस्तथा
भवन्ति शिष्या विरला महीतले।।[1]

इस प्रकार कवि ने अपनी वर्णन क्षमता से गुरु के प्रति भक्ति भाव का निष्पादन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया हैं।

4. शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति – कवि ने अपने महाकाव्य के प्रथमसर्ग में अपनी वर्णन कुशलता से शान्तनु के शासनकाल की शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक एवं विद्यार्थी की स्थिति का निरूपण किया हैं। उनका कथन हैं कि राजा शान्तनु के शासनकाल में गुरुजन हमेशा पढ़ाने–लिखाने में अपना मन लगाये रहते थे और विद्यार्थी उनकी आज्ञा का अनुपालन करते थे। इस प्रकार गुरु और शिष्य दोनों ही, एक दूसरे का हित किया करते थे–

गुरुस्सदा शिक्षणदानमानसो
बभूव विद्यार्थिजनश्च तद्वशः।
परस्परं तौ हितमेव चक्रतुः
प्रशासने भूमिपतेश्च शान्तनोः।।[2]

प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कवि ने शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति का निरुपण किया हैं। उस समय अध्यापक, विद्यार्थियों को अध्ययन कराना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते थे जबकि आज स्थिति में परिवर्तन हो गया हैं। कतिपय अध्यापक ही अध्ययन अध्यापन की ओर उन्मुख होते हैं शेष केवल राजनीतिक समीकरण में लगे रहते हैं।

कवि ने शान्तनु के शासन व्यवस्था के माध्यम से वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर प्रहार किया हैं। कवि शान्तनु के काल की शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख करते हुए लिखते हैं–उस समय अध्यापक, दूसरे अध्यापक की बुराई नहीं करते थे और न वे अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते थे और न ही वे लोग कभी भी किसी भी गलत काम के लिए विद्यार्थियों को कोई प्रभोलन देते थे–

न शिक्षकैश्शिक्षकनिन्दनं कृतं
न वा च तैरात्मकृते विकत्थितम्।

1. भीष्मचरितम्–5 / 31
2. तत्रैव–1 / 25

न चापि विद्यार्थिन एव लोभिताः
कदापि कस्मा अपि हीनकर्मणे।।[1]

प्रस्तुत श्लोक के द्वारा कवि ने आज की शिक्षा प्रणाली एवं आज के अध्यापकों की स्थिति को उजागर किया हैं। आज के अध्यापक अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करते हैं। गलत कार्य करने के लिए उकसाते हैं। महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में राजनीति से सम्पृक्त अध्यापकगण ऐसे कार्यों में संलिप्त रहते हैं।

अठाहरवें सर्ग में कवि, अध्यापकों के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि अध्यापकों को चाहिए कि वे लोगों में मन को सन्तोष प्रदान करने वाली अपनी भारतीय संस्कृति का, स्वदेश प्रेम को जन्म देने वाली अपनी भारतीय सभ्यता का तथा अपनी जन्मभूमि (भारत–भूमि) के प्रति भक्तिभावना का संचार करें–

स्वसंस्कृतिं मानसतुष्टिदायिकां
स्वदेशभक्तेर्जननीं स्वसभ्यताम्।
स्वजन्मभूमिं प्रति भक्तिभावनाम्
उत्पादयेयुश्च जनेषु शिक्षकाः।।[2]

उपर्युक्त निदर्शनों के द्वारा दीक्षित ने शिक्षा व्यवस्था में अध्यापकों की स्थिति पर अपने वर्णन कौशल से प्रकाश डाला हैं।

5. नारी अस्मिता – हमारे देश में नारी सदैव से पूजनीय मानी गयी हैं। हमारे धर्म ग्रन्थों, स्मृति ग्रन्थों में उल्लेख हैं– 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता', 'गृहिणी गृहं कथ्यते' आदि। लेकिन इतिहास के काल खण्डों को देखने से ज्ञात होता हैं कि जो सम्मान वैदिक युग में नारी को प्राप्त था वह मध्यकाल में आकर समाप्त हो गया। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् पुनः देश के महान नेताओं ने नारी की स्थिति को सुधारने के लिए बालविवाह, प्रर्दाप्रथा, सतीप्रथा, बहुपत्नीप्रथा का विरोध कर नारी के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। हरिनारायण दीक्षित ने भी अपने महाकाव्य में नारी के सम्मान व प्रतिष्ठा को अपने वर्णन कौशल के माध्यम से अभिव्यक्त किया हैं। सत्रहवें सर्ग में कवि का कथन है कि राजा नारी के विकास के लिए प्रयत्न करें, क्योंकि समाज रूपी रथ के दौड़ने के लिए स्त्री और पुरुष रूपी दो पहिए आवश्यक माने जाते हैं–

---

1. भीष्मचरितम्–1/26
2. तत्रैव–18/34

समाजरूपस्य रथस्य धावने
नारीनराकार–रथाङ्ग–युग्मकम्।
अपेक्ष्यते, तेन तदीयसारथिः
नारीविकासेऽपि भवेत्प्रयत्नवान्।।[1]

अठाहरवें सर्ग में वे लिखते हैं कि माँ हो या पत्नी, बहन हो या बेटी, लोगों को चाहिए कि वे उसका कभी भी अपमान नहीं करे। क्योंकि नारी को धरती की देवी माना गया हैं–

माता भवेद्वा भगिनी भवेच्च वा
भार्या भवेद्वा दुहिता च वा भवेत्।
विमाननीया न जनैः कदापि सा
नारी मता भूतलदेवतोपमा।।[2]

नारी की प्रतिष्ठा के संबंध में कवि के विचार हैं कि नारी की प्रतिष्ठा से समाज में सुख और शान्ति पनपती हैं तथा उसके अपमान से कलह को जन्म मिलता हैं। इसलिए लोगों को शुभ कार्य के लिए शुभ कारण ही अपनाना चाहिए–

नारीप्रतिष्ठा सुखशान्तिकारणं
तस्या विमानश्च कलेर्हि कारणम्।
उरीविधेयं शुभकार्यमिच्छता
जनेन तस्माच्च सदेव कारणम्।।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के द्वारा कवि ने नारी को समाज में प्रतिष्ठित करने का सराहनीय प्रयास किया हैं। आधुनिक युग में शिक्षा के कारण आर्थिक निर्भरता प्राप्त होने से नारी की स्थिति में समाज में परिवर्तन हुआ और समाज में पुनः एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ हैं।

6. पुत्र व पुत्री की समानता – हमारे देश में प्राचीनकाल में पुत्र व पुत्री को समान नहीं समझा जाता था। घर–परिवार में दोनों के साथ भेदभाव का व्यवहार किया जाता था। लेकिन आधुनिक युग में लोगों के विचारों में परिवर्तन हुआ हैं लोगों ने पुत्र व पुत्री के भेदभाव के व्यवहार को समाप्त कर दिया हैं। आज देश में नारा प्रचलित हैं–'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ।' आज हर परिवार वाले बेटियों को पढ़ाने में अभिरूचि दिखाने लगे हैं जिससे बेटियाँ आत्मनिर्भर भी हुई हैं।

1. भीष्मचरितम्–17/44
2. तत्रैव–18/28
3. तत्रैव–18/29

अठारहवें सर्ग में कवि ने पुत्र व पुत्री के साथ समान व्यवहार व समान शिक्षा देने का उल्लेख किया हैं। कवि उल्लेख करते हैं कि लोगों को चाहिए कि वे अपने पुत्रों की तरह पुत्रियों को भी पढाएँ। इसमें उन्हें कोई भेद–भाव नहीं करना चाहिए। रथ के पहियों की भाँति ये दोनों भी गृहस्थ–धर्म की गाड़ी को खींचने के लिए समान रूप से अपेक्षित होते हैं–

सुपाठनीयाः सुतवत्सुता अपि
भेदो विधेयो नच तत्र कश्चन।
गार्हस्थ्ययानस्य कृते ह्यु भाविमा–
वावश्यकौ स्तो रथचक्रसन्निभौ।।[1]

7. दहेज प्रथा – हमारे देश में दहेज प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही एक सामाजिक प्रथा हैं। दहेज का अभिप्राय हैं कि विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष द्वारा कन्या को विदाई के समय दी गई सम्पत्ति या आवश्यक सामग्री से हैं। यह प्रथा गाँव के साथ शहरों में भी प्रचलित हैं। वर्तमान में दहेज प्रथा में परिवर्तन हो गया हैं। वरपक्ष शादी से पहले ही वधूपक्ष के समक्ष माँग रख देता हैं कि वरपक्ष को शादी में क्या–क्या चीजें चाहिए। फिर वरपक्ष की शर्त के अनुसार कन्यापक्ष वह सब सामग्री वरपक्ष को प्रदान करता हैं।

आज समाज में दहेज एक विषम समस्या बन गई हैं। दहेज प्रथा के कारण वैवाहिक रिश्ते टूट रहें हैं, मारपीट तथा आत्महत्या हो रही हैं जिसका मुख्य कारण विवाह में दी जाने वाली दहेज (सम्पत्ति) से हैं। यदि वरपक्ष सन्तुष्ट नहीं हो तो वह कन्या को नाना प्रकार से प्रताड़ित करना शुरु कर देते हैं और अन्त में स्थिति आत्महत्या तक पहुँच जाती हैं।

महाकवि दीक्षित जी दहेज प्रथा पर प्रहार करते हुए लिखते हैं कि किसी भी पिता को अपने पुत्र के विवाह के लिए कन्यापक्ष के लोगों से दहेज की माँग नहीं करनी चाहिए। तुच्छ धन के लिए सज्जनता और सद्गुणों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए–

पिता च पुत्रस्य विवाहकर्मणि
काङ्क्षेद् वधूपक्षजनान्न यौतकम्।
न कल्यवर्तस्य धनस्य लब्धये
विमानयेत्सज्जनतां च सद्गुणान्।।[2]

दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए कितने ही नियमों और कानूनों को लागू किया गया हैं। फिर भी यह प्रथा समाप्त नहीं हुई हैं। युवा पीढ़ी जिसे समाज का भविष्य समझा जाता हैं,

---

1. भीष्मचरितम्–18/26
2. तत्रैव–18/27

उन्हें इस प्रथा को समाप्त करने के लिए आगे आना चाहिए ताकि भविष्य में प्रत्येक स्त्री को सम्मान के साथ जीने का अवसर मिले और कोई भी वधू दहेज हत्या का शिकार ना होने पाए।

8. प्रेम विवाह – यह विवाह कन्या और वर के परस्पर प्रेम के फलस्वरूप और उनकी इच्छा के अनुसार होता हैं तथा बिना अपने माता–पिता की अनुमति के ही एक–दूसरे को पति और पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इसे ही प्रेम विवाह या गान्धर्व विवाह कहते हैं।

विवाह दो प्रकार के होते हैं एक वह जो परिवार वालों की सहमति से होता हैं, और दूसरा वह जो परिवार वालों की असहमति से होता हैं। जिसमें किसी की सहमति नहीं होती हैं, ज्यादातर लोग उसे प्रेम विवाह के नाम से जानते हैं। इस प्रकार के विवाह में उचित विधियों को कर लेने के बाद समाज की स्वीकृति प्राप्त हो जाती हैं। आधुनिक युग में प्रेम विवाह भी माता–पिता की सहमति से होने लगे हैं। इसे धर्मग्रन्थों में **गान्धर्व विवाह** कहा जाता हैं। गान्धर्व विवाह को परिभाषित करते हुए पी.वी. काणे ने लिखा हैं कि– "वर एवं कन्या की परस्पर सम्मत्ति से जो प्रेम की भावना के उद्रेक का प्रतिफल हो तथा सम्भोग जिसका उद्देश्य हो उस विवाह को गान्धर्व विवाह कहा जाता हैं। गान्धर्व विवाह में केवल काम पिपासा की शान्ति की बात प्रमुख हैं अतः यह अस्वीकृत माना जाता हैं।"[1]

गान्धर्व विवाह के विषय में **मनु** का कथन हैं–

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः।।[2]

अर्थात् कन्या और वर की इच्छा से जो संयोग होता हैं उसको गान्धर्व विवाह कहते हैं, यह कामवश भोगमात्र के लिए हैं, धर्मार्थ नहीं हैं।

याज्ञवलक्य का कथन हैं–**गान्धर्वः समयान्मिथः।**[3] अर्थात् परस्पर प्रेम होने पर जो विवाह होता हैं वह गान्धर्व विवाह कहलाता हैं।

बौधायन धर्मसूत्र में लिखा हैं– **सकामेन सकामायां संयोगो गान्धर्वः।**[4] अर्थात् प्रेम करने वाले पुरुष का यदि प्रेम करने वाली कन्या से संयोग हो तो वह गान्धर्व विवाह कहलाता हैं।

---

1. धर्मशास्त्र का इतिहास–पी.वी. काणे, पृ.सं. 297–298
2. मनुस्मृति–3/32
3. याज्ञवल्क्यस्मृति–1/61
4. बौधायन धर्मसूत्र–1/11/6

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार–**इच्छन्त्या स्वयं संयोगो गान्धर्वः।**[1] अर्थात् चाहने वाली कन्या के साथ वर का स्वयं अपनी इच्छा से सम्बन्ध कर लेना गान्धर्व विवाह कहलाता हैं।

महाकवि दीक्षित जी ने प्रेम विवाह का समर्थन करते हुए अपने महाकाव्य में लिखा हैं कि अच्छाई या बुराई संसार में किसी वर्ग विशेष के लोगों में ही नहीं होती हैं और प्रेम विवाह के बन्धन में बंधने के लिए जाति और वर्ग की समानता नहीं देखी जाती हैं–

असाधुता नास्ति च साधुतात्र वा
विशिष्टवर्गस्य नरेषु निश्चिता।
अपेक्ष्यते नैव च जातिवर्गयोः
समानता प्रेमविवाहबन्धने।।[2]

9. अन्तर्जातीय विवाह – जब कोई व्यक्ति अपनी जाति से बाहर किसी अन्य जाति की कन्या या पुरुष से विवाह करता हैं तो उसे अन्तर्जातीय विवाह कहते हैं।

शास्त्रों का ऐसा मत हैं कि अन्तर्जातीय विवाह धर्म विरुद्ध होता हैं। इस तरह के विवाह से जो संतान उत्पन्न होती हैं वह वर्णसंकर संतान होती हैं। वर्णसंकर संतान कुल का नाश करके नर्क में ले जाने का कारण बनती हैं। वर्णसंकर संतान को पितरों का तर्पण, पिण्डदान करने का अधिकारी नहीं माना गया हैं क्योंकि इनके द्वारा किया गया तर्पण और पिण्डदान पितर स्वीकार नहीं करते हैं।

वर्णसंकर के विषय में महाभारत के अनुशासनपर्व के उपपर्व दानधर्मपर्व के अध्याय अड़तालीस में उल्लेख मिलता हैं कि धन पाकर या धन के लोभ में आकर अथवा कामना के वशीभूत होकर जब उच्च वर्ण की स्त्री नीच वर्ण के पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर लेती हैं, तब वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होती हैं–

अर्थाल्लोभद् वा कामाद् वा वर्णानां चाप्यनिश्चयात्।
अज्ञानाद् वापि वर्णानां जायते वर्णसङ्करः।।[3]

वर्णसंकर के सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय अर्जुनविषादयोग नामक अध्याय में लिखा है कि पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और हे वार्ष्णेय! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता हैं–

---

1. गौत्तम धर्मसूत्र–1/4/8
2. भीष्मचरितम्–9/31
3. महाभारत–अनुशासनपर्व–दानधर्म पर्व–48/1

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।।[1]

वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने के लिए ही होता हैं। लुप्त हुई पिण्ड और जल की क्रिया वाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पण से वञ्चित इनके पितर लोग भी अधोगति को प्राप्त होते हैं–

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदक क्रियाः।।[2]

इन वर्णसंकर कारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल–धर्म और जाति–धर्म नष्ट हो जाते हैं–

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्कर कारकैः।

उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।।[3]

महाभारत की कथा में क्षत्रिय होकर भी राजा शान्तनु ने मछुवारे की कन्या सत्यवती से विवाह किया था और यह विवाह अन्तर्जातीय विवाह था। इसी महाभारतीय विवाह का उल्लेख कवि दीक्षित जी ने किया हैं। किन्तु अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में कवि लिखते हैं कि शत्रुता, मित्रता और विवाह सम्बन्ध ये तीनों ही समान स्तर के लोगों में अच्छे रहते हैं–

समस्तदेशस्य नृपः क्व शान्तनुः
दरिद्रदाशस्य सुता क्व निर्धना।
सुते! विवाहो रिपुता च मित्रता
समस्तरेष्वेव जनेषु शोभते।।[4]

यदि विषम स्तर के लोगों में विवाह सम्बन्ध हो जाता हैं, तो भविष्य में कलह भी होता हैं। इसीलिए बुद्धिमान लोग हमेशा ही समान स्तर के लोगों में ही विवाह सम्बन्ध करने की संस्तुति तथा प्रशंसा करते हैं–

भवेद्विवाहो विषमस्तरेषु चेत्
तदा भविष्ये कलहोऽपि जायते।
अतः प्रशंसन्ति सदा सुधीजनाः
समस्तरेष्वेव विवाहबन्धनम्।।[5]

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता–1/41
2. तत्रैव–1/42
3. तत्रैव–1/43
4. भीष्मचरितम्–9/23
5. तत्रैव–9/24

पति और पत्नी यदि समान स्तर के होते हैं, तो वे इस समाज में हमेशा ही सुखी रहते हैं। उन दोनों को न तो कोई शारीरिक यातना झेलनी पड़ती हैं और न कोई मानसिक वेदना–

समस्तरौ चेद् भवतश्च दम्पती
तदा सुखं नित्यमवाप्नुतोऽत्र तौ।
तयोः कृते कापि शरीरयातना
न जायते कापि च चित्तवेदना।।[1]

उपर्युक्त समस्त विचारों को कवि ने सत्यवती के पिता मछुवारे के माध्यम से अभिव्यक्त किया हैं क्योंकि शान्तनु और सत्यवती का विवाह समान स्तर का नहीं था। किन्तु कवि ने सत्यवती के द्वारा अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन कराया हैं। कवि का कथन हैं कि विवाह के लिए वर–कन्या का सामाजिक स्तर महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। बल्कि दोनों के चित्त के स्तर की समानता ही उन दोनों को सुखी रखती हैं–

मतेन मे तात! विवाहहेतवे
महत्त्वपूर्णं नहि वर्त्तते स्मरम्।
अहं तु मन्ये वरकन्ययोः कृते
सुखानि सूते समचित्तता तयोः।।[2]

अन्तर्जातीय विवाह के समर्थन में कवि आगे निरूपण करते हुए लिखते हैं कि यदि पति–पत्नी समान चित्तवाले होते है तो वे दोनों हमेशा एक–दूसरे से प्रेम करते रहते है। इसलिए उन दोनों में से किसी को भी कभी कोई शारीरिक या मानसिक वेदना नहीं भोगनी पड़ती हैं–

समानचित्तौ यदि दम्पती तदा
परस्परं तावनुरज्यतस्सदा
अतस्तयोरन्यतरेण केनचित्
न भुज्यते कापि कदापि वेदना।।[3]

वर्तमान काल में विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं में अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। रूढ़िवादी मानसिकताओं के प्रति विद्रोह के स्वर मुखर होते जा रहे हैं। विवाह भी इससे अछूता नहीं रहा हैं। अन्तर्जातीय विवाह विगत दो–तीन दशकों से सामाजिक स्तर पर

---

1. भीष्मचरितम्–9/25
2. तत्रैव–9/29
3. तत्रैव–9/30

अधिकाधिक स्वीकार्य होता जा रहा हैं। किन्तु अनेक अवसरों पर अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्धों को सामाजिक विरोध और बहिष्कार का सामना भी करना पड़ता हैं। समाज के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से प्रताड़ित युगल नकारात्मकता का शिकार हो जाते हैं और कभी–कभी तो आत्म हनन को उद्यत हो जाते हैं।

सरकार ने भी अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा देने के लिए अन्तर्जातीय विवाह प्रोत्साहन योजना चला रखी हैं जिसके कारण वर्तमान में ऐसे विवाहों को मान्यता मिलने लगी हैं।

10. भ्रष्टाचार – भ्रष्टाचार से आशय है कि अनैतिक तरीकों का उपयोग कर दूसरों से कुछ लाभ प्राप्त करना भ्रष्टाचार कहलाता हैं। हमारे देश में भ्रष्टाचार उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक सभी में व्याप्त हैं। इसका सम्बन्ध किसी के द्वारा अपनी शक्ति और पद का गलत उपयोग करना है, फिर चाहे वो सरकारी या गैर–सरकारी संस्था हो। इसका प्रभाव व्यक्ति के विकास के साथ ही राष्ट्र पर भी पड़ता हैं और यही समाज और समुदायों के बीच असमानता का बड़ा कारण हैं। भ्रष्टाचार के कारण समाज में आज भी एक लम्बी खाई बनी हुई है।

कवि दीक्षितजी ने अपने वर्णन चातुरी से महाकाव्य में भ्रष्टाचार रूपी जहर का वर्णन करते हुए लिखा हैं कि प्रजा को अपना काम बनाने के लिए राजकर्मचारियों को रिश्वत देकर अपने अनुकूल नहीं बनाना चाहिए। रिश्वत रूपी जहर को प्रयोग में लाने वाले लोग न तो राज्य का भला करते हैं और न राजा का–

उत्कोचदानेन न कर्मचारिणः
स्वकार्यसिद्ध्यै जनतानुकूलयेत्।
उत्कोचहालाहलसेविनो जनाः
राज्यस्य राज्ञश्च हितं न कुर्वते।।[1]

भ्रष्टाचार का एक अन्य उदाहरण देते हुए दीक्षित जी लिखते हैं कि हमारे देश में लोभ के वशीभूत व्यापारी वर्ग वस्तुओं का मनमाना दाम बढ़ा देते हैं इसको रोकने के लिए भारत सरकार ने पूरे देश में जी.एस.टी. (वस्तुएँ और सेवाएँ कर) को लागू किया हैं जिससे पूरे देश में वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य एक रहे। दीक्षित जी ने व्यापारियों द्वारा दाम वृद्धि किए जाने पर प्रहार करते हुए लिखते हैं कि व्यापारियों को लोभ के वशीभूत होकर अपनी विक्रय वस्तुओं का मूल्य नहीं बढ़ाना चाहिए। व्यापार का उद्देश्य लोगों को जीवनोपयोगी वस्तुओं को प्राप्त करने में सुविधा प्रदान करना चाहिए न कि उनके धन को लूटना–

1. भीष्मचरितम्–18 / 20

व्यापारिणो लोभपिशाचमोहिताः

भूत्वा च कुर्युर्नहि मूल्यवर्धनम्।

भवेज्जनेभ्यः सुविधासमर्पणं

व्यापारलक्ष्यं न जनार्थंलुण्ठनम्।।[1]

इसी संदर्भ में कवि ने मिलावट करने वाले व्यापारियों पर भी करारा (तीव्र) व्यङ्ग्य किया हैं वे वर्णन करते हैं कि बनियों को धन बटोरने के चक्कर में पड़कर न तो अपनी विक्रय वस्तुओं में कोई मिलावट करनी चाहिए और नापतौल में भी धोखाधड़ी नहीं करनी चाहिए। अधर्मपूर्वक कमाई हुई और लोगों को हानि पहुँचाकर बढ़ाई गई दौलत, कमाने वाले के घर में बहुत बड़े अनर्थ को जन्म देती हैं–

न मिश्रणं नापि तुलाप्रवञ्चनं

समाचरेयुर्वणिजो धनोत्सुकाः।

अर्थोऽप्यधर्म्यो जनहानिवर्धितः

सूते कुलेऽनर्थमनल्पमाविलम्।।[2]

कवि ने आगे लिखा हैं कि कार्यालयों में काम करने वाले लोगों को न तो घूसखोर होना चाहिए और न ही अपने काम में नासमझ। सरकारी नौकरी जनता को सताने के लिए नहीं वरन् उसका उद्देश्य जनता की सेवा करना होता हैं–

कार्यालयीया नच कर्मचारिणो

लुभ्यन्तु मुह्यन्तु नचापि कर्मणि।

प्रजार्तये नो नृपकर्मचारिता;

लक्ष्यं हि तस्या जनतोपसेवनम्।।[3]

वर्तमान समय में रिश्वत लेना व देना लोगों में आम बात हो चुकी हैं। अगर व्यक्ति रिश्वत न दे तो कार्यालयों के चक्कर लगाते–लगाते थक जाता हैं। आखिर में उसको रिश्वत देने के लिए विवश होना ही पड़ता हैं। यद्यपि हर परिस्थिति में ऐसा नहीं होता हैं किन्तु भ्रष्टाचार आज हमारी आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक सभी व्यवस्थाओं में अभिव्याप्त हैं।

---

1. भीष्मचरितम्–18/31
2. तत्रैव–18/32
3. तत्रैव–18/35

11. कृषि को प्रोत्साहन – हमारे देश में प्रायः कृषि कर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है जबकि कृषक ही समस्त राष्ट्र के अन्नदाता है। अन्न के बिना मानव का जीवन ही असम्भव है क्योंकि अन्न से ही जीवन शक्ति मिलती है। दीक्षित जी ने कृषि कार्य हेतु किसानों को भी प्रोत्साहित किया हैं। उनका कथन हैं कि किसानों को हीनभावना त्यागकर अपने कृषि कार्य में हमेशा ही परिश्रमपूर्वक लगे रहना चाहिए। ताकि जनता को अन्न के लिए परेशान न होना पड़े। मनीषियों ने सभी के प्राणों को अन्नमय बताया हैं–

स्वकीयकार्ये च विहाय हीनतां
श्राम्यन्तु नित्यं कृषकास्तथाखिलाः।
नान्नाय पीडां जनता यथाप्नुयात्
प्राणा मता अन्नमया मनीषिभिः।।[1]

12. राजकर व आयकर – आयकर से आशय हैं कि वह कर जो सरकार को लोगों की आय में से होता हैं। आयकर सरकारों के क्षेत्राधिकार के भीतर स्थित सभी संस्थाओं द्वारा उत्पन्न वित्तीय आय पर लागू होता है। कानून के अनुसार प्रत्येक व्यवसाय और व्यक्ति कर देने या एक कर वापसी के लिए पात्र हैं और उन्हें प्रत्येक वर्ष एक आयकर रिटर्न फाइल करना होता हैं। आयकर धन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं जिसे सरकार अपनी गतिविधियों से जनता की सेवा करने के लिए उपयोग करती हैं।

कवि ने अपने महाकाव्य के अठाहरवें सर्ग में राजकर विषयक तथ्यों का समावेश करते हुए लिखा हैं कि राजा के खजाने की वृद्धि के लिए राजा द्वारा निर्धारित किए गए राजकर (टैक्स) को प्रजा प्रसन्नतापूर्वक जमा करे। राजकरों द्वारा राज्य की उन्नति की जाती हैं अर्थात् भाव यह हैं कि राजकर जमा कराने में आलस्य व हेराफेरी नहीं करनी चाहिए–

स्वभूपकोशस्य च वृद्धिहेतवे
निर्धारितं राजकरं मुदार्पयेत्।
कुर्यात्प्रमादं न न तत्र वञ्चनां
राज्योन्नती राजकरैर्विधीयते।।[2]

वर्तमान में प्रत्येक देश की सरकार अपने नागरिकों से उसकी आय का एक हिस्सा आयकर के रूप में लेती हैं जिससे वह देश के विकास कार्य व नागरिकों की बुनियादी जरुरतों

1. भीष्मचरितम्–18/33
2. तत्रैव–18/19

को पूरा करती हैं। यही कारण हैं कि आयकर की चोरी करने के बजाय, हमें देश के विकास में अपना योगदान आयकर चुका कर करना चाहिए।

13. राष्ट्रीय भावना – कवि ने अपनी कल्पना शक्ति से महाकाव्य में अपने वर्णन की कुशलता से राष्ट्रीय भावना को भी निःस्यूत किया हैं। यद्यपि राष्ट्रीय भावना का निरूपण शान्तनु के राज्य शासन के सन्दर्भ में किया हैं। किन्तु यह प्रसंग वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं। कवि का कथन हैं कि राजा को कभी भी अपने सेवकों तथा कर्मचारी अधिकारियों से हास परिहास नहीं करना चाहिए, क्योंकि हास–परिहास से राजा की प्रतापरूपी अग्नि विनष्ट हो जाती हैं।[1] राजा को अपने राष्ट्र के तथा राष्ट्र में रहने वाले लोगों के योग–क्षेम (कल्याण) के लिए सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए। राष्ट्र की सेवा को ईश्वर की पूजा माना जाता हैं और प्रजा ईश्वर के शरीर से उत्पन्न होती हैं।[2] राजा को चाहिए कि वह अपने अहंकार की आग में राष्ट्र को नहीं जलाए और कुनीति की नागिन को कभी भी नहीं अपनाए।[3]

राष्ट्रीय भावना के संवर्धन हेतु दीक्षित जी लिखते हैं कि जो राष्ट्रीय संस्कृति का पोषण करने वाले और राष्ट्रप्रेम का पाठ पढ़ाने वाले विद्वान् हो तथा जो अपने प्रति अर्थात् राजा के प्रति निष्ठा रखने वाले हों, ऐसे सभी लोगों का संवर्धन राजा को करना चाहिए–

राष्ट्रस्य ये संस्कृतिपोषका बुधाः
राष्ट्रानुरागस्य च पाठपाठकाः।
निजे च ये दर्शितभक्तयो जनाः
संवर्धतेत्तानखिलान् महीपतिः।।[4]

राजा अपने राज्य की रक्षा–सुरक्षा करने में अनुराग रखने वाले व्यक्तियों को तथा शासनतन्त्र में सहायता करने वाले व्यक्तियों को यथोचित सम्मान, पुरस्कार और वेतनवृद्धि के द्वारा प्रसन्न करना चाहिए–

राजस्य रक्षाकरणेऽनुरागिणः
तथा व्यवस्थाकरणे सहायकान्।
मानेन दानेन सुवेतनेन च
सम्प्रीणयेत् कीर्तिकरो गुणादरः।।[5]

---

1. भीष्मचरितम्–17/16
2. तत्रैव–17/26
3. तत्रैव–17/28
4. तत्रैव–17/37
5. तत्रैव–17/38

राजा को राज्य की सम्पूर्ण जानकारी जैसे कहाँ क्या हो रहा हैं? कहाँ कौन क्या कर रहा हैं? शत्रु के गुप्तचर इस समय कहाँ हैं? और वे क्या कर रहे हैं? आदि को ध्यान में रखते हुए अपने राज्य की रक्षा–सुरक्षा करनी चाहिए–

क्व जायते किम्? क्व च केन कथ्यते?
परस्य चाराः क्व? किमाचरन्ति च?
इदं समस्तं खलु भूपतिः सदा
विद्याच्च कुर्यान्निजराज्यरक्षणम्।।[1]

राजा को अपने राज्य में व्यापार की वृद्धि के लिए कल्याणकारिणी अर्थशास्त्रीय नीति का आश्रय लेकर व्यापारियों का भी संवर्धन करना चाहिए। ताकि प्रजा द्वारा वाञ्छित सभी खाद्य एवं उपभोज्य वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध हो सकें–

शुभार्थशास्त्रीयनयाश्रितो नृपो
व्यापार–वृद्ध्यै वणिजोऽपि वर्धयेत्।
सर्वाणि खाद्यानि जनेप्सितानि च
भोग्यानि वस्तूनि यथा स्युरापणे।।[2]

राजा को अपने राज्य में अच्छी सड़के बनवाना चाहिए और उन सड़कों में लूट–मार करने वाले को कठोर सजा देनी चाहिए। ताकि सभी भयरहित होकर यातायात कर सके–

निर्मापयेन्द्राजपथांश्च सर्वतः
प्रदण्डयेत्तत्र च पारिपन्थिकान्।
गतागते येन समस्तमानवाः
सुखेन कुर्युर्गतदस्युभीतयः।।[3]

राजा को धर्मानुसार अपने राज्य में यथोचित स्थानों पर बावड़ी, कुआँ, सरोवर, पूजागृह, भोजनालय, उद्यान आदि के निर्माण द्वारा सुख–सुविधा में वृद्धि करके अपनी प्रजा को सुखी रखे तथा तीर्थ–स्थानों एवं पर्यटन–स्थलों को आनन्ददायी बनाए–

सर्वत्र राज्ये निजपूर्तकर्मभिः
कल्याणवृद्ध्या सुखयेन्निजाः प्रजाः।

---

1. भीष्मचरितम्–17/39
2. तत्रैव–17/40
3. तत्रैव–17/41

तीर्थेषु गम्यप्रकृतिस्थलेषु च
प्रबन्धतन्त्रं रचयेत्सुखावहम्।।[1]

कवि राष्ट्र के विकास के लिए लिखते हैं कि राजा देशानुराग की आग को उद्दीप्त करने वाली लोककलाओं में लोगों के कौशल को प्रोत्साहित करना चाहिए। हमारे पुरातन मनीषी अपने देश की लोककलाओं में देश की आत्मा का निवास मानते हैं–

देशानुरागानलदीपिकास्वलं
प्रोत्साहयेल्लोककलासु कौशलम्।
देशात्मवासं सुधियः पुरातनाः
स्वकीयदेशीयकलासु मन्वते।।[2]

कवि का कथन हैं कि पालनीय व्यक्तियों का पालन करता हुआ और सभी दण्डनीय व्यक्तियों को न्यायपूर्वक दण्डित करता हुआ तथा अपनी समस्त प्रजा के लिए सुख–सुविधाएँ उपलब्ध कराता हुआ राजा अपनी प्रजा में निश्चय ही प्रभावशाली हो जाता हैं–

तत्पालनीयान् परिपालयन्नृपः
दण्ड्यानशेषानपि दण्डयंस्तथा।
कल्याणकार्याण्यखिलप्रजाकृते
नयेन कुर्वन् भवति प्रभाववान्।।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के द्वारा कवि ने राष्ट्र के उत्थान के लिए राजा के कर्त्तव्यों एवं नीतियों का उल्लेख किया हैं जो कि लोकतन्त्र में भी प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हैं।

14. सामाजिक वर्ग विषमता का अभाव – सामाजिक वर्ग विषमता का अभाव से तात्पर्य यह हैं कि समाज या वर्ग विशेष में कोई भेदभाव नहीं हो। कवि ने अपने महाकाव्य में राजा शान्तनु के राज्य शासन में उल्लिखित वर्ग विषमता के अभाव का चित्रण इस प्रकार किया हैं। कवि का कथन हैं कि शान्तनु के राज्य में न जातिवाद था न वर्गवाद (सम्प्रदायवाद) था, न ऊँच–नीच का भेदभाव था और न आतंकवाद का अधिकार था–

न जातिवादो न च वर्गभावना
न वोच्चनीचादिविभेदवेदना।

1. भीष्मचरितम्–17 / 42
2. तत्रैव–17 / 43
3. तत्रैव–17 / 49

बभूव नातङ्किजनस्य वन्दना

महीयसी शान्तनुनीतिदेशना।।[1]

कवि ने वर्ग विषमता के अभाव का प्रतिपादन करते हुए उल्लेख किया हैं कि शान्तनु के शासनकाल में सभी लोग अपने–अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए खुश रहते थे–

निजे निजे कर्मणि सर्वमानवाः

तदा प्रवृत्ता अभवन्मुदान्विताः।।[2]

वर्ग विषमता जातिगत भेदभाव व छुआछूत को लेकर हमारे देश में न केवल समय–समय पर अनेक सामाजिक आन्दोलन हुए बल्कि विभिन्न स्तरों पर भी समरस समाज बनाने के लगातार अनेक प्रयास होते रहे हैं। लेकिन आज भी भारतीय समाज में जातिगत छुआछूत व भेदभाव का यह जहर लोगों के मन मस्तिष्क से बाहर नहीं निकल पाया हैं।

15. राजधर्म – महाभारत के शान्तिपर्व के उपपर्व राजधर्मानुशासन पर्व में राजधर्म का वर्णन प्राप्त होता हैं। **राजधर्म** का अर्थ हैं–**राजा का धर्म या राजा का कर्त्तव्य।**

राजधर्म को महाभारतकार ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है– **"लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।"**[3] अर्थात् प्रजा को प्रसन्न करना राजा का सनातन धर्म हैं।

"निहन्ति बलिन दुष्टं स राज्ञो धर्म उच्यते।"[4] अर्थात् बलवान् अभिमानी दुष्ट को मारना राजधर्म कहलाता हैं।

"पुत्रस्यापि न मृष्येच्च स राज्ञो धर्म उध्यते।"[5] अर्थात् पुत्र के भी अपराध को सहन नहीं करना राजधर्म कहलाता हैं।

"पूजयेदतिधीन् भृत्यान् भृत्यान् स राज्ञे धर्म उच्यते।"[6] अर्थात् अतिथि और सेवकों की पूजा करना राजधर्म कहलाता हैं।

महाभारत में वर्णित राजधर्म के तुल्य ही महाकवि ने अपनी वर्णन प्रतिभा से महाकाव्य में राजधर्म से संबंधित विभिन्न प्रसंगों का सुन्दर वर्णन करते हुए लिखा हैं कि राजा को विपत्तियों का

---

1. भीष्मचरितम्–1/28
2. तत्रैव–1/29
3. महाभारत–शान्तिपर्व–राजधर्मानुशासन पर्व–57/11
4. तत्रैव–91/31
5. तत्रैव–91/32
6. तत्रैव–91/40

विनाश करने वाली अपनी उत्साह सम्पत्ति की हमेशा रक्षा करनी चाहिए। इसके अभाव में उसकी मन्त्रशक्ति और प्रभुशक्ति की सम्पत्तियाँ किसी भी कार्य में सफल नहीं होती हैं–

उत्साहसम्पत्तिमनारतं नृपो
रक्षेत्स्वकीयां विपदां विनाशिनीम्।
इमां विना कर्मसु नैव सिद्ध्यतः
तन्मन्त्रशक्ति–प्रभुशक्तिसम्पदौ।।[1]

राजधर्म के विषय में कवि ने उल्लेख किया हैं कि जिस राजा के राज्य में दूसरे राजा की ओर से आक्रमण होने का भय नहीं हो, चोरी होने का भय नहीं हो, डकैती पड़ने का डर नहीं हो, कर्त्तव्य का लोप नहीं हो और धन का संकट नहीं हो, वह प्रजा द्वारा पूजा जाता हैं–

नाक्रान्तिभीतिः परकीयराज्यतः
न चौर्यभीतिर्न च दस्युताभयम्।
कर्त्तव्यलोपो नच नार्थकृच्छता
यस्यास्ति राज्ये स नृपो महीयते।।[2]

महाकवि ने अपनी वर्णन कुशलता से महाकाव्य के सम्पूर्ण सत्रहवें सर्ग में राजधर्म का विस्तृत वर्णन किया हैं।

16. दीक्षान्त समारोह – दीक्षान्त समारोह से आशय हैं कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद या सीखने की प्रक्रिया की समाप्ति के बाद किया जाने वाला समारोह दीक्षान्त समारोह कहलाता हैं।

प्राचीनकाल में वेदाध्ययन के पश्चात् गुरुकुल से अपने घर प्रत्यावर्तन (लौटने) को 'समावर्तन संस्कार' कहा जाता था। आज विश्वविद्यालयों में जो दीक्षान्त समारोह आयोजित होता हैं वह इसी परम्परा का अनुवर्तन हैं।

राजकुमार देवव्रत की विद्या समाप्ति के पश्चात् दीक्षान्त समारोह का प्रतिपादन कवि ने किया हैं। एक बहुत बड़े भली–भांति सजाए गए, मनोरम सभा–भवन में दीक्षान्त समारोह प्रारम्भ होता है–

ततो भव्ये सभागारे
विशाले भूरि भूषिते।

---

1. भीष्मचरितम्–17/46
2. तत्रैव–17/32

देवव्रतस्य दीक्षान्त–

समारोहः प्रवर्तितः।।[1]

देवव्रत को दीक्षान्तोपदेश देने के लिए सर्वाचार्य नाम वाले महान् तपस्वी ने अपने वक्तव्य में कहा कि सत्य के आचरण को ईश्वर की भक्ति के समान पवित्र समझना क्योंकि सत्य ईश्वर में रहता हैं और ईश्वर सत्य में–

सत्यस्याचरणं पूतं

ज्ञेयमीश्वरभक्तिवत्।

निवसतीश्वरे सत्यं

सत्ये निवसतीश्वरः।।[2]

कवि ने दीक्षान्तोपदेश के माध्यम से देवव्रत के भावी जीवन, कर्म, कर्त्तव्य, परोपकार आदि नानाविध उपदेशों का सम्पूर्ण तृतीय सर्ग में विस्तृत वर्णन किया हैं।

17. मोक्षधर्म– मोक्षधर्म का अभिप्राय हैं कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति को वन में जाकर तप करना ही मोक्ष कहलाता हैं।

महाभारत के शान्तिपर्व के उपपर्व मोक्षधर्मपर्व में महाभारतकार ने मोक्षधर्म को इस प्रकार प्रतिपादित किया है कि जो योगी प्रतिदिन नियत समय तक अकेला एकान्त स्थान में बैठकर भली–भाँति नियमों के पालनपूर्वक इस प्रकार योगाभ्यास करता हैं, वह अक्षर ब्रह्म की समता को प्राप्त हो जाता हैं–

एवं परिमितं कालमाचरन् संशितव्रतः।

आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसात्मताम्।।[3]

कवि दीक्षितजी ने अपने महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग में मोक्षधर्म विषयक प्रसंगों का वर्णन महाभारत के समान किया हैं। कवि ने लिखा हैं कि साधक को अपने हृदय में आत्मतत्त्व के प्रकाशित होने का अनुभव होते ही मोक्ष पाने के लिए दीक्षा लेनी चाहिए। फिर सभी सांसारिक भावों को त्यागते हुए उसे अपने सम्पूर्ण मोक्ष के लिए परिव्राजक बनना चाहिए–

---

1. भीष्मचरितम्–3/1
2. भीष्मचरितम्–3/31
3. महाभारत–शान्तिपर्व–मोक्षधर्म–240/22

प्रकाशमाने हृदि चात्मतेजसि
मोक्षाय दीक्षामुररीकरोतु सः।
संसारभावानखिलान् परित्यजन्
परिव्रजेत् पूर्णविमुक्तिहेतवे।।[1]

कवि ने मोक्ष प्राप्ति के हेतुओं का वर्णन इस प्रकार किया हैं कि तृष्णा का विनाश, वैराग्य की भावना, त्याग की प्रवृत्ति, समदर्शिता, निष्काम कर्मयोग और तत्त्व का अनुचिन्तन ये सभी मिलकर मोक्ष प्राप्ति के कारण हैं–

तृष्णाविनाशश्च विरागभावना
त्यागप्रवृत्तिः समदर्शिता तथा।
अकामकर्माणि च तत्त्वचिन्तनं
मोक्षोपलब्धावुपयान्ति हेतुताम्।।[2]

18. बालक्रीड़ा – कवि ने अपने वर्णन की कुशलता से देवव्रत की बाल–लीलाओं का भी चित्रण किया है। यद्यपि संस्कृत साहित्य में बाललीला का वर्णन कम ही कवियों ने किया है। किन्तु कवि ने महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में बालक्रीड़ा का निरूपण किया है– राजकुमार की मनोहारिणी बाललीलाओं से सम्पूर्ण राजमहल धीरे–धीरे सुखी हो गया। महल उसी प्रकार चमक उठा जिस प्रकार चन्द्रमा से आकाश चमक उठता हैं।[3] राजकुमार उज्ज्वल मणियों से बने हुए फर्श रूपी दर्पण पर गिरते हुए अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने का बारम्बार प्रयास करता किन्तु पकड़ने में सफल नहीं हो पाता था। राजकुमार की यह लीला देखने वालों के चित्त आनन्द की सृष्टि करता था–

मणिविनिर्मितकुट्टिमदर्पणे
निपतितं प्रतिबिम्बमसौ निजम्।
परिजिघृक्षुरनीश्वरतां व्रजन्
परममोदकरोऽभवदर्भकः।।[4]

जब महल के पालतू मोर अपने नृत्य से राजकुमार का मनोरंजन करते थे, उस समय वह राजकुमार विद्वानों के मन में भगवान शंकर के पुत्र कार्तिकेय की याद को ताजा कर देता था।[5]

---

1. भीष्मचरितम्–19/28
2. तत्रैव–19/38
3. तत्रैव–2/16
4. तत्रैव–2/17
5. तत्रैव–2/18

राजकुमार देवव्रत कभी–कभार महल के पालतू हंसों के साथ तरह–तरह के खेल किया करता था। वह न तो रोता था और न जिद करता था, बल्कि सभी परिजनों को प्रसन्न किए रहता था। कवि कृत वर्णन इस प्रकार है–

भवनपालितहंसगणेन सः,
बहुविधं रमते स्म यदा कदा।
न रुदितं न हठं च चकार सः,
परिजनानखिलान्समतोषयत्।।[1]

इस प्रकार हम देखते है कि कवि ने देवव्रत की बाललीलाओं का सुन्दर चित्रण अपने वर्णन कौशल से किया है।

19. प्रजाधर्म – कवि ने अपनी वर्णन चातुर्य से प्रजाधर्म से सम्बन्धित नवीन नीतियों का निरूपण अपने महाकाव्य के अठाहरवें सर्ग में किया है जो वर्तमान समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है– प्रजा का पहला धर्म है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को राजा बनाए जिसके शासन में सुख–शान्तिपूर्वक प्रजा जीविकापार्जन कर सके।[2] प्रजा को अपना काम बनाने के लिए राजकर्मचारियों को रिश्वत नहीं देनी चाहिए। रिश्वत–रूपी जहर को प्रयोग में लाने वाले लोग न तो राज्य का और न ही राजा का भला करते हैं–

उत्कोचदानेन न कर्मचारिणः
स्वकार्यसिद्ध्यै जनतानुकूलयेत्।
उत्कोचहालाहलसेविनो जनाः
राज्यस्य राज्ञश्च हितं न कुर्वते।।[3]

कवि ने प्रजा के कर्त्तव्यों को अपनी वर्णन कुशलता से चित्रित किया है कि सभी प्रजाजनों को अपने देश के त्यौहारों, तीर्थस्थानों, पूजाघरों, विद्यालयों, देवालयों, नदियों, पर्वतों और वनों पर श्रद्धा रखनी चाहिए। ऋषि, मुनियों ने इनमें देश की आत्मा का निवास माना हैं।[4] विद्यार्थियों को गुरुभक्ति के साथ–साथ अपने अध्ययनावधि में हमेशा जितेन्द्रिय भी होना चाहिए, तथा अध्ययनावधि में उन्हें शासन और समाज के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए–

छात्रैः पठद्भिर्गुरुभक्तिपूर्वकं
सर्वत्र भाव्यं विजितेन्द्रियैः सदा।
समाजकार्येषु च राजकर्मसु
तैरन्तरायो न करेलिमस्तदा।।[5]

1. भीष्मचरितम्–2 / 19
2. तत्रैव–18 / 10
3. तत्रैव–18 / 20
4- तत्रैव–18 / 37
5. तत्रैव–18 / 22

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि कवि ने प्रजा के कर्त्तव्यों का सुन्दर चित्रण अपने वर्णन कौशल से किया है। कवि का यह वर्णन प्रजा को अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहने के लिए प्रेरित करता है।

20. विविध दीव्यास्त्र – पाँचवें सर्ग में कवि ने परशुरामजी के द्वारा देवव्रत को धनुर्वेद की शिक्षा प्रदान करने का उल्लेख किया हैं जो कि कवि के वर्णन चातुरी का अद्‌भुत निदर्शन हैं। कवि ने धनुर्वेद के अन्तर्गत अनेक शस्त्रों का उल्लेख किया हैं। सर्वप्रथम परशुरामजी ने देवव्रत को गणेशास्त्र की शिक्षा दी। तत्पश्चात् शक्तिबाण की शिक्षा दी जिससे दुर्गा ने शुम्भ–निशुम्भ नामक दानव का विनाश किया था। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से शस्त्रों की शिक्षा दी जिनका विवरण इस प्रकार हैं–

1. **वारुणास्त्र–**इस अस्त्र के चलाने से शत्रुओं पर बहुत तेज और भयंकर जलवृष्टि होती हैं।
2. **समीरणास्त्र–**इससे युद्धभूमि में शत्रुओं की गज–सेनाओं और अश्वसेनाओं को धराशायी करने वाली प्रलयकाल जैसी आँधियाँ चलने लगती हैं।
3. **सर्पास्त्र–**यह शत्रु–सेना पर साँपों की वर्षा करने वाला अस्त्र हैं।
4. **मयूरास्त्र –** ये अस्त्र 'सर्पास्त्र' को शान्त करता हैं क्योंकि संसार में मयूर स्वभाव से ही साँपों के शत्रु और भक्षक होते हैं।
5. **निशास्त्र –** इसके प्रयोग से दिन में भी पक्षि–शक्तिनाशिनी रात होती हैं।
6. **ऐन्दवास्त्र –** यह अन्धकार को नष्ट करने वाला चमकीला अस्त्र हैं।
7. **आग्नेयास्त्र** – यह शत्रुओं को जलाकर भस्म करने वाला हैं।
8. **ऐन्द्रास्त्र –** इसको चलाने से शत्रुओं पर तेजी से इन्द्र के वज्र के समान बाण गिरते हैं।
9. **वैष्णवास्त्र –** इसके प्रयोग से चक्राकार बाण शत्रुओं के चारों ओर चलने लगते हैं।
10. **यमास्त्र –** इसको संसार का संहारक बताया हैं, इसका प्रयोग कभी व्यर्थ नहीं होता।
11. **रौद्रास्त्र –** इसके प्रयोग से शत्रु पराजित हो जाता हैं और जिसकी कोई 'काट' नहीं हैं।
12. **ब्रह्मास्त्र –** ब्रह्मा ने अथर्ववेद का स्वाध्याय करके इसका निर्माण किया था और इससे सभी देव–दानव शिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।

इसके अलावा अगस्त्य, विश्वामित्र और गुरु वशिष्ठ ने जो सम्पूर्ण अस्त्र रामचन्द्र को सिखाये थे उन अस्त्रों को परशुरामजी ने सिखाकर देवव्रत को सौंप दिया–

अगस्त्यनाम कुशिकात्मजस्तथा
गुरुर्वसिष्ठो वसुधाकुटम्बिने।
प्रियाय रामाय ददुः शरांश्च यान्
अदाद्गुरुस्तानपि राजसूनवे।।[1]

1. भीष्मचरितम्–5/22

अपने शिष्य की पढ़ने में अद्भुत प्रवीणता को देखकर परशुरामजी का मन सदैव प्रसन्न रहता था। राजकुमार देवव्रत जब धनुर्वेद की सभी विशेषताओं में पारङ्गत हो गये तब परशुरामजी ने उनसे कहा कि अब तुम्हें अपने पिता की सेवा करनी चाहिए।

विद्यासमाप्ति के पश्चात् जब देवव्रत ने गुरु को गुरु दक्षिणा देने का विचार किया तो देवव्रत को सद् विद्यादान के समान कोई वस्तु नजर नहीं आयी। देवव्रत के विचार को सुनकर परशुरामजी ने कहा तुमने जो मेरी सेवा की हैं, उससे बड़ी कोई गुरु–दक्षिणा नहीं हैं–

इति बुवन्तं तमुवाच शिक्षको
न चिन्तनीयं गुरुदक्षिणाकृते।
ममात्र सेवा वसता त्वया कृता
गरीयसी कापि ततो न दक्षिणा।[1]

परशुरामजी अपने अन्तिम आशीर्वचन में कहते हैं कि आज मैं अपने आशीर्वाद से तुम्हारे बाण में एक और उत्कृष्ट विशेषता उत्पन्न कर देता हूँ, जिसके प्रभाव से तुम्हारें बाण युद्धभूमि में क्रमानुसार संख्या में बढ़ते रहेंगे।

इस प्रकार दीक्षित जी ने अपने वर्णन कौशल से विविध अस्त्रों का वर्णन किया हैं जिसका सन्दर्भ महाभारत के उद्योगपर्व में उपलब्ध होता हैं। कविकृत अस्त्रों का वर्णन अद्भुत हैं।

कवि ने अपने वर्णन की कुशलता से इतिवृत्त के तत्त्वों जिसका कि सभी काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के लक्षणों में उल्लेख किया हैं जैसे पर्वत, समुद्र, नगर, ऋतु, सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उपवनविहार, जलक्रीड़ा, मधुसेवन, सम्भोग आदि का अपनी कल्पना शक्ति से अद्भुत सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया हैं। जिसका उल्लेख चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दीक्षित जी ने अपनी वर्णन कुशलता से समाज में व्याप्त समसामयिक समस्याओं को उजागर किया है तथा वर्तमान समस्याओं पर तीक्ष्ण प्रहार किया हैं जो अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

---

1. भीष्मचरितम्–5/37

(iii) पूर्व कवियों का प्रभाव व उत्तरकाल को कवि की देन

साहित्य और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध होता हैं। कोई भी साहित्यकार देश, काल, समाज, धर्म एवं दर्शन से अभिप्रेरित होकर ही साहित्य सृजन कार्य में प्रवृत्त होता हैं। देश व समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का साहित्यकार के ऊपर भी प्रभाव पड़ता हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों से प्रभावित हो वह साहित्य सृजन के कर्म में प्रवृत्त होता हैं और काव्य की सर्जना करता हैं। मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य के उद्‌भव के हेतु इस प्रकार बताए हैं–

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्‌भवे।।[1]

आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन हेतु बताए हैं– शक्ति, निपुणता और अभ्यास। तीनों को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट का वक्तव्य हैं कि कवितत्व बीजभूत संस्कार विशेष प्रतिभा 'शक्ति' कहलाती हैं जिसके बिना काव्य की रचना नहीं होती हैं अथवा रचना हो जाने पर उपहास योग्य होती हैं। 'शक्ति' का अर्थ–प्रतिभा अथवा नित्यनवोन्मेषशालिनी बुद्धि प्रतिभा मता। कवि में एक सहज शक्ति होती हैं जिसके कारण कवि ह्रदय में कविता के भावों का उद्‌भव होता हैं। 'निपुणता' का तात्पर्य हैं कि लोकशास्त्र व काव्यादि के परीक्षण तथा अनुशीलन से जो निपुणता प्राप्त होती हैं वह भी काव्य निर्माण में तथा काव्य के उत्कर्ष के हेतु हैं। 'अभ्यास' का अभिप्राय हैं जो काव्य की रचना व विवेचना करना जानते हैं उनके उपदेशानुसार रचना की प्रवृत्ति को अभ्यास कहते हैं। इस काव्य हेतु में मम्मट ने जो निपुणता और अभ्यास दोनों हेतुओं को प्रतिपादित किया हैं इन्हीं दो हेतुओं से प्रत्येक कवि अपने से पूर्ववर्ती काव्यों के निरीक्षण–अनुशीलन और अभ्यासादि से प्रभावित होता हैं और उसका प्रभाव उसके काव्य में भी दृष्टिगोचर होता हैं। यही कारण हैं कि प्रत्येक कवि अपने से पूर्व के कवियों से कुछ न कुछ सामग्री का आहरण करता हैं और आने वाले युग को भी नवीन सामग्री उपलब्ध कराता हैं। कवि अपनी कवित्व बीजभूत संस्कार विशेष प्रतिभा से विलक्षण साहित्य रूपी फल की सर्जना करता हैं।

कवि ने अपने महाकाव्य में अपने से पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों से बहुत सी सामग्री (मनोभावों, दृश्यों) का ग्रहण किया हैं। यह तथ्य (ग्रहण, अनुहरण) विश्व के सभी साहित्य में देखा जा सकता हैं। जिस प्रकार एक ही मिट्‌टी से रस का आहरण करते हुए वृक्ष उद्‌गत होते हैं पर प्रत्येक वृक्ष अपनी–अपनी विशेषता के अनुसार पत्र, पुष्प और फल देते हैं उसी प्रकार प्राचीन

---

1. काव्यप्रकाश–मम्मट–उल्लास, 1/3

साहित्य कवियों के लिए रस आहरण की भूमि होता हैं और वे भी अपनी–अपनी प्रतिभा से विलक्षण साहित्य रूपी फल की सर्जना करते हैं। अतीत से वर्तमान तक का यह संबंध कवियों को एक ओर परम्परा से आबद्ध करता हैं और दूसरी ओर उसी परम्परा का अनुवर्तन करते हुए भविष्य की ओर प्रेरित करता हैं। अतः हम कवि को भूत व भविष्य के बीच में सम्बन्ध को सम्पृक्त करने वाली एक कड़ी के रूप में पाते हैं।

दीक्षित जी के ऊपर भी प्राचीन महाकवियों का प्रभाव दृष्टिगत होता हैं। सर्वप्रथम हम महाकवि कालिदास के प्रभाव को चिन्हित करेगें–

भीष्मचरितम् महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में कवि के ऊपर कालिदास के रघुवंश के सप्तम सर्ग तथा कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता हैं। राजकुमार देवव्रत समस्त विद्याओं को ग्रहण कर राजमहल में आगमन करते हैं। तब राजकुमार को देखने के लिए उत्कण्ठित स्त्रियाँ अपने–अपने काम को छोड़कर निकल पड़ती हैं। राजकुमार को देखने की उत्कण्ठा में नगर की महिलाओं के सारे क्रियाकलाप जल्दबाजी में विपरीत स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं। कवि के इस चित्रण पर कालिदास के रघुवंश और कुमारसम्भव महाकाव्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता हैं। कुमारसम्भव में जब शिवजी नगर में प्रवेश करते हैं। उस क्षण शिवजी के दर्शनार्थ पुर की सभी स्त्रियाँ इतनी उत्कण्ठित हो जाती हैं कि अपने सम्पूर्ण कार्यों को त्याग कर वे अपने–अपने घरो की छतों पर आकर खड़ी हो गई–

तस्मिन् मुहूर्ते पुरसुन्दरीणामीशानसन्दर्शनलालसानाम्।
प्रासादमालासु बभुवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि।।[1]

कोई स्त्री दर्शन की उत्कण्ठावश खिड़की तक पहुँचने की जल्दीबाजी के कारण उसे अपने केशपाश में गुथी हुई माला को बाँधने की भी याद नहीं रही हैं। महाकवि कालिदास का वर्णन अवलोकनीय हैं–

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
बद्धुं न सम्भावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः।।[2]

किसी स्त्री ने पैरों में लगे गीले महावर से ही झरोखों तक के मार्ग को महावर के रस से चिन्हित कर दिया–

1. कुमारसम्भव–7/56
2. तत्रैव–7/57

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान।।[1]

कोई अन्य स्त्री अपनी दाहिनी आँख को काजल से अलंकृत कर बाई आँख में काजल लगाये बिना ही हाथ में शलाका लेती हुई झरोखें के पास चली गयी–

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन सम्भाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसन्निकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती।।[2]

एक अन्य स्त्री शिवजी के दर्शन की उत्कण्ठा में झरोखे की जालियों में जाकर झाँकने लगी त्योंहि उसकी नीवी (साड़ी) की गाँठ खुल गई और वह उसे बिना बाँधे ही साड़ी को हाथ में लेकर खड़ी रही। उस क्षण उसके कंगन में जड़े हुए रत्न की प्रभा उसकी नाभि का आभरण बन गई–

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः।।[3]

कोई स्त्री मेखला को गूँथ रही थी शीघ्रता के कारण मणियों से गूँथी मेखला की मणियाँ इधर–उधर बिखर गयी केवल पैर के अँगूठे पर अटका हुआ डोरा जैसे–तैसे ही शेष रह गया–

अर्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ् गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा।[4]

रघुवंश महाकाव्य के सप्तम सर्ग में भी इन्दुमती स्वयंवर के प्रसंग में ऐसे सादृश्य का चित्रण किया गया हैं। अज को देखने के लिए नगर की सुन्दरियाँ अपना काम छोड़कर महल के सुनहले झरोखों की ओर दौड़ पड़ी–

ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजलावत्सु।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि।।[5]

---

1. कुमारसम्भव–7 / 58
2. तत्रैव–7 / 59
3. तत्रैव–7 / 60
4. तत्रैव–7 / 61
5. रघुवंश–7 / 5

अज को देखने के लिए झरोखों पर शीघ्रता से जाती हुई किसी स्त्री का केश खुल गया, जल्दी में जूड़ा बाँधने की भी उसे सूधि नहीं रही। वह उसे हाथ में पकड़े ही खिड़की पर पहुँच गई। ढीले केशपासों से उसमें गूँथे फूल नीचे गिरते जाते थे–

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
बद्धन सम्भावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः।।[1]

एक स्त्री शृङ्गार करने वाली अपनी दासी से पैरों में महावर लगवा रही थी उसी समय अज के आने की ध्वनि सुनकर गीले महावर वाले पैरों से ही झरोखों की ओर दौड़ पड़ी जिससे झरोखों तक उसके पैर के महावर का लाल–लाल चिन्ह पड़ गया–

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्ताकङ्कां पदवीं ततान।।[2]

एक दूसरी स्त्री ने दाहिनी आँख में काजल लगाकर अज को देखने की जल्दीबाजी में बाई आँख में काजल लगाये बिना ही हाथ में शलाका (सलाई) लिए हुए झरोखों के पास पहुँच गई–

विलोचनं दक्षिणभञ्जनेन सम्भाव्य तद्रञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसन्निकर्ष ययौ शलाकामपरा वहन्ती।।[3]

इसके अतिरिक्त एक अन्य स्त्री झरोखें की ओर देखती हुई जल्दी से चल रही थी कि उसकी साड़ी खुल गई। उसे बिना बाँधे ही हाथ से पकड़ कर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। हाथ के आभूषणों की चमक उसकी नाभि तक पहुँच रही थी–

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वास।।[4]

एक स्त्री बैठी हुई मणियों से करधनी गूँथ रही थी जिसका एक छोर उसने पैर के अँगूठे में बाँध रखा था। वह आधा ही गूँथ पायी थीं कि अचानक अज को देखने के लिए झरोखों की ओर दौड़ पड़ी जिसके कारण सारी मणियाँ इधर–उधर बिखर गयी केवल अँगूठे में सूत बँधा रह गया–

---

1. रघुवंश–7/6
2. तत्रैव–7/7
3. तत्रैव–7/8
4. तत्रैव–7/9

अर्धाञ्चिता सत्त्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।

कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा।।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों के अवलोकनोपरान्त हम पाते हैं कि रघुवंश व कुमार सम्भव के चित्रण में यथायथ सादृश्य दिखायी देता हैं। रघुवंश और कुमारसम्भव के इसी चित्रण का सादृश्य या प्रभाव हम भीष्मचरितम् महाकाव्य में भी पाते हैं। भीष्मचरितम् महाकाव्य में राजकुमार देवव्रत को देखने के लिए सभी लोग, सभी स्त्री–पुरुष उत्कण्ठित होकर स्थान पाने के लिए जल्दीबाजी में प्रयास करने लगे–

कुमार आयात्यनुभूय नागराः
नराश्च नार्यश्च समस्तजातयः।
त्वरान्वितास्तत्प्रविलोकनेच्छया
प्रयेतिरे स्थानमवाप्तुमुत्सुकाः।।[2]

राजकुमार को देखने की उत्कण्ठा में कुशल भोजन बनाने वाली महिला ने शीघ्रतावशात् खीर में नमक और दाल में चीनी डाल दी–

सदा प्रवीणापि सुपाककर्मणि
कुमारसन्दर्शनकृष्टमानसा।
त्वरायुतैका लवणं हि पायसे
न्यपातयत्सूपरसे च शर्कराम्।।[3]

कोई स्त्री राजकुमार को देखने की त्वरिता में करधनी को गले में डालकर तथा फूलों की माला को करधनी में बाँधकर बाहर आ गई–

विधाय कण्ठे रशनां ससम्भ्रमा
स्रजं च काचिद् दधती कटीतटे।
समाप्य शृङ्गारविधिं समागता
बभूव लोकस्मितभाजनं तदा।।[4]

---

1. रघुवंशम–7 / 10
2. भीष्मचरितम्–6 / 28
3. तत्रैव–6 / 29
4. तत्रैव–6 / 30

किसी महिला ने जल्दबाजी में जुड़े में तिलक और माथे पर चूड़ामणि लगा ली और वह तेजी से अपनी खिड़की की ओर दौड़ पड़ी–

तथैव काचित्कचपाशजालके
दधार स्वीयं तिलकं त्वरावती।
चकार चूडामणिमाशु मस्तके
दधाव वातायनसम्मुखी च सा।[1]

अन्य स्त्री ने पैरों में महावर लगाने के काम को अधूरा छोड़कर, खिड़की पर जगह पाने के लिए दौड़ लगाई किसी महिला ने तो साफ–सुथरे फर्श पर सुन्दर दिखाई देने वाली कमलों की कतार ही बना दी थी–

विहाय लाक्षारसरञ्जनां तदा
गवाक्षदेशाय च धावमानया।
कयाचिदासीद् रचिताच्छकुट्टिमे
सरोजपङ्क्ती रमणीयदर्शना।।[2]

कहीं तो राजकुमार को देखने की इच्छा रखने वाली कोई कुलवधू अपनी अधपहनी साड़ी को खिड़की पर पहनती हुई, लोगों के द्वारा देखे जाने पर भी, जरा भी लज्जित नहीं हुई–

अपूर्णबन्धां निजशाटिकां क्वचिद्
गवाक्षमूले परिधारयन्त्यपि।।
मनाग् ललज्जे नहि काचिदीक्षिता
नृपात्मजं द्रष्टुमनाः कुलाङ्गना।।[3]

कोई कुलवधू तो जल्दबाजी में अपनी आँखों में 'लिपस्टिक' और होठों में काजल लगाकर खिड़की पर आ गई। उस समय लोगों ने उसे विदूषक (भाँड़) की स्त्री समझा–

त्वरायुतारुण्यरसं स्वनेत्रयोः
प्रदाय कृत्वा ह्यधरे च कज्जलम्।
व्यलोकि लोकेन गवाक्षमागता
कुलाङ्गना कापि विदूषकांगना।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–6/31
2. तत्रैव–6/32
3. तत्रैव–6/33
4. तत्रैव–6/34

उस समय राजकुमार को देखने के लिए व्याकुल हुई कुलवधुओं ने अपने सास–ससुर, पति और बच्चों की उपेक्षा कर दी, इसी प्रकार कन्याओं ने अपने माता–पिता और भाईयों की उपेक्षा कर दी तथा वे सब, लोगों की भीड़ से भरी हुई सड़क पर आ गई–

उपेक्ष्य वध्वः श्वसुरौ पतिं शिशून्
कुमारिकाः स्वौ पितरौ सहोदरान्।
नरेन्द्रसूनोरवलोकनाकुलाः
समागता राजपथे जनाकुले।।[1]

कुछ स्त्रियाँ अपनी–अपनी खिड़कियों पर खड़ी हुई थीं, और कुछ छतों पर चढ़ गई थीं। अपने राजकुमार को देखने की इच्छा से उन सभी ने सड़क पर अपनी आँखे बिछा दी थीं–

स्थिता गवाक्षेषु च काश्चन स्त्रियः
गतास्तथा हर्म्यतलेषु काश्चन।
स्वराजपुत्रस्य विलोकनेच्छया
नरेन्द्रमार्गे नयनान्यपातयन्।।[2]

भीष्मचरितम् महाकाव्य पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव श्लोक संख्या 27 से लेकर 36 तक दिखायी देता हैं। पूरे वर्णन में शब्द, अर्थ व भाव का साम्य परिलक्षित होता हैं परन्तु कहीं–कहीं पर दीक्षित जी ने अपनी कल्पना शक्ति से किंचित परिवर्तन भी किया हैं जैसे– श्लोक संख्या 29, 31, 33–36 तक में।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त भी महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव व रघुवंश का प्रभाव कवि दीक्षितजी के महाकाव्य पर परिलक्षित होता हैं। युवतियों के सौन्दर्य वर्णन पर कालिदास का प्रभाव दिखायी देता हैं।

'कुमारसम्भव' महाकाव्य में कालिदास ने युवतियों के सौन्दर्य को चित्रित किया हैं उन उत्कण्ठा से परिपूर्ण रमणियों से आसवगन्ध से महकते हुए तथा चपल नयन वाले मुख वातायनों से झाँकते समय ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे उनमें भंवरों से युक्त कमल के पुष्प फंसा दिये गये हों–

1. भीष्मचरितम–6 / 35
2. तत्रैव–6 / 36

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्त्रपत्राभरणा इवासन्।।[1]

'रघुवंश' में भी स्त्रियों के सौन्दर्य के विषय में यथावत् श्लोक उपलब्ध होता हैं मदिरा की सुगन्ध से वासित मुखवाली, झरोखों में उत्सुकता से झाँकती हुई वे स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानों झरोखों में बहुत से कमल सजे हुए हों और उन पर अनेक भौंरे बैठे हुए हों। अर्थात् उन स्त्रियों के सुन्दर मुखों पर उनकी आँखें ऐसी मालूम पड़ती थीं जैसे कमल पर भौंरे बैठे हों–

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्त्रपत्राभरणा इवासन्।।[2]

उपर्युक्त श्लोक कुमारसम्भव और रघुवंश दोनों महाकाव्यों में एक समान हैं।

'भीष्मचरितम्' के छठे सर्ग में कवि ने देवव्रत के दर्शनार्थ उत्सुक स्त्रियों के ऐसे ही सौन्दर्य का वर्णन किया हैं। स्त्रियो के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि खिड़कियों पर खड़ी हुई उन स्त्रियों के दिखाई पड़ने वाले गोरे और साँवले मुखड़े उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों किसी ने वहाँ श्वेत और नील कमलों के गुच्छे लगा दिए हों–

गवाक्षदेशेषु मुखानि योषितां
विलोक्यमानानि सितासितान्यहो।
सितासिताब्जस्तबकानि केनचित्
नियोजितानीव विरेजिरे तदा।।[3]

उपर्युक्त पद्यों के सौन्दर्य चित्रण में भावसाम्यता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं।

'कुमारसम्भव' महाकाव्य के ग्याहरवें सर्ग में महाकवि ने बाललीलाओं के प्रसंग में उल्लेखित किया हैं कि बालक ने अपनी आनन्दमयी, अनोखी बाललीलाओं से शिव और पार्वती जी के हृदय को मुग्ध कर लिया, क्योंकि बालक की लीलाएँ किसके मन को मुग्ध नहीं करती–

ततः कुमारः समुदां निदानैः सः बाललीलाचरितैर्विचित्रैः।
गिरीशगौर्योर्हृदयं जहार मुदे न हृद्या किल बालकेलिः।।[4]

---

1. कुमारसम्भव–7/62
2. रघुवंश–7/11
3. भीष्मचरितम्–6/37
4. कुमारसम्भवम्–11/40

इसी प्रकार बाललीला के चित्रण में भी दीक्षितजी के ऊपर कालिदास की प्रभावान्विति दिखायी देती हैं। 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में दीक्षित जी ने बाललीला के प्रसंग में लिखा हैं कि राजकुमार देवव्रत की मनोहारिणी बाल–लीलाओं से सम्पूर्ण राजमहल धीरे–धीरे फिर से सुखी हो गया और वह उसी प्रकार चमक उठा जिस प्रकार चन्द्रमा से आकाश चमकता हैं–

नृपकुमारमनोहरचेष्टितैः
सकलराजगृहं च शनैः शनैः।
पुनरभूत्सुखितं च दिदेव तत्
लषति चन्द्रमसा गगनं यथा।।[1]

प्रस्तुत श्लोकों में बाललीला की भावसाम्यता दृष्टिगत होती हैं।

गुरुदक्षिणा के प्रसंग में भी दीक्षितजी ने कालिदास का अनुकरण किया हैं। रघुवंश महाकाव्य में रघु ने कौत्स से कहा कि हे विद्वन्! आपको गुरुदक्षिणा में क्या वस्तु देनी हैं और कितनी देनी हैं–

एतावदुकत्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य।
किं वस्तु विद्वन्! गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त।।[2]

जब रघु ने महर्षि वरतन्तु से गुरुदक्षिणा लेने की प्रार्थना की तब उन्होंने बहुत दिनों तक नियमपूर्वक मेरे द्वारा की गयी गुरु सेवा को ही श्रेष्ठ दक्षिणा बताया–

समाप्तिविद्येन मया महर्षिविज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात्।।[3]

इसी प्रकार भीष्मचरितम् महाकाव्य में राजकुमार देवव्रत की शिक्षा समाप्ति के बाद परशुरामजी से कहते हैं कि हे गुरुदेव! आपके लिए मुझे क्या और कितनी गुरुदक्षिणा देनी चाहिए–

गुरो! प्रदेया गुरुदक्षिणा च का
मयेति निश्चेतुमहं न पारये।
न दृश्यते किञ्चिदपीह वस्तु यत्
समानमानं हि भवेत्सुविद्यया।।[4]

---

1. भीष्मचरितम्–2/16
2. रघुवंश–5/18
3. तत्रैव–5/20
4. भीष्मचरितम्–5/36

देवव्रत के द्वारा गुरुदक्षिणा का प्रश्न उपस्थित किए जाने पर परशुरामजी कहते हैं कि तुमने यहाँ रहकर मेरी जो सेवा की उससे बड़ी कोई गुरुदक्षिणा नहीं हैं–

इति ब्रुवन्तं तमुवाच शिक्षको
न चिन्तनीयं गुरुदक्षिणाकृते।
ममात्र सेवा वसता त्वया कृता
गरीयसी कापि ततो न दक्षिणा।।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों में दीक्षित जी ने कालिदास का अनुहरण किया है।

दीक्षित जी ने तेहरवें सर्ग में चित्रित किया हैं कि अत्यधिक भोग विलास में डूबे रहने के कारण विचित्रवीर्य को क्षय रोग हो गया और अन्ततोगत्वा वह स्वर्ग सिधार गया–

सुरतात्मासौ ग्रस्तः
क्षयरोगेण चरमदशापन्नेन।
विफले वैद्योपाये
सर्वान् रोदयन् दिवं गतः।।[2]

इसी प्रकार का वर्णन कालिदास ने रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में किया हैं कि अत्यधिक भोग विलास के कारण राजा अग्निवर्ण को क्षय रोग हो गया और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ–

तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितु मन्यपार्थिवाः।
आमयस्तु रतिरागसम्भवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्।।[3]

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य के पाँचवें सर्ग में कवि ने अनेक अस्त्रों का नामोल्लेख किया हैं जैसे–गणेशास्त्र, शक्तिबाण, वारुणास्त्र, समीरणास्त्र, सर्पास्त्र, मयूरास्त्र, निशास्त्र, ऐन्दवास्त्र, आग्नेयास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, यमास्त्र, रौद्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि का। इन अस्त्रों का प्रयोग महाभारतकार ने उद्योगपर्व के अम्बोपाख्यानपर्व नामक उपपर्व में किया है। अम्बोपाख्यानपर्व के एक सौ अस्सीवें अध्याय में भीष्म और परशुराम के युद्ध के प्रसंग में महाभारतकार ने वायव्यास्त्र, गुह्यकास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वरुणास्त्र का प्रयोग किया है[4] तथा एक सौ चौरासीवें अध्याय में सर्पास्त्र,

1. भीष्मचरितम्–5/37
2. तत्रैव–13/9
3. रघुवंश–19/48
4. महाभारत–उद्योगपर्व–अम्बोपाख्यान उपपर्व–180/11–12

यमास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र का उल्लेख किया है।[1] इन अस्त्रों के प्रयोग में कवि ने महाभारत रचयिता वेदव्यास द्वारा उल्लेख किए गए कतिपय अस्त्रों का अनुहरण किया है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के तृतीय सर्ग में मयूरास्त्र[2] का, सोहलवें सर्ग में गरुडास्त्र[3] का और पाँचवें सर्ग एवं सातवें सर्ग में गन्धर्वास्त्र[4] का प्रयोग किया है। रामायण बालकाण्ड के तीसरे अध्याय में श्रीराम द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए राक्षसों का संहार करने के समय श्रीराम ने आग्नेयास्त्र व वायव्यास्त्र का प्रयोग किया है।[5]

इस प्रकार शस्त्रों के प्रयोग में दीक्षित जी महाभारतकार वेदव्यास, वाल्मीकि तथा कालिदास से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

कालिदास के पश्चात् दीक्षित जी द्वारा महाकवि भारवि प्रणीत किरातार्जुनीय से भीष्मचरित महाकाव्य में अनुहरण किए गए स्थलों का उल्लेख करेंगे।

किरातार्जुनीय महाकाव्य से अनुहरण किए गए कई स्थल भीष्मचरित महाकाव्य में उपलब्ध होते हैं जैसे–द्यूतक्रीड़ा के प्रसंग में[6] द्रौपदी को दाँव पर लगा देना[7] द्रौपदी के वस्त्राहरण के चित्रण के प्रसंग में कवि ने महाकवि भारवि का अनुसरण किया हैं।[8]

दीक्षितजी के भीष्मचरित महाकाव्य पर महाकवि माघ कृत शिशुपालवध का भी प्रभाव कई प्रसंगों में दृष्टिगोचर होता हैं, यथा–युद्धवर्णन के प्रसंग में जिस प्रकार महाकवि माघ ने दोनों सेनाओं के विन्ध्य व सह्य पर्वत के मिलने का वर्णन किया है।[9] उसी प्रकार दीक्षित जी ने युद्ध भूमि में डटी हुई दोनों सेनाओं को हिमालय पर्वत शृंखला और विन्ध्याचल शृंखला के समान चित्रित किया है।[10]

युद्धस्थल में आमने–सामने उपस्थित सेनाओं के चित्रण में भी दीक्षितजी ने महाकवि माघ के पदाङ्क का अनुसरण किया है। माघ ने सेनाओं का वर्णन इस प्रकार किया हैं–

---

1. महाभारत–उद्योगपर्व–अम्बोपाख्यान उपपर्व–184/10, 11–15
2. रघुवंश 3/56, 57
3. तत्रैव, 16/77
4. तत्रैव, 5/57, 7/62
5. रामायण–बालकाण्ड– 30/22–23
6. भीष्मचरितम् 13/49
7. तत्रैव, 13/50
8. तत्रैव, 13/53
9. शिशुपालवध, 18/1
10. भीष्मचरितम्, 15/7

पत्तिः पत्ति वाहमेयाय वाजो नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम्।
इत्थं सेना वल्लभस्येव रागादङ्गेनाङ्ग प्रत्यनीकस्य भेजे।।[1]

अर्थात् पैदल पैदल में, घोड़ा घोडे में, हाथी हाथी में, रथ पर चढ़ा हुआ रथ पर चढ़े हुए में मिल गया, इस प्रकार सेना ने युद्ध के अनुराग से शत्रु के सेनाङ्गों को अपने पैदल आदि सेनाङ्गों से उस प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार कोई रमणी प्रियतम के अनुराग से उसके हाथ–पैर आदि प्रत्येक अङ्गों को अपने हाथ–पैर आदि अङ्गों से प्राप्त करती हैं।

रघुवंश के सातवें सर्ग में महाकवि कालिदास ने इन्दुमती के रक्षार्थ अज व अन्य सभी राजाओं के युद्ध का चित्रण इसी प्रकार किया है–

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरङ्गसादी तुरगाधिरुढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।। रघुवंश–7/37

अर्थात् दोनों दलों में युद्ध शुरू हो गया पैदल पैदलों से भिड़ गये, रथवाले रथवालों से जूझ गये, घुड़सवार घुड़सवारों से उलझ पड़े, हाथी सवार हाथी सवारों पर टूट पड़े, इस प्रकार दोनों दलों में बराबर जोर का युद्ध होने लग गया।

भीष्मचरितं में दीक्षित जी ने सेनाओं का इस प्रकार चित्रण किया है–

अश्वाधिरुढास्तुरगेषु संस्थितैः
गजाधिरुढा गजपृष्ठशोभितैः।
रथाधिरुढ़ा रथिभिश्च पत्तयः
पदातिभिर्युद्धरता विलोकिताः।।[2]

अर्थात् वहाँ अश्वारोहियों के साथ अश्वारोही, गजरोहियों के साथ गजारोही, रथारोहियों के साथ रथारोही तथा पैदल सैनिकों के साथ पैदल सैनिक युद्ध करते हुए दिखाई दे रहे थे। युद्ध के वर्णनों में साम्यता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

दीक्षितजी के ऊपर **वात्स्यायन** प्रणीत **कामसूत्र** का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने कामसूत्र में आलिङ्गननादिविचारप्रकरण द्वितीय अध्याय[3] के अन्तर्गत उल्लिखित आलिङ्गन प्रकारों का उल्लेख अपने महाकाव्य के दसवें सर्ग में किया हैं–

---

1. शिशुपालवधम्, 18/2
2. भीष्मचरितम् 15/10
3. कामसूत्र–वात्स्यायन, साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरण–अध्याय–2, अलिंगननादिविचारप्रकरण श्लोक नं. 23–26

अनन्तरं तौ तिलतण्डुलाख्यं

परस्परालिङ्गनमन्वभूताम्।

तां भावभूमिं समतीत्य भूयः

प्राप्तावुभौ दुग्धजलैक्यभावम्।।[1]

अर्थात् दोनों ने तिलतण्डुल नामक आलिङ्गन के आनन्द का अनुभव किया। तदनन्तर वे दोनों उस आनन्दावस्था को पार करके दूध और पानी की भाँति परस्पर मिलकर एक हो गए।

यथा— उरूपगूहं जघनोपगूहं

स्तनोपगूहं च ललाटिकां च।

आलिङ्गनान्यन्यविधानि चापि

शास्त्रीयरीत्यानुबभूवतुस्तौ।।[2]

अर्थात् उन दोनों ने शास्त्रीय पद्धति से उरुपगूहन, जघनोपगूहन, स्तनोपगूहन और ललाटिका के आनन्द का अनुभव किया। उन दोनों ने इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी अनेक आलिङ्गनों का आनन्द लिया।

'कामसूत्र' के तृतीय अध्याय[3] में चुम्बनविकल्पप्रकरण के अन्तर्गत वर्णित चुम्बन भेदों का वर्णन दीक्षितजी ने अपने महाकाव्य में इस प्रकार से वर्णित किया हैं—

समानि तिर्यञ्च्यवपीडितानि

भ्रान्तानि रम्योत्तरसम्पुटानि।

सुदम्पती तौ रसनाहवानि

प्रसन्नतापूर्वकमन्वभूताम्।।[4]

अर्थात् दाम्पत्यबन्धन में बँधे हुए उन दोनों ने सम, तिर्यक्, उद्भ्रान्त, अवपीडित, अवपीडितक, उतर, सम्पुटक और जिह्वायुद्ध—जैसे मनोरम चुम्बनों का भी प्रसन्नतापूर्वक रसास्वाद लिया।

---

1. भीष्मचरितम्—10/29
2. तत्रैव—10/30
3. कामसूत्र—वात्स्यायन, साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरण—अध्याय—3, चुम्बन विकल्प प्रकरण श्लोक—11—12, 19—21
4. भीष्मचरितम् 10/32

वात्स्यायन मुनि ने **कामसूत्र** के चतुर्थ अध्याय[1] में नखरदनजातिप्रकरण के अन्तर्गत नखच्छेद्य प्रकारों का वर्णन किया है, उन्हीं नखच्छेद्य प्रकारों का वर्णन कवि दीक्षितजी ने अपने महाकाव्य में किया है, यथा–

बालेन्दुवक्रं कलकण्ठमूले
मयूरपादं परितः स्तनाग्रम्।
नाभिं ह्यधोऽधश्च नितम्बगर्त्ते
मनोहरं मण्डलनामधेयम्।।
काञ्चीपथे चोत्पलपत्रसंज्ञं
जङ्घाप्रदेशे यवकोशरूपम्।
पृष्ठे प्रियायाश्च तरङ्गमालं
नखक्षतं चारु चकार राजा।।[2]

अर्थात् राजा शान्तनु ने अपनी प्रियतमा सत्यवती के गले के मूल–भाग में 'अर्धचन्द्रक', स्तनों के अग्रभाग के चारों ओर 'मयूरपदक', नाभि के नीचे एवं नितम्बों (कूल्हों) के गर्त्त में मनोरम 'मण्डल', कमर पर 'उत्पलपत्रक', जाँघों पर 'यवकोश' तथा पीठ पर 'तरङ्गमाल' नामक सुन्दर नखक्षत बनाया।

कामसूत्र के पञ्चम अध्याय[3] के दशनच्छेद्यविधिप्रकरण के अन्तर्गत **वात्स्यायन मुनि** ने जिस प्रकार से दन्तक्षतों का वर्णन किया है, उसी प्रकार से कवि दीक्षित जी ने अपने भीष्मचरितं महाकाव्य के दशवें सर्ग में दन्तक्षतों का वर्णन किया हैं–

मणिप्रवालेन कपोलमध्यं
गूढेन चौष्ठं रदनक्षतेन।
ग्रीवां मनोज्ञामथ बिन्दुनाम्ना
खण्डाभ्रकेण स्तनकुम्भदेशम्।।[4]

---

1. कामसूत्र–वात्स्यायन, साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरण अध्याय–4, नखरदनजातिप्रकरण, श्लोक 4–5
2. भीष्मचरितम्–10 / 35–36
3. कामसूत्र–वात्स्यायन, साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरण अध्याय–5, दशनच्छेद्यविधिप्रकरण– श्लोक नं. 4–8
4. भीष्मचरितम्–10 / 37

रोमाञ्चपूर्व रतिदीपकैश्च

दन्तक्षतैरन्यविधैरनेकैः।

अन्यानि चाङ्गानि निजप्रियायाः

विभूषयामास रसेन भूपः।।[1]

अर्थात् राजा शान्तनु ने बड़े प्यार से अपनी प्रियतमा के कपोलों को मणि प्रवाल नाम वाले, होठ को गूढनामवाले, सुन्दर गले को बिन्दुनामवाले तथा स्तनों को खण्डाभ्रकनाम वाले दन्तक्षत से सजाया। इसके अलावा उन्होंने उसके अन्य अङ्गो को भी, रति को उद्दीप्त करने वाले, भिन्न–भिन्न प्रकार के अनेक दन्तक्षतों से विभूषित किया।

वात्स्यायन मुनि ने **कामसूत्र** के संबंधनिश्चयप्रकरण के अन्तर्गत उल्लेख किया है कि मित्रता, विवाह और आपस में क्रीड़ा ये तीनों कार्य समान धर्म के लोगों के साथ ही ठीक रहते हैं–

समस्याद्याः सहक्रीडा विवाहाः सङ्गतानि च।

समानैरैव कार्पाणि नोत्तमैर्नापि वाधमैः।।[2]

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में भी कवि ने मित्रता, विवाह और शत्रुता सम्बन्ध समान स्तर के लोगों में ही अच्छे रहते हैं, ऐसा वर्णन किया है–

समस्तदेशस्य नृपः क्व शान्तनुः

दरिद्रदाशस्य सुता क्व निर्धना।

सुते! विवाहो रिपुता च मित्रता

समस्तरेष्वेव जनेषु शोभते।।[3]

वात्स्यायन मुनि ने विवाह, क्रीड़ा और मित्रता का उल्लेख किया हैं तो दीक्षितजी ने विवाह, शत्रुता और मित्रता का वर्णन किया है। इन श्लोकों में शब्द, अर्थ एवं भाव की समानता स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

इस प्रकार महाकवि दीक्षित जी पर विविध कवियों के प्रभाव का अंकन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि हरिनारायण दीक्षित जी पर सर्वाधिक प्रभाव कवि कुलगुरु महाकवि कालिदास का है तथा दसवें सर्ग पर वात्स्यायन के कामसूत्र का है।

---

1. भीष्मचरितम् 10 / 38
2. कामसूत्र–वात्स्यायन, कन्यासम्प्रयुक्तकं तृतीयमधिकरण–अध्याय–1 सम्बन्धनिश्चय प्रकरण–24 / 20
3. भीष्मचरितम् 9 / 23

इन सादृश्यों (समानताओं) को दिखाने का उद्देश्य यही नहीं है कि दीक्षित जी ने पूर्ववर्ती कवियों का केवल अन्धानुकरण किया है। बल्कि साहित्य में यह परम्परा दिखायी देती है कि प्रत्येक कवि अपने से पूर्ववर्ती कवियों से साहित्यिक सामग्री का अनुहरण करता है। अनुहरण की इस परम्परा में पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव परवर्ती कवियों की रचनाओं से गुजरते हुए ही साहित्यिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रत्येक कवि में अपने से पूर्ववर्ती कवि की झलक दिखायी देती है। दीक्षित जी के ऊपर भी अपने से पूर्ववर्ती वेदव्यास, कालिदास, भारवि, माघ, वात्स्यायन आदि का प्रभाव प्रतिबिम्बित होता है। दीक्षित जी ने इन कवियों से शब्दार्थ और भाव का आवश्यकतानुसार समाहरण किया है और अपने महाकाव्य को सफल बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। दीक्षित जी का महाकाव्य भी उत्तरवर्ती कवियों के लिए ग्रंथ प्रणयन का उपजीव्य (प्रेरणा स्रोत) होगा।

♦ ♦ ♦ ♦

उपसंहार

उपसंहार

पिछले अध्यायों में डॉ. हरिनारायण दीक्षित जी के भीष्मचरितम् (महाकाव्य) का समीक्षात्मक अध्ययन करने के पश्चात् अब हम यहाँ उचित समझते हैं कि इस शोध प्रबन्ध को उपसंहार की दिशा में लाया जाए। इस सम्बन्ध में हम सर्वप्रथम डॉ. हरिनारायण दीक्षित की संस्कृत साहित्य विषय को देन पर विचार करेंगें।

महाकवि डॉ. दीक्षित जी का महाकाव्य संस्कृत साहित्य के लिए अनूठी देन है। कवि के महाकाव्य की मुख्य विशेषता यह है कि वह जन–साधारण की भावनाओं और समस्याओं को सहज रूप में उजागर करते हैं। इनके महाकाव्य में जन–जीवन की साक्षात् झलक दिखायी देती है। समाज का सुन्दर एवं स्पष्ट चित्रण कवि के महाकाव्य में देखने को मिलता है।

कवि ने अपने महाकाव्य में नीतिशास्त्र के साथ–साथ गुरु की महत्ता, शिक्षक सम्मान, गुरु के प्रति भक्तिभाव, शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति, नारी अस्मिता, पुत्र–पुत्री की समानता, दहेजप्रथा, प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह, भ्रष्टाचार, कृषि को प्रोत्साहन, राजकर व आयकर, राष्ट्रीय भावना, सामाजिक वर्ग विषमता का अभाव, राजधर्म आदि अनेक विषयों पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है।

इनका 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य आधुनिक संस्कृत साहित्य की उत्कृष्ट कृति है तथा महाकाव्य में प्राचीनता एवं नवीनता के माध्यम से वर्तमान युग के लिए सन्देश दिया गया है। इन्होंने अपने उपदेशों को आधार बनाकर नवयुवकों को आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं से हार न मानकर उनका सामना करने के लिए प्रेरित किया है। डॉ. दीक्षित जी महान् विचारक, देशभक्त, समाज सुधारक होने के साथ–साथ राष्ट्र के विकास के कारकों को संगठित एवं संचालित करने वाले युग पुरुष है। दीक्षित जी ने पथ भ्रष्ट हुए राष्ट्र के पुनर्निर्माण का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया है। अपने महाकाव्य के माध्यम से कवि ने समाज को अनेक प्रकार के उपदेश दिए हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। **प्रथम अध्याय** में महाकवि के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का परिचय दिया गया है। इसके अन्तर्गत कवि का जन्म, शिक्षा–दीक्षा, अध्यापन क्षेत्र, सम्मान, पुरस्कार, कृतियाँ आदि का परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में भीष्मचरित महाकाव्य की कथावस्तु का मूलस्रोत महाभारत है। भीष्मकथा महाभारत के निम्न पर्वों में उपलब्ध होती है जो इस प्रकार है– 1. आदिपर्व के उपपर्व सम्भवपर्व, विदुरागमन राज्य लम्भपर्व 2. सभापर्व के उपपर्व अर्घाभिहरणपर्व, शिशुपालवधपर्व, दूतपर्व, अनुद्यूतपर्व, 3. वनपर्व के उपपर्व घोषयात्रापर्व, 4. विराटपर्व के उपपर्व गोहरणपर्व, 5. उद्योगपर्व के उपपर्व संजययानपर्व, यानसन्धिपर्व, भगवद्यानपर्व, सैन्यनियाणपर्व, रथातिरथसंख्यानपर्व, अम्बोपाख्यानपर्व 6. भीष्मपर्व के उपपर्व श्रीमद्भगवद्गीतापर्व, भीष्मवधपर्व, 7. द्रोणपर्व के उपपर्व द्रोणाभिषेकपर्व 8. कर्णपर्व, 9. शान्तिपर्व के उपपर्व राजधर्मानुशासनपर्व, मोक्षधर्मपर्व, 10. अनुशासनपर्व के उपपर्व दानधर्मपर्व, भीष्मस्वर्गारोहणपर्व पर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा को निरूपित करते हुए सर्गानुसार भीष्मचरितं (महाकाव्य) के कथानक का चित्रण किया गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत मूलकथा से प्रस्तुत महाकाव्य में परिवर्तन एवं कविकल्पना को चित्रित किया गया है। कविकृत परिवर्तन महाकाव्य के प्रथम सर्ग से लेकर षष्ठ सर्ग तक अनवरत दृष्टिगत होता है जिसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है। गंगा अपने पुत्र को जन्म देकर राजा शान्तनु को सौंप मृत्यु को प्राप्त हो जाती है और उसके बाद शिशु की देखभाल, पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा आदि राजा शान्तनु के सानिध्य में ही होती है जबकि महाभारत में गंगा पुत्र को जन्म देकर अपने साथ लेकर अन्तर्ध्यान हो जाती है पुत्र की सम्पूर्ण शिक्षा माता गंगा के संरक्षण में ही दृष्टिगत होती है। आगे के सर्गा में कवि ने महाभारत की कथा को अति संक्षिप्त में वर्णित करते हुए अपनी कल्पना से समाज में हो रही अच्छाई व बुराई तथा मानव को अपने–अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत रहने हेतु कुछ नवीन पद्यों को निरुपित किया गया है जिसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

इसी अध्याय में भीष्मकथा पर आधृत ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है– 1. शरशय्या (काव्य) को तीन शताकों में विभक्त किया गया है इसमें कवि ने भीष्म को जन्म से ही शरशय्या पर पड़े रहने का वर्णन किया हैं। भीष्म पितामह ने महाभारत युद्ध में कौरवों के सेनापति रहते हुए ग्याहरवें दिन भीषण पराक्रम दिखाते हुए अर्जुन के बाणों से आहत होकर भीष्म पितामह शरशय्या को प्राप्त होने का वर्णन संक्षेप में किया है। 2. श्रीभीष्मविजयम् को कवि ने आठ उच्छवासों में विभक्त किया है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार किया गया है कवि ने भीष्म के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा को संक्षेप में वर्णन किया है। 3. देवव्रतचरितम् (महाकाव्य) ये दस सर्गों में विभक्त है इसमें भीष्म के पितामह प्रतीप से लेकर भीष्म के देवचिन्तन तक की कथा को निरुपित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भीष्मचरित महाकाव्य का महाकाव्यत्व के अन्तर्गत भीष्मचरित महाकाव्य पूर्णरूपेण महाकाव्यत्व लक्षणों से युक्त है। उपर्युक्त पारमार्थिक तत्त्वों के संयोजन के अतिरिक्त प्रसंगवश वस्तुविभाजन के अन्तर्गत इतिवृत्त व इतिवृत्त के अन्य तत्त्वों जैसे–पर्वत, आश्रम, नगर, नदी, वनविहार, विवाह, पुत्रजन्म, सेना, संग्राम, रतोत्सव, चन्द्रमा व सन्ध्या, सूर्योदय व प्रातः, वर्षाऋतु, यज्ञ आदि का चित्रण किया गया है तत्पश्चात् पात्रों (भीष्म, शान्तनु, युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण, सत्यवती व द्रौपदी) का चरित्र चित्रण करते हुए इस महाकाव्य के अंगीरस रस शान्त को निर्दिष्ट कर अन्य सहायक रसों (करुण, रौद्र, वीर, भयानक, शृंगार, अद्भुत, हास्य) का भी निबद्धन किया है इसके साथ ही अलंकारों और गुणों को निरुपित करते हुए छन्द योजना का चित्रण किया गया है।

पञ्चम अध्याय महाकवि की रचनाधर्मी प्रतिभा के अन्तर्गत कवि की भाषा शैली का निरुपण किया गया है। कवि ने अपने भावों की अभिव्यञ्जना के द्वारा अठाहरह पर्वों में निबद्ध महाभारत की कथा के सरल सहज भाषा शैली के माध्यम से 20 सर्गों में निबद्ध कर महाकाव्य की रचना करना दर्शाया है।

इसी अध्याय के अन्तर्गत महाकवि के वर्णन कौशल का निरुपण किया गया है। समाज में व्याप्त विसंगतियों को उजागर किया गया है जैसे–गुरु की महिमा, शिक्षक सम्मान, गुरु के प्रति भक्ति भाव, शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति, नारी अस्मिता, पुत्र–पुत्री की समानता, दहेजप्रथा, प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह, भ्रष्टाचार, कृषि को प्रोत्साहन, आयकर व राजकर, राष्ट्रीय भावना, सामाजिक वर्ग विषमता का अभाव, राजधर्म आदि को उल्लेखित किया गया है। साथ ही महाकवि के ऊपर पूर्ववर्ती कवियों–कालिदास, भारवि, माघ, वेदव्यास, वात्स्यायन के प्रभाव को निरूपित किया गया है और महाकवि का महाकाव्य भी उत्तरकाल को देन होने का चित्रण किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पुनः समीक्षा को निरूपित किया गया है।

जीवन और जगत् के अनुभवों के आधार पर महाकवि ने नव–मानवता के लिए आदर्शमय चेतना मुखरित की है। जीवन सम्बन्धी धारणाएँ भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा आदर्श परम्पराओं के सर्वथा अनुकूल है। मानवीय चरित्रों में उदारता, पवित्रता, दया–ममता आदि गुणों का समावेश है। नारी के प्रति महाकवि में अपार श्रद्धा, स्नेह एवं सम्मान की भावना परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत महाकाव्य राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। इस महाकाव्य में समग्र देश का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वैभव मुखरित हो उठा है। महाकवि ने अखण्ड भारत की परिकल्पना में अपनी राष्ट्रीय भावना का ज्वलन्त परिचय किया है।

कवि ने व्यक्ति तथा समाज की उन्नति के साथ ही संसार की उन्नति तथा सबके साथ बन्धुत्व के व्यवहार की अभिवृद्धि के पक्षधर है। कवि का महाकाव्य आधुनिक सन्दर्भों में देश, जाति, समाज आदि के लिए अत्यन्त उपादेय है। तत्कालीन राजनैतिक संस्कृति, राजाओं के व्यक्तित्व, राजनीतिज्ञों की विद्वता वर्तमान विश्व के प्रशासकों तथा राजनीतिशास्त्रविद्वों के लिए अनुकरणीय एवं हितकारी हैं।

वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों का ह्रास होता जा रहा है, जीवन मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है। आज व्यक्तिगत स्वार्थ प्रबल हो गये हैं और सामाजिक भावना क्षीण होती जा रही हैं। मानव अपने अधिकार के लिए तो संघर्षरत हैं किन्तु कर्त्तव्यों के पालन के प्रति सचेतता नहीं दिखाता है। आज कथनी और करनी में अत्यधिक भेद आ गया है। नैतिक दायित्त्वों को कोई समझने को तैयार नहीं है। ऐसी विषय स्थिति में मानव–समाज को सम्यक् दिशा–निर्देश की आवश्यकता है। सशक्त चरित्रों के माध्यम से राष्ट्रीय सामाजिक चेतना परक संस्कृत महाकव्य की रचना सार्थक व उपादेय है। महाकाव्य में वर्णित भीष्म का चरित्र एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति है। उन्होंने कभी अपने अधिकारों की माँग नहीं की और अन्त तक अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह किया। इनके चरित्र के माध्यम से कवि ने मानव समाज को प्रेरणा देने का महान् एवं प्रशंसनीय कार्य किया है। डॉ. दीक्षित जी द्वारा रचित भीष्मचरितम् महाकाव्य आधुनिक युवावर्ग में सत्यनिष्ठा, वचनबद्धता और राष्ट्रीय भावना का पुनः संचार करने में पूर्णतया सक्षम है।

अन्त में कहा जा सकता है कि डॉ. दीक्षित जी ने अपनी मातृभूमि के लिए नवयुवकों को प्रेरित करते हुए राष्ट्र की उन्नति का पथ उज्ज्वल किया है। समाज में फैली अव्यवस्था इत्यादि को दूर करने का सक्षम उपाय बताया है। इनके महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य सभी को जाग्रत कर विश्व कल्याण में लगाना है। संकट में भी मनुष्य को धैर्य धारण करने का उपदेश दिया हैं। हिंसक प्रवृत्ति को त्यागकर परस्पर प्रेम बढ़ाना चाहिए। इनका महाकाव्य सदैव भारतीय नवयुवकों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

♦♦♦♦

शोध संक्षेपिका

शोध–संक्षेपिका

प्रस्तुत शोध विषय "डॉ. हरिनारायण दीक्षित कृत "भीष्मचरितम्" का समीक्षात्मक अध्ययन" के अन्त में शोध की उपलब्धि के रूप में हमारे सूक्ष्माध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता है, उसे इस प्रकार से निरूपित किया जा सकता है। वेदव्यास प्रणीत महाभारत को उपजीव्य बनाकर शताधिक ग्रन्थ प्रणीत किए गये हैं और ग्रन्थकारों ने अपनी नित्यनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से महाभारतीय कथा में परिवर्तन और परिवर्धन भी किया है। राजनैतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से भीष्मचरितम् महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है, क्योंकि महाकवि ने इस महाकाव्य में भीष्म को नायक बनाकर उनके चरित्र के माध्यम से समाज व राष्ट्र को वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ में प्रेरणा और उत्तम सीख प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया।

शोध अध्ययन की उपलब्धि के रूप में **प्रथम अध्याय** के अन्तर्गत हमने महाकवि के सम्पूर्ण जीवन वृत्त, शैक्षणिक उपलब्धियों तथा राजकीय सेवाओं का उल्लेख करते हुए उनकी सम्पूर्ण कृतियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही महाकवि द्वारा प्राप्त पुरस्कार, सम्मान व उपाधियों का समग्र उल्लेख किया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत महाभारत के दस पर्वों के बाईस उपपर्वों के एक सौ दो अध्यायों में उपलब्ध भीष्मकथा का वर्णन किया है। जिसमें आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व के उपपर्वों में उपलब्ध भीष्मकथा का संक्षेप में वर्णन किया गया है तथा बीस सर्गों में निबद्ध महाकाव्य का अंकक्रम से संक्षिप्त कथासार प्रस्तुत किया गया हैं।

तृतीय अध्याय में हमने महाकाव्य की कथा का मूलाधार तथा कथानक के परिणत स्वरूप का उल्लेख किया है। महाकाव्य के कथानक का मूलाधार तो वेदव्यास प्रणीत महाभारत है किन्तु कवि ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से कथानक में कई मौलिक परिवर्तन किए है। हमने द्वितीय अध्याय में महाभारत की कथा का निरूपण किया है तथा इस अध्याय में कवि कृत परिवर्तनों का उल्लेख किया है। कविकृत परिवर्तन महाकाव्य के **प्रथम सर्ग से षष्ठ सर्ग** तक अनवरत दृष्टिगोचर होता है–

1. **प्रथम सर्ग** में गङ्गा, पुत्र को जन्म देने के पश्चात् पुत्र को राजा शान्तनु को सौंपकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। जबकि महाभारत में गंङ्गा पुत्र को विद्याध्ययन हेतु अपने साथ लेकर अन्तर्ध्यान हो जाती है।

2. **द्वितीय सर्ग** में राजा शान्तनु अपने पुत्र के पालन–पोषण, शिक्षा व्यवस्था तथा अध्ययन की समाप्ति पर दीक्षान्त–महोत्सव का आयोजन करते हैं जबकि महाभारत में ऐसे आयोजन का उल्लेख नहीं मिलता है। महाभारतकार ने केवल पुत्र की सम्पूर्ण विद्याओं को माता (गंङ्गा) के सान्निध्य में रहकर सीखना दर्शाया है।
3. महाकाव्य के **तृतीय सर्ग** में कवि ने अपनी मौलिक कल्पना से गुरु की महत्ता को निरूपित किया है। जबकि महाभारत में गुरु महिमा का प्रतिपादन उपलब्ध नहीं होता है।
4. **चतुर्थ सर्ग** में कवि ने देवव्रत (भीष्म) को विशिष्ट गुरु परशुरामजी की प्राप्ति का वर्णन किया है जबकि महाभारत में विशिष्ट गुरु व शिक्षा प्राप्ति का वर्णन नहीं मिलता हैं।
5. **पंचम सर्ग** में राजकुमार देवव्रत ने परशुरामजी से सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर शिक्षा समाप्ति पर गुरुदक्षिणा के लिए परशुराम जी से प्रार्थना की किन्तु परशुराम जी ने प्रत्युतर दिया कि तुमने जो मेरी सेवा की है, उससे बड़ी कोई गुरुदक्षिणा नहीं है। जबकि महाभारत में इस प्रकार शस्त्रास्त्रों की शिक्षा व गुरुदक्षिणा का कोई प्रसंग नहीं है।
6. **षष्ठ सर्ग** में महाकवि ने अपनी कल्पना से जब राजकुमार देवव्रत सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों को ग्रहण कर अपनी राजधानी हस्तिनापुर पधारते हैं तब उनके स्वागत सत्कार का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। जबकि महाभारतकार ने इस प्रकार की किसी भी घटना को उपनिबद्ध नहीं किया है।
7. महाकवि ने महाकाव्य के **सप्तम सर्ग** से **विंशति सर्ग** तक के कथानक में परिवर्तन न कर समाज व राष्ट्र से सम्बन्धित नवीन तथ्यों का समावेश किया है। **सप्तम सर्ग** में महाकवि ने महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध भीष्मकथा का यथावत् चित्रण किया है। इसमें राजा शान्तनु व सत्यवती के मिलन का प्रसंग है।
8. **अष्ठम सर्ग** की कथा महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध भीष्मकथा के समान है। कवि ने राजा शान्तनु की विरहावस्था के वर्णन को संक्षेप में प्रस्तुत किया है।
9. **नवम सर्ग** के प्रारम्भ में सत्यवती विवाह के सन्दर्भ में महाभारत में पिता–पुत्री के मध्य हुए विवाद का उल्लेख नहीं है जबकि प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से विवाह हेतु पिता–पुत्री के विवाद का वर्णन किया है।
10. **दशम सर्ग** में कवि ने पिता–पुत्र के कर्त्तव्यों का उल्लेख अपनी मौलिक कल्पना से किया है। जबकि महाभारत में पिता–पुत्र के कर्त्तव्यों का उल्लेख व्यासजी ने नहीं किया है।
11. **एकादश सर्ग** की प्रस्तुत कथा में कोई परिवर्तन नहीं है। कवि ने महाभारत की कथा के समान ही सत्यवती द्वारा चित्रांगद और विचित्रवीर्य के जन्म होने का वर्णन किया है।

12. **द्वादश सर्ग** में महाकवि ने महाभारत के आदि पर्व में वर्णित भीष्मकथा में कोई परिवर्तन व परिवर्धन नहीं किया है।
13. **त्रयोदश सर्ग** में महाभारत के आदिपर्व, सभापर्व और उद्योग पर्व में उपलब्ध भीष्मकथा में महाकवि द्वारा कृत् कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता है, केवल आधुनिक युग के अनुरूप कुछ नीतिपरक श्लोकों का उल्लेख किया है।
14. **चतुर्दश सर्ग** में उद्योगपर्व व भीष्मपर्व में उपलब्ध भीष्मकथा को लघु कलेवर के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
15. **पंचदश सर्ग** में महाकवि ने महाभारत के द्रोणपर्व व कर्णपर्व में उपलब्ध कथांशों को संक्षेप में उपनिबद्ध किया है।
16. **षोडश सर्ग** में महाभारत के शान्तिपर्व में उपलब्ध भीष्मकथा को महाकवि ने परिवर्तित न कर संक्षेप में श्रीकृष्ण व भीष्म के मध्य हुए संवाद को चित्रित किया है।
17. **सप्तदश सर्ग** में महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित राजधर्म के उपदेशों को सम्मिलित करते हुए आधुनिक युगानुरूप नवीन तथ्यों को उपदेश के रूप में समावेशित किया है।
18. **अष्टादश सर्ग** में महाकवि ने महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म द्वारा प्रोक्त प्रजाधर्म से सम्बन्धित नीतियों में कतिपय नवीन परिवर्तनों का संयोजन किया है।
19. **एकोनविंशति सर्ग** में महाभारत के शान्ति व अनुशासनपर्व में भीष्म द्वारा प्रोक्त मोक्षधर्म के उपदेशों में महाकवि ने कुछ परिवर्तन किया है जो समसामयिक दृष्टि से उचित व उपयोगी है।
20. **विंशति सर्ग** में महाकवि ने महाभारत के अनुशासनपर्व में भीष्म प्रोक्त कथानक को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए आधुनिक युगानुरूप नवीन नीतियों को सम्मिलित किया है।

इसी अध्याय में हमने भीष्म चरित्र पर आधृत उपलब्ध सम्पूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इन ग्रन्थों में भीष्म के चरित्र को प्रधानतया निरूपित किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार हैः—1. महामहोपाध्याय प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत शरशय्या काव्य 2. महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण सूरिः प्रणीत श्रीभीष्मविजयम् (उपन्यास) 3. डॉ. नलिनीकान्त मिश्र रचित देवव्रतचरितम् (महाकाव्य) आदि का संक्षिप्त में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत महाकाव्य के उद्गम पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें प्राचीन महाकाव्य परम्परा व आधुनिक महाकाव्य परम्परा दोनों का उल्लेख किया गया है। **प्राचीन महाकाव्य परम्परा** के अन्तर्गत सर्वप्रथम अग्निपुराण में उपलब्ध महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए भामह, दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ और आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों को

प्रतिपादित किया गया है। **आधुनिक महाकाव्य परम्परा** के अन्तर्गत आधुनिक काव्यशास्त्रियों राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी एवं रहसबिहारी द्विवेदी के महाकाव्य के लक्षणों का वर्णन किया है। प्राचीन और आधुनिक काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त लक्षणों में हमें कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता हैं किन्तु सर्गों की संख्या के विषय में राजेन्द्र मिश्र जी ने आठ के स्थान पर उसकी तिगुनी (24) कहकर उसकी व्यापकता का विस्तार किया है। इसके साथ ही अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के वर्ण्य विषय में भी परिवर्तन किया है। आधुनिक काव्यशास्त्रियों ने जीवन की वास्तविक दशाओं, देश, काल की स्थिति के अनुसार कथानक को अङ्गीकृत करके उसे महाकाव्य का वर्ण्य विषय बनाने एवं महिला पात्रों को आधृत कर महाकाव्यों की रचना करने तथा लोकवन्द्यजनाश्रय जैसे विषयों को गृहीत कर महाकाव्य प्रणीत करने का उल्लेख किया हैं। प्राचीन व आधुनिक महाकाव्य परम्परा के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती हैं। क्योंकि जो आज आधुनिक है, वही कई शताब्दियों के बाद प्राचीन हो जायेगा।

इसी अध्याय में वस्तुविभाजन के अन्तर्गत इतिवृत्त तथा इतिवृत्त के अन्य तत्त्वों (नदी, पर्वत, संग्राम, आश्रम, सूर्योदय, पुत्रजन्म, यज्ञ, सूर्यास्त) आदि का वर्णन किया है। महाकाव्य में निरुपित पात्रों (भीष्म, शान्तनु, युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण, सत्यवती व द्रौपदी) के चरित्र का चित्रण प्रस्तुत किया है। महाकाव्य में प्रयुक्त रस (शान्त, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, शृंगार, अद्भुत, हास्य), अलंकार (अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, भाविक, विभावना, विशोषोक्ति, भ्रान्तिमान, स्नेदह, दृष्टान्त, समासोक्ति, व्यतिरेक, उल्लेख, उपमेयोपमा), गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद), छन्द (आर्या, अनुष्टुप, उपजाति, शार्दूलविक्रीडत, मन्दाक्रान्ता, मालिनी आदि) योजना का प्रतिपादन किया गया है। सम्पूर्ण महाकाव्य महाकाव्य के लक्षणों से ओतप्रोत हैं।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत कवि की भाषा शैली का निरूपण किया गया है। कवि ने अपने भावों की अभिव्यंजना के द्वारा अठाहरह पर्वों में निबद्ध महाभारत की कथा को सरल सहज भाषा शैली के माध्यम से 20 सर्गों में निबद्ध कर महाकाव्य की रचना की है। जिसमें यथा स्थान सूक्तियों, लोकोक्तियों और सिद्धान्त वाक्यों का प्रयोग किया है।

इसी अध्यायन्तर्गत हमने कवि के वर्णन कौशल का निरूपण किया है। कवि ने अपने सूक्ष्म अनुभूतियों के गहन अध्ययन एवं अनुसन्धानात्मक दृष्टि से समाज में व्याप्त बहुत सी विषमताओं पर अपने वर्णन चातुर्य से प्रकाश डाला हैं जिनका नामोल्लेख इस प्रकार है– गुरु की महिमा, शिक्षक सम्मान, गुरु के प्रति भक्तिभाव, शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की स्थिति, नारी अस्मिता, पुत्र–पुत्री की समानता, दहेज प्रथा, प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह, भ्रष्टाचार, कृषि को प्रोत्साहन, राजकर व आयकर,

राष्ट्रीय भावना, सामाजिक वर्ग विषमता का अभाव, राजधर्म, दीक्षान्त समारोह, मोक्षधर्म, बालक्रीड़ा, प्रजाधर्म, विविध दीव्यास्त्र जैसे–वारुणास्त्र, समीरणास्त्र, सर्पास्त्र, मयूरास्त्र, निशास्त्र, ऐन्दवास्त्र, आग्नेयास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, वैष्णवास्त्र, यमास्त्र, रौद्रास्त्र और ब्रह्मास्त्र आदि।

इसी अध्याय में महाकवि पर अपने से पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव को निरुपित किया गया है। पूर्व कवियों में महाकवि पर सर्वाधिक प्रभाव कालिदास, भारवि, माघ, वेदव्यास का दृष्टिगोचर होता है। इसके साथ वात्स्यायन का प्रभाव महाकाव्य के दशवें सर्ग में स्पष्टतया परिलक्षित होता है। कवि का महाकाव्य भी उत्तरकाल के कवियों के लिए उपजीव्य हो सकता है इसका भी प्रतिपादन किया गया है।

अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि यह महाकाव्य समीक्षात्मक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य हैं। 'भीष्मचरितम्' महाकाव्य महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणों से मण्डित है। भीष्म का चरित्र आदर्श ही नहीं है, अपितु महानता का प्रतीक हैं जिन्होंने अपने पिता के सुख के लिए आजीवन विवाह न करने और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की भीष्मप्रतिज्ञा की है। वे राजनीतिकुशल, प्रवीण धनुर्धर, सम्पूर्ण अस्त्र–शस्त्र के ज्ञाता, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने वाले न जाने कितने गुणोपेत थे। वर्तमान देश की रक्षा, देश के प्रति अपने कर्त्तव्य, भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए 'भीष्मचरितम्' को बारम्बार अधीत व अध्यापित करने की महत्ती आवश्यकता है। क्योंकि कवि ने अपने महाकाव्य के द्वारा समाज की बहुत सी विसंगतियों को उजागर किया जिनका समाज में क्षरण हो रहा है। विसंगतियों को अपने महाकाव्य में पुनः प्रतिष्ठापित किया है। ऐसे तपोत्यागी के चरित्र को लेकर रचित यह महाकाव्य महाकाव्यों में अप्रतिम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्र.सं. ग्रन्थ लेखक/सम्पादक प्रकाशक

1. अग्निपुराण –वेदव्यास–आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् 1957
2. अजमोहभङ्गम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली, सन् 2009
3. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी–जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, सन् 2009
4. अभिराजयशोभूषण–डॉ. अभिराजराजेन्द्रमिश्र–वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 2006
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास–रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, बाहरवाँ सर्ग, संस्करण–1996
6. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा –सं. मञ्जुलता शर्मा–परिमल पब्लिकेसन्स, दिल्ली, सन् 2004
7. अलङ्कार मञ्जूषा–डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी–चौखम्बा ओरियन्टल, वाराणसी
8. अलङ्कार सर्वस्व–डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी–चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
9. अलङ्कार सर्वस्व–डॉ. त्रिलोकीनाथ द्विवेदी–चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
10. अलङ्कार शास्त्र का इतिहास–डॉ. कृष्ण कुमार–साहित्य भण्डार, मेरठ–1998
11. अलङ्कार शास्त्र की परम्परा–राजवंश सहाय 'हीरा' चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
12. आधुनिक संस्कृत साहित्य–दयानन्द भार्गव–राजस्थान ग्रन्थागार, जोधपुर
13. आधुनिक संस्कृत साहित्येतिहास–डॉ. रामकुमार दाधीच–हंसा प्रकाशन, जयपुर
14. आधुनिक संस्कृत साहित्य सन्दर्भ सूची–राधावल्लभ त्रिपाठी, रमाकान्त पाण्डेय, धर्मेन्द्र कुमार, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली 2012
15. उपदेशशती (काव्यम्)–डॉ. हरिनारायण–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली सन् 1993
16. ऋक् सूक्त संग्रह–सं. हरिदत्त शास्त्री–साहित्य भण्डार, मेरठ
17. ऋग्वेद–दयानन्द संस्थान, दिल्ली
18. कंससहारम्–उमामहेश्वरशास्त्री–श्री शारदा मुद्रणालय, भट्टनविल्लह, प्राच्य गोदावरी मण्डल, 1958

19. कामसूत्र–वात्स्यायन–नई सदी, हिन्दी साख्या–पं. ब्रजगोपाल राय 'चंचल', बुक हाउस दिल्ली–प्रथम संस्करण–2005
20. काव्यप्रकाश–मम्मट–साख्या–रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी, वि.सं.–2046
21. कर्णार्जुनीयम् (महाकाव्यम्)–विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री–वाराणसी, शक. 1968
22. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट, सं. डॉ. कपिलदेव गिरि –चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वारासणसी, संस्करण 2046
23. काव्यादर्श–दण्डी बाबूलाल शर्मा–हंसा प्रकाशन, जयपुर–संस्करण 1991
24. काव्यानुशासन–हेमचन्द्र–व्याख्या रामानन्द शर्मा–कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
25. काव्यालङ्कारः–श्रीभामहाचार्य व्याख्या, डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी–हंसा प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2008
26. काव्यालङ्कार–रुद्रट–परिमल पब्लिकेशन्स–दिल्ली
27. किरातार्जुनीयम्–भारवि–साख्याकार–डॉ. सुधाकर मालवीय, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी–2009
28. कुमारसम्भवम्–कालिदास–सम्पादक–आचार्य उमेश शास्त्री–यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, संस्करण–2009
29. कृष्णोदयम् (महाकाव्यम्)–रामाशीषपाण्डेय–प्रबोध संस्कृत प्रकाशन, राँची–1996
30. गद्यकाव्यसमीक्षा–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली सन् 1991
31. गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालयम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–स्वामी श्रद्धानन्द अनुबन्धान प्रकाशन केन्द्र, हरिद्वार, सन् 2002
32. गोपालबन्धु–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स–दिल्ली–1988
33. छन्दशास्त्रम्–पिङ्गलाचार्य–हरियाणा साहित्य संस्थान, रोहतक
34. छन्दोमञ्जरी–आचार्य गंगादास–चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
35. तिलकमञ्जरी (एक समीक्षात्मक अध्ययन) –डॉ. हरिनारायण दीक्षित–भारतीय विद्या प्रकाशन, 1यूबी बग्लोरोड जवाहर नगर, दिल्ली–1982
36. दुर्जनाचरितम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर दिल्ली–2011

37. देशोऽकुरुते–प्रोन्नतिम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर दिल्ली–2011
38. देवव्रतचरितम्–महा. नलिनीकान्त मिश्र–प्रकाशक श्री रामचन्द्र मिश्र ग्राम/पोस्ट राणसाहि, जे मेदिनीपुर
39. नव्यकाव्यतत्वविमर्शः–रहस बिहारी द्विवेदी
40. निर्वेदनिर्झरिणी–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर दिल्ली–2010
41. पण्डित राजजगन्नाथ काव्य ग्रन्थावली–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली–1996
42. पशुपक्षिविचिन्तनम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली–2008
43. पाण्डविजयम् (महाकाव्यम्)–हेमचन्द्रराय, पटना, 1930
44. पार्थचरितामृतम् (महाकाव्यम्)–ब्रह्मदत्तवाग्मी–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली–1994
45. प्रतापरुद्रयशोभूषण–विद्यानाथ
46. बालभारत–राजशेखर–चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
47. बुन्देलखण्डी कवि पं. राजाराम मिश्र, काव्य संग्रह–ईस्टर्न बुक लिंकर्स जवाहर नगर, दिल्ली–2006
48. भारतमञ्जरी–क्षेमेन्द्र–चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
49. भारतमाताब्रुते–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली–2003
50. भारतीयकाव्यशास्त्र–डॉ. सत्यदेव चौधरी–अलंकार प्रकाशन, दिल्ली
51. भारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसा–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–1995
52. भारतीय साहित्यशास्त्र–बलदेव उपाध्याय–चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
53. भीमायनम् (महाकाव्यम्)–प्रभाकरशङ्करजोशी–प्र.पं. वसन्त अनन्त गडगील, शारदा गौरव ग्रन्थमाला, पुणे, 2010
54. मनुजाश्शृणुत गिर मे–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ले–2008
55. महाभारत (1–6 भाग)–व्यास–गीताप्रेस, गोरखपुर
56. महाभारत–सं. जी.डी. जालान–गीताप्रेस गोरखपुर–वि.सं. 2014
57. महाभारत–1–18, भण्डारगर ऑरियन्टल इंस्टीट्यूट, पूना
58. महाभारतकालीन समाज–सुखमय भट्टाचार्य, हिन्दी अनु. पुष्पा जैन–लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1966

59. महाभारत कोश—डॉ. रामकुमार झा—चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
60. महाभारत कोश—रामकुमार राय—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी—1966
61. मेघदूत—कालिदास—व्याख्या—अर्कनाथ चौधरी, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर प्रथम संस्करण 1996
62. मेनकाविश्वामित्रम्—डॉ. हरिनारायण दीक्षित—ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली—1984
63. रघुवंशम्—कालिदास—व्याख्या—डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती, प्रकाशन, वाराणसी—2016
64. रस, अलङ्कार, छन्द तथा काव्यांग—डॉ. वेंकट शर्मा—राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
65. रससिद्धान्त—डॉ. नगेन्द्र—मयूर पेपर बैक्स, नोएडा—2001
66. रूपचन्द्रिका—सं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी—चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
67. राजस्थान के प्रमुख—डॉ. प्रभाकर शास्त्री—राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर संस्कृत महाकाव्य
68. राधाचरितम्—डॉ. हरिनारायण दीक्षित—ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली—2005
69. राष्ट्रियसूक्तिसंग्रह—डॉ. हरिनारायण दीक्षित—अक्षयवट प्रकाशन 26, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद—1987
70. लघुसिद्धान्तकौमुदी—सं. अर्कनाथ चौधरी—जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
71. लौकिक संस्कृत साहित्य—ए.बी.कीथ—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
72. वाल्मीकीसम्भवम्—डॉ. हरिनारायण दीक्षित—ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर दिल्ली—2010
73. विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्—अभिराजराजेन्द्रमिश्र—अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद
74. वृत्तरत्नाकर—श्री केदारभट्ट, व्याख्या आ. बलदेव उपाध्याय—चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1995
75. वृहद् अनुवाद चन्द्रिका—चक्रधर नौटियाल 'हंस'—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली—1999
76. शरशय्या (शत्तकत्रयम्)—रेवाप्रसाद द्विवेदी—कालिदास संस्थान वाराणसी—2002
77. शोधलेखावली—डॉ. हरिनारायण दीक्षित, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली—1988
78. शिशुपालवधम्—माघ—श्री मल्लिनाथकृत, चौखम्भ विद्याभवन—वाराणसी—2010
79. श्रीकृष्णचरितामृतम् (महाकाव्यम्)—कृष्णप्रसादशर्मा 'घिमिरे'—श्रीकृष्ण ग्रन्थमाला, काठमाण्डू 1971
80. श्रीग्वलदेवचरितम्—डॉ. हरिनारायण दीक्षित—ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली—2008
81. श्रीभीष्मविजयम्—श्री लक्ष्मणसूरि—प्रकाशन श्री भारतीतीर्थ ट्रस्ट, शृंगगिरि
82. श्रीमद्प्पयदीक्षितचरितम्—डॉ. हरिनारायण दीक्षित—देववाणी परिषद, वाणी विहार, दिल्ली—1981

83. श्रीमद्भगवद्गीता–गीता प्रेस गोरखपुर
84. श्री हनुमद्दूतम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली–1987
85. संस्कृतनिबन्धरश्मि–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–जनताप्रेस, ज्ञानपुर, वाराणसी–1968
86. संस्कृतनिबन्धावली–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली–1985
87. संस्कृतानुवादकलिका–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–नयाप्रेस, जालौन, उत्तरप्रदेश–1965
88. संस्कृत के महाकवि और काव्य–डॉ. रामजी उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
89. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा–डॉ. केशव मुसलगॉवकर, सं. राजशेखर शास्त्री चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–2004
90. संस्कृत महाकाव्यों का समालोचनात्मक अध्ययन–रासबिहारी द्विवेदी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली–2001
91. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास–जगन्नाथ पाठक–संस्कृत संस्थान, लखनऊ
92. संस्कृत व्याकरण–प्रीतिप्रभा गोयल–राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर–2009
93. संस्कृत साहित्य इतिहास–आ. बलदेव उपाध्याय–शारदा मंदिर, वाराणसी
94. संस्कृत साहित्य इतिहास–द्वारिका प्रसाद सक्सेना–विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
95. संस्कृत साहित्य इतिहास–श्री वाचस्पति गैरोला– चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
96. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी–विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–2001
97. संस्कृत साहित्य का इतिहास–वाचस्पति गैरोला–चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी–1960
98. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. पुष्करदत्त शर्मा–अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर–सं. 1996
99. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास–डॉ. कपिलदेव द्विवेदी–साहित्य संस्थान, इलाहाबाद
100. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रियभावना–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–देववाणी परिषद, दिल्ली–1983
101. सज्जनाचरितम्–डॉ. हरिनारायण दीक्षित–ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली 2012
102. सावित्रीचरितम् (महाकाव्यम्)–श्री आत्मरामशास्त्री–बाम्बे 1961
103. साहित्यदर्पण–विश्वनाथ–मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–संस्करण 2014
104. सुदामाचरितम् (महाकाव्यम्)–इन्द्रदेव द्विवेदी 'इन्द्र'–भारती साहित्य परिषद प्र. काशीनाथ द्विवेदी गोमती नगर, लखनऊ–1992
105. Catloge of the 29th century Sanskrit World अभिराजराजेन्द्र मिश्र–इलाहाबाद 2002

पत्र–पत्रिकाएँ

क्र.सं.	पत्रिका	लेखक	प्रकाशन
1.	गीर्वाण सुधा	सं. श्री महाकवि बेलनकार	देववाणी मन्दिर, बुम्बई
2.	स्वर मंगला		राज. संस्कृत अकादमी, जयपुर
3.	दिग् भारती	सं. वनमाली विश्वाल	इलाहाबाद
4.	गुरुकुल पत्रिका		गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
5.	वैचारिकी		भारतीय विद्या मन्दिर, कलकत्ता
6.	गंगानाथ झा रिसर्च जनरल		गंगानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद
7.	दूर्वा संस्कृत त्रैमासिकी द्वितीयोन्मेष		कालिदास अकादमी, उज्जैन
8.	शोध प्रभा		दिल्ली

कोश ग्रन्थ

क्र.सं.	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
1.	अमरकोश	अमरसिंह	निर्णयसागर प्रकाशन, मुम्बई
2.	आदर्श हिन्दी–संस्कृत कोश	डॉ. रामस्वरूप	ऋषिकेश चौ. प्रका., वाराणसी
3.	भारतीय साहित्य कोश	डॉ. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिक हाउस, दिल्ली
4.	संस्कृत साहित्य कोश	सीताराम चतुर्वेदी	चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
5.	संस्कृत साहित्य कोश	डॉ. राजवंश सहाय	चौखम्बा राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला
6.	संस्कृत साहित्य कोश		भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता
7.	वृहद् हिन्दी कोश	कालिका प्रसाद	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
8.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	
9.	संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ	द्वारिका प्रसाद शर्मा	
10.	वृहद् पर्यायवाची कोश	डॉ. रघुवीर	
11.	साहित्य दर्पण कोश	डॉ. रमनकुमार शर्मा	विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली–1996
12.	Anglo Hindu Dictionary	सं. आर.सी. पाठक	श्री गङ्गा पुस्तकालय, वाराणसी, सन् 2007

♦ ♦ ♦ ♦

प्रकाशित शोध पत्र

BHARTIYA BHASHA, SIKSHA, SAHITYA EVAM SHODH

भारतीय भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं शोध

ISSN 2321 – 9726

A REFEREED JOURNAL OF

Explore Innovate Educate

Shri Param Hans Education & Research Foundation Trust

WWW.BHARTIYASHODH.COM
www.SPHERT.org

Published by iSaRa

भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ और निष्काम कर्मयोग की शिक्षा

शोध छात्र–अक्षयराज मीणा (संस्कृत)
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा राज.

श्रीमद्भगवद्गीता –

दर्शन के क्षेत्र में भगवद्गीता का महत्त्व अद्वितीय है। इसमें उपनिषदों के प्रायः सभी तत्वों को सरलतापूर्वक समझाया हुआ है। यह आध्यात्मिक और व्यावहारिक सामग्री से परिपूर्ण है। गीता वस्तुतः 'सर्वशास्त्रीमयी' है। सारे शास्त्रों का सार गीता में है। अतः 'सारे शास्त्रों का खजाना' कहने पर भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गीता ज्ञान का भलीप्रकार से हो जाने पर सब शास्त्रों का तात्विक ज्ञान अपने आप हो सकता है। उसके लिए अलग परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहती। गीता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारबिन्द से निकली है, इसलिए इसे सभी शास्त्रों से बढ़कर कहने में अत्युक्ति नहीं है। स्वयं वेदव्यास ने कहा है–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मानाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता।।

पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों ज्ञानपिपासुओं में इसे अतुलनीय सम्मान प्रदान किया है। विदेशियों ने भी इसमें रूचि ली है तथा विभिन्न विदेशी भाषाओं में इसका अनुवाद करवाया। सर्वप्रथम चार्ल्स विल्कन द्वारा 1775 में इसका अनुवाद किया गया। कई दार्शनिक तो गीता को अपने गुरू के रूप में स्वीकारते है। इसमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का आज भी उतना ही महत्व है जितना कि प्राचीनकाल में था। ये सिद्धान्त सार्वभौमिक, शाश्वत तथा अक्षुण्ण प्रभाव वाले है। इसलिए विभिन्न रूचि के विद्वानों में भी यह लोकप्रिय एवं ख्याति प्राप्त है। हमारे भगवद्गीता को प्रस्थानत्रयी में गिना जाता है।

गीता का शब्दार्थ :

'गीता' शब्द का अर्थ है– "गायी हुई" अथवा कही हुई।

गीता को कहे गये जाने का कारण–

महाभारत का प्रतिपाद्य विषय अन्य कई वस्तुओं के वर्णन के साथ–साथ कौरव–पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है इसमें कुल 18 पर्व है वह कई अध्यायों में है तथा प्रत्येक अध्याय में कई श्लोक है।

इन पर्वों के नाम इस प्रकार है– 1. आदि पर्व, 2. सभा पर्व, 3. वन पर्व, 4. विराट् पर्व, 5. उद्योग पर्व, 6. भीष्म पर्व, 7. द्रोण पर्व, 8. कर्ण पर्व, 9. शल्य पर्व, 10. सौप्तिक पर्व, स्त्री पर्व, 12. शान्ति पर्व, 13. अनुशासन पर्व, 14. अश्वमेघ पर्व, 15. आश्रमवासी पर्व, 16. मौसला पर्व, 17. महाप्रस्थानिक पर्व, 18. स्वर्गारोहण पर्व।

श्रीकृष्ण द्वारा जो अर्जुन को गीता का उपदेश दिया गया, यह उपदेश महाभारत के छठे पर्व 'भीष्मपर्व' में विद्यमान है।

राज्य की प्राप्ति के लिए कौरवों व पाण्डवों में अवश्यभवी युद्ध प्रारम्भ होने वाला था। दोनों ओर की सेनायें सन्नद्ध थी। कुरुक्षेत्र में होने वाले महाभारत के इस युद्ध में दोनों पक्षों की व्यूह रचना हो चुकी थी। युद्ध के प्रारम्भ होने में तनिक भी विलम्ब न था। यहाँ तक की शंख, भेरी, नगाड़े भी बजने लग गये थे जो युद्ध प्रारम्भ होने की सूचना दे रहे थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से जो उनके सारथी थे से कहा कि मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो ताकि मैं देखूँ कि मैं किनसे युद्ध कर रहा हूँ। किन्तु जब अर्जुन की दृष्टि कौरवों की सेना पर पड़ी तो उनको देखकर आश्चर्य हुआ कि प्रतिपक्षी तो मेरे गुरूजन, मेरे बन्धु, मेरे परिजन है।

स्वजनों को प्रतिपक्ष में देखकर अर्जुन के अंगशिथिल हो गये तथा उसका वीर गाण्डीव हाथ से छूट गया तथा उसका सिर चकराने लगा। इस दशा में वह रथ के पिछले भाग में जा बैठा तथा कृष्ण से कहा कि मैं ये अच्छे शकुन नहीं देख रहा हूँ। स्वजनों को मारने से अपना कल्याण नहीं होगा और अर्जुन ने युद्ध करने से मना कर दिया। अर्जुन के ऐसे दीनतापूर्ण वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने उसे जो उपदेश दिया, ज्ञान दिया है वही **"श्रीमद्भगवद्गीता"** है।

भगवद्गीता की शैली –

18 अध्यायों में विभक्त 700 श्लोकों वाली यह गीता संवाद शैली में लिखी गयी है, जिसे प्रश्नोत्तर शैली भी कहा जा सकता है। इसके प्रमुख वक्ता सञ्जय है, जो कौरवों के पिता धृतराष्ट्र को सुनाते है। दूसरी ओर लघु काव्य का प्रमुख वक्ता श्रीकृष्ण भी है जो अर्जुन की शंकाओं का समाधान करते है। अधिकतर यह रचना अनुष्टुप् जैसे सरल व छोटे श्लोकों में लिखी गयी है किन्तु कहीं–कहीं बीच में अन्य दीर्घ श्लोक भी उपलब्ध होते हैं।

गीता का तात्पर्य एवं वैशिष्ट्य –

'गीता' ज्ञान का अथाह समुद्र है इसमें ज्ञान का अनन्त भण्डार है। रत्नाकर में गहरा गोता लगाने पर जैसे रत्नों की प्राप्ति होती है, वैसे ही इस गीता सागर में गहरी डुबकी लगाने से जिज्ञासुओं को नित्य नूतन विलक्षण भाव–रत्न शशि की उपलब्धि होती हैं

गीता का मुख्य तात्पर्य अनादिकाल से अज्ञानवश संसार समुद्र में पड़े हुये जीव को परमात्मा की प्राप्ति करवा देने में है और व्यवहार में परमार्थ के प्रयोग की यह अद्भुत कला गीता में बतलाई गयी है।

स्थितप्रज्ञ –

आत्म स्वरूप में बुद्धि की अचल स्थिति का नाम योग है तथा यह स्थिति जिस पुरुष को प्राप्त हो जाती है। वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। 'स्थितप्रज्ञ' अर्थात् 'स्थिता प्रज्ञा यस्य सः स्थितप्रज्ञ' कहलाता है। स्थितप्रज्ञ पुरुष–

1. सभी इच्छाओं का परित्याग करने वाला होता है–

   प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।[1]
   आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। (2/55)

व्यक्ति अपने मनोगत सभी इच्छाओं कामनाओं का परित्याग कर देता है और अपनी आत्मा में आत्मा से ही सन्तुष्ट रहता है, उसे ही स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

2. सुख–दुःख में समान रहने वाला है–

   दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्प्रहः।[2]
   वीतरागभयक्रोधः स्थित धीर्मुनिरुच्यते।। (2/56)

स्थितप्रज्ञ दुःखों की प्राप्ति में लोभ रहित मन वाला रहता है तथा सुख की प्राप्ति में उसकी आसक्ति पूर्ण रूप से छूट जाती है। इस प्रकार वह राग द्वेष, भय, क्रोध से रहित होता है।

3. वह सभी अवसरों पर समत्व बुद्धि वाला होता है–वह शुभ–अशुभ में समत्व बुद्धि वाला न किसी का अभिनन्दन करता है, न किसी के प्रति शत्रुता रखता है।
4. इन्द्रियों को वश में रखने वाला है, इनको विषयों से हटाया वाला होता है–जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही स्थिरबुद्धि वाला मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है इसी से उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

   यद्यपि इन्द्रियों द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय निवृत हो जाते हैं। परन्तु राग नहीं छूटता किन्तु स्थितप्रज्ञ का राग भी परमात्मा के साक्षात्कार से निवृत हो जाता है। अतः करण की स्वच्छता को प्राप्त करने वाला होता है।

   उसकी इन्द्रियाँ राग द्वेष से रहित होती है तथा स्वयं के वश में होती है इसी प्रकार के अन्तःकरन से परम प्रसाद को प्राप्त करता है। ऐसा शक्ति ही 'ब्रह्मनिर्वाणः' 'अतुलनीय शान्ति' को प्राप्त होता है।

निष्कामकर्मयोग की शिक्षा –

गीता के द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग का भी सम्यक् प्रतिपादन किया है। निष्काम कर्मयोग से तात्पर्य है–बिना फल की इच्छा किए हुए अपना कर्म करना।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' अथवा 'Excess of everything is bad' के अनुसार प्राणी को इनसे बचना चाहिए और यह स्थिति गीता के निष्काम कर्मयोग को समझने पर ही संभव हो सकती है। श्रीकृष्ण कहते हैं–

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।[3]
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं दायभवाप्स्यसि।। (2/38)

अर्थात् हे अर्जुन तुम सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय इन सभी को समान समझकर युद्ध हेतु सन्नद्ध हो जाओ। इस प्रकार तुम को पाप नहीं लगेगा। कर्म के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।[4]
मा कर्मफल हेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। (2/47)

अर्थात् अर्जुन तेरा मेरा कर्म करने मात्र में अधिकार होवे फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्राप्ति न होवें। इसलिए निष्काम फल की इच्छा से अपना कर्तव्य कर्म करने चाहिए यही हितकर है। जो मनुष्य सभी स्थितियों में समान रहता है वह समावस्था ही उपयुक्त है इसे ही योग कहा है–

योग्यस्थः कुरू कर्माणि संगत्यक्त्वा धनंजय।[5]
सिद्वय सिद्वयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। (2/48)

अर्थात् हे धनञ्जय आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि ये समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर यह समत्व भाव ही योग है और भी–

बुद्धियक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।[6]
तस्माद्योगाम युज्यस्व योग कर्मसु कौशलम्।। (2/50)

अर्थात् समत्व बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य–पाप दोनों को इस लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे लिप्त नहीं होता है। यही समत्व बुद्धि कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्मबन्धन से युक्त होने का उपाय है, कर्मबन्धन में नहीं पड़ता तथा परमपुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त होता है।

सन्दर्भ –ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता–डॉ. विश्वानाथ शर्मा–द्वितीय अध्याय–श्लोक संख्या 55
2. श्रीमद्भगवद्गीता–डॉ. विश्वानाथ शर्मा–द्वितीय अध्याय–श्लोक संख्या 56
3. श्रीमद्भगवद्गीता–डॉ. विश्वानाथ शर्मा–द्वितीय अध्याय–श्लोक संख्या 38
4. श्रीमद्भगवद्गीता–डॉ. विश्वानाथ शर्मा–द्वितीय अध्याय–श्लोक संख्या 47
5. श्रीमद्भगवद्गीता–डॉ. विश्वानाथ शर्मा–द्वितीय अध्याय–श्लोक संख्या 48
6. श्रीमद्भगवद्गीता–डॉ. विश्वानाथ शर्मा–द्वितीय अध्याय–श्लोक संख्या 50

International Research Journal of Management Science & Technology

ISSN 2250 – 1959(Online)

2348 – 9367 (Print)

A REFEREED JOURNAL OF

Explore Innovate Educate

Shri Param Hans Education & Research Foundation Trust

www.IRJMST.com

www.SPHERT.org

Published by iSaRa

महाभारतीय नारी पात्रों की अतीत और वर्तमान में समीक्षा

शोधार्थी

अक्षयराज मीणा
राजकीय स्नात्तकोत्तर महा.
. झालावाड़ (राज.)

साहित्य और समाज परस्पर सम्बद्ध है। सत्साहित्य समाज को प्रेरित करता हैं, वहीं असत्साहित्य समाज में असाधु संस्कारों का बीजभूत हैं। दूसरी ओर समाज का साहित्य पर प्रगाढ़ प्रभाव पड़ता हैं। साहित्य में वर्णित किसी वर्ग–विशेष की स्थिति तत्कालीन समाज में उसकी स्थिति को ही प्रतिफलित करती हैं। रामायण तथा महाभारत सर्वाधिक पूजनीय धार्मिक ग्रन्थ होने पर भी साहित्य को प्रतिबिम्बित करने में पूर्णतया सक्षम हैं रामायण आदर्श परिवार को माध्यम बनाकर उच्च आदर्शों, मानवीय मूल्यों, नैतिकता आदि समस्त अनुकरणीय भावों को मूर्तरूप में प्रतिफलित करने वाला काव्य हैं वहीं महाभारत एक सम्पूर्ण वंश तथा तत्कालीन समाज की अवस्था को सफलता से रूपायित करता हैं। नारी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। नारी का सबसे प्रमुख स्थान होता हैं उसका घर जहाँ वह पुत्री, बहिन, पत्नी, माता, वधू आदि अनेक रूपों में रहती हैं। गृहस्थ आश्रम नारी–पुरुष के मिलन का ही नाम हैं। परन्तु नारी का स्थान विगत और विद्यमान में देखा जाये तो क्या था? प्रस्तुत शोधपत्र में महाभारत के नारी पात्रों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने का प्रयास किया गया हैं।

महाभारत के नारी पात्रों पर दृष्टि डालनी अपेक्षित हैं। महाभारत की नारी कहते ही महाभारत युद्ध की केन्द्रबिन्दु द्रौपदी की ओर ध्यान जाता हैं। पांचालराज की कन्या, कृष्णा द्रुपदराज की पुत्री होने के कारण द्रौपदी नाम से ही अधिक परिचिता हैं। द्रौपदी का जीवन वृत्तान्त यहाँ उपस्थित करना न तो अपेक्षित हैं और न संभव। उसके जीवन के एकार्ध चित्र मात्र उसके व्यक्तित्व को संयोजित करने में पर्याप्त होगा।

धृतराष्ट्र की राज्यसभा में युधिष्ठिर दुर्योधन से द्यूतक्रीड़ा में अपना सर्वस्व हार चुके हैं। द्रौपदी को राजसभा में बुलाकर अपमानित और लांछित करने की गरज से दुर्योधन का सारथी प्रतिकामी को द्रौपदी के समीप भेजता हैं तथा वह समस्त वृतान्त सुनाकर उसे राजसभा में

उपस्थित होने को कहता हैं। द्रौपदी के स्थान पर अन्य कोई नारी होती तो डरती, विलाप करती, राज्यसभा में जाकर अपना विरोध प्रकट करती। लेकिन द्रौपदी ने ऐसा कुछ भी नहीं कर प्रतीकामी से कहा–

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतद।
किं नु पूर्वे पराजैसीरात्मानं मां नु भारत।
एतज्ज्ञात्वा त्वमागच्छ ततो मां नय सूतह।।[1]

"पहले उस जुआरी (युधिष्ठिर) से पूछों कि पहले उसने स्वयं को हारा या मुझे। बाद में मुझे ले जाना।"

यह सामान्य प्रश्न नहीं था। यह एक नैतिक, वैधानिक समस्या थी। स्वयं को हारने के पश्चात् व्यक्ति समस्त अधिकारों से वंचित हो जाता हैं। जिसका स्वत्व ही न रहा, वह दूसरों पर कैसा अधिकार रखेगा। स्वयं सत्तवहीन पत्नी का स्वामी कैसे? द्रौपदी पर युधिष्ठिर का दो प्रकार से अधिकार हो सकता था। राजा होने पर या पति होने पर। हारने के पश्चात् राजा का अधिकार भी गया और स्वामित्व का भी। द्रौपदी का प्रश्न अपने पति से मान–मनोबल का प्रश्न नहीं था। विधि का, नियम और चुनौती का प्रश्न था। यह प्रश्न केवल युधिष्ठिर से ही नहीं राजा धृतराष्ट्र से, राज्य के नीतिनियामक भीष्म से, नितिज्ञ विदुर से, राजसभा में बैठे प्रत्येक अधिकारी से, प्रत्येक प्रत्यक्षदृष्टा से, परोक्ष में रहने वाली माताओं से जिन्होंने अपने पुत्र को उसके अधिकार की सीमा नहीं बतायी। तत्कालीन समाज में और वर्तमान समाज में भी नारी और पुरुष का झगड़ा अधिकार का ही झगड़ा होता हैं। पुरुष, चाहे किसी भी बन्धन में बंधा हो, जब नारी पर अपने अधिकार की सीमा को लांघकर अधिकार जताता हैं तब वह अधिकार नहीं, अत्याचार हो जाता हैं और विरोध उसी अत्याचार का होता हैं, अधिकार का नहीं। आज भी समाज में नारी को व्यक्ति कम और वस्तु ज्यादा माना जाता हैं। वर्तमान में भी कई घरों में अनेक द्रौपदी (नारियाँ) अपने अधिकारी पुरुष के अत्याचार को सह रही हैं।

उसी राजसभा का एक ओर दृश्य। भीरू, लोभी, मोहग्रस्त धृतराष्ट्र ने द्रौपदी के पतियों (भीम और अर्जुन) के क्रोध से अपने पुत्रों की रक्षा के लिए, द्रौपदी से प्रशंसावश वर माँगने के

[1]. महाभारत–सभापर्व–दूतपर्व–67 / 7–8

लिए कहा। अपमानित होती हुई द्रौपदी ने उस अपराधी ज्येष्ठ पति युधिष्ठिर की दासत्व से मुक्ति। जैसे–

ददासि चेद्वरं महयं वृणोमि भरतर्शभ।
सर्वधर्मुनगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिश्ठिरः।।[2]

यह वर माँगना भी साधारण बात नहीं थी। यह मात्र साध्वी पत्नी का धर्मनिर्वाह नहीं था, प्रेमिका पत्नी का कार्य भी नहीं था। विवेकपूर्वक सोचा समझा पदक्षेप था। राजा का दास होना व्यक्ति की क्षति नहीं थी, राज्य, प्रजा और समाज की संस्कृति की क्षति थी। अधिकारी या राजा का दास बनना तो इतिहास का परम क्षण होता हैं जिससे पूरा राज्य अपनी स्वतन्त्रता को खोकर पराधीन हो जाता हैं। यहाँ द्रौपदी के चरित्र की इन दोनों घटनाओं से केवल इतना कहना अभीष्ट हैं कि द्रौपदी मात्र उतनी और वैसी नहीं जितनी साधारण दिखती हैं। वह विदुषी, सुपण्डिता, विवेकशीला आदि गुणों से मण्डित हैं।

महाभारत के नारी पात्रों में से एक प्रमुख पात्र हैं महारानी कुन्ती। राजकुमारी कुन्ती कुमारी अवस्था से ही श्रेष्ठ संस्कारों से संस्कारित हैं। सुन्दरी, सुकुमारी वह हैं जो सेवा परायणता, निष्ठा, सहिष्णुता तथा चतुरता की स्वामिनी होती हैं तभी तो दुर्वासा जैसे अग्निपुंज से न केवल दग्ध होने से बची रही वरन् उनसे वर तक प्राप्त कर लिया। उसका जीवन वैचित्र्यमय ही नहीं संघर्षमय भी रहा। कुमारी अवस्था में स्वयं अपराधी न होने पर भी कर्ण की माता बन, उसे त्याग कर अक्षम्य अपराध तथा असह्य आत्मग्लानि को भीतर समेटे पाण्डु की **वल्लभा** बन बैठी। (आज भी कहीं माता कुन्तीयाँ अपना अपराध न होने पर भी अपने कर्ण का त्याग करती हैं और अक्षम्य अपराध तथा असह्य आत्मग्लानी को भीतर समेट के जीवन में आगे बढ़ने का प्रयत्न करती हैं)। पाण्डु के जाने पर पाँच शिशुओं को लेकर पतिकुल में पहुँचना और रहना–कुन्ती के लिए कैसा रहा होगा, सहज अनुपमेय हैं। परन्तु कुन्ती की वि"ाषता यही कि विषम से विषम परिस्थिति में भी दीन, विवश, दम्भ नहीं वरन् गरिमा से पूर्ण ही बनी रही। द्रौपदी के विषय में अनजाने दिए आदेश के अतिरिक्त सम्भवतः ओर कहीं भी कुन्ती को सोचना नहीं पड़ा। कुन्ती पुत्रों की माता, पिता, गुरु, पथप्रदर्शक के रूप में विराजित हैं।

---

[2]. महाभारत–सभापर्व–द्यूतपर्व–71/28

दूसरी ओर उसी केसमान गान्धारी हैं। विश्व साहित्य की एकमात्र उदाहरण अन्धे पति से अधिक भोग न भोगने के कारण अपने नयनों पर पट्टी बांध लेना। गान्धारी का यह पट्टी बांधना केवल आँखों पर ही नहीं था, अपने दायित्व, कर्त्तव्य, नीति और नियम पर भी था। तभी तो गान्धारी का पति आजीवन अविवेकी बना रहा, उचित को जानकर भी स्वीकार न कर पाया। आँखों पर पट्टी बान्धने वाली गान्धारी के पुत्र शतसंख्यक कौरव पल तो गए परन्तु प्रतिपालित कहाँ हुए? अगर होते तो भाईयों से विरोध, विदुर का अपमान, द्यूतक्रीडा का आयोजन, द्रौपदी का चीरहरण तथा महाभारत युद्ध आदि नहीं होता।

आज भी अनेक गान्धारी अपनी आँखों पर ममता की पट्टी बांधकर जीवन व्यतीत कर रही हैं। अपने दायित्व कर्त्तव्य, नीति और नियम पर पट्टी बान्धकर, अपने पति और सन्तान को आजीवन अविवेकी और अपने कर्त्तव्यों से विमुख बना रही हैं। जिसके कारण आज भी द्रौपदी का वस्त्राहरण हो रहा हैं, विदुर का अपमान हो रहा हैं और भाई–भाई के बीच में विरोध बढ़ रहा हैं।

कुछ न पाकर भी कुन्ती स्वामिनी बनी रही। पुत्रों, पुत्रवधुओं तथा अन्य की हृदय साम्राज्ञी बनीं रहीं और गान्धारी हृदय साम्रज्ञी होकर भी पति के हृदय से दूर, भाई शकुनि के लिए अस्पृश्यतुल्य, पुत्रों के लिए अकिंचित्कर और एकमात्र जामाता के कृत्यों से भी लज्जित ही बनी रही। महाभारतकार ने इन दोनों विषम परिस्थितियों की परिणति को दिखलाने के लिए जो ताना–बाना बुना, वह उल्लेखनीय हैं।

सहादोरा अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका पर ध्यान केन्द्रित करना समीचीन होगा। काशीराज की तीन पुत्रियों को उनकी स्वयंवर सभा से बलपूर्वक हस्तिनापुर के सर्वेसर्वा भीष्म अपने भ्राता विचित्रवीर्य के साथ विवाह के बन्धन में आबद्ध करने के लिए अपहरण कर लाए। अम्बा का शाल्वराज पर अनुरक्त होने के कारण यह विवाह करना नारी धर्म के प्रतिकूल लगा। विवेक से प्रेरित अम्बा ने सत्यवती तथा भीष्म को अवगत करवा दिया। मर्यादा पालक भीष्म ने अम्बा को सम्मानपूर्वक शाल्वनरेश के पास भेज दिया। शाल्व ने भी अम्बा को तिरस्कृत कर दिया।

अम्बा संस्कृत साहित्य में उस नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं। जो अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए, अपने अपमान के प्रतिकार के लिए असम्भव को भी सम्भव कर दिखाती हैं। मन ही मन जिसे पति स्वीकार किया वह शाल्व के द्वारा भी तिरस्कृत हो जाना, नारी के सर्वस्व उसके चरित्र पर अविश्वास तथा लांछना का कारण बनने वाले, नारी जीवन को गृहस्थ जीवन से वंचित रखने

वाले भीष्म को क्षमा न कर पाना, अपने समस्त दुर्भोगों का भीष्म को कारण मानकर दण्डित करना अम्बा के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। सुकुमारी, कोमलहृदया तथा कोमलांगी अम्बा प्रतिहिंसा से कितनी अदम्या साहसी, क्रूर तथा दृढ़निश्चया बन गई, यह उसके व्यक्तित्व से स्पष्ट होता हैं।

महाभारतकालीन द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी या अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका आदि नारियाँ आज भी समाज में अपने आत्म सम्मान का आह्वाहन कर रही हैं। वर्तमान में नारी के सन्दर्भ में इतना ही कहना युक्तियुक्त होगा कि आज उसे बहुत कुछ मिला जो पहले दुष्प्राप्य था। उसे अधिकार, स्वतन्त्रता, पद, आसन, गौरव और पुरुष के समकक्ष होने का अवसर मिला परन्तु साथ ही उसे बहुत कुछ खोना पड़ा, खोना पड़ रहा हैं। आज भी वह रुढ़ीयों, परम्परा की, अक्षमता की, अपनी कुण्ठाओं की और अपने संस्कारों की बन्दिनी हैं। अपने करणीय और अकरणीय के प्रति आज नारी को स्पष्ट होना हैं।

नारी ने यदि अपने भीतर की शक्ति को जान लिया, पहचान लिया तो उसे किसी कुण्ठा, शुद्रता और दुर्बलता का सामना नहीं करना पड़ेगा।

———